देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

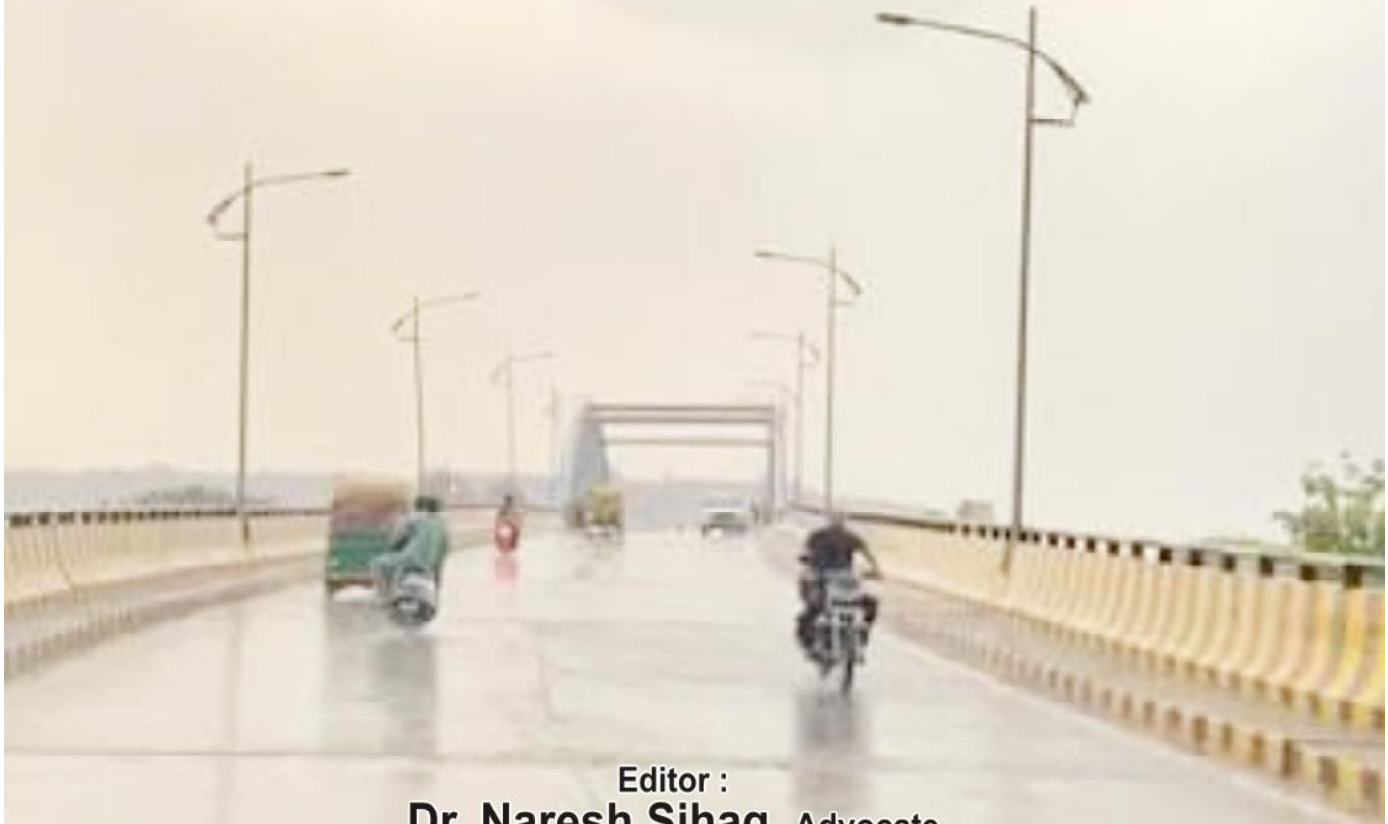
9 772395 711007

Impact Factor
8.642

ISSN : 2395-7115
July 2026
Vol.-24, Issue-1

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL



Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

https://bohalshodhmanjusha.com/

Vol. 24 | ISSUE-1, Part-2 | (जुलाई 2026) | ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – जुलाई 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09–09
2.	गुरू जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में पर्यावरणीय नैतिकता और भक्ति चेतना का अंतर्संबंध : एक साहित्यिक अध्ययन	पूनम, डॉ. संजय	11–21
3.	बेनीपुरी के कहानी-साहित्य में अनसुने समाज की उपस्थिति	दिव्या, डॉ. अनामिका सिंह	22–27
4.	मिथिला की धार्मिक परंपराएँ, कला, साहित्य एवं स्थापत्य : एक सांस्कृतिक-ऐतिहासिक अध्ययन	पिंकी कुमारी, डॉ. रूद्र नारायण	28–34
5.	पंडित दीन दयाल उपाध्याय और उनके सपनों का कश्मीर	सौरभ राय	35–42
6.	आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण विमर्श	डॉ. शालिनी सी.	43–52
7.	महिलाओं में महिला उत्पीड़न से संबंधित कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता का अध्ययन	सुशीला, डॉ. रेखा खण्डेलवाल	53–55
8.	शैक्षिक चिन्तक परमहंस योगानंद के शैक्षिक विचारों का भारतीय शिक्षा प्रणाली में योगदान	अन्नू, डॉ. सन्जू	56–59
9.	उत्तरापथ राजमार्ग पर मौर्यकालीन नौकरशाही और कर नियंत्रण का विश्लेषणात्मक अध्ययन	विकास बौद्ध	60–65
10.	छात्रों के मानसिक तनाव को कम करने में योग क्रियाओं की भूमिका	सुनीता जाखड़, डॉ. रेखा खण्डेलवाल	66–68
11.	**Yoga as a Cultural Heritage : An Indian Perspective**	**Dr. Arpita Negi, Sanjay Dutt**	**69-74**
12.	विधवाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	देवेन्द्र कुमार, प्रो. ध्रुव कुमार त्रिपाठी	75–91
13.	**The Railway Journey : The Industrialisation of Time and Space in The 19th Century**	**SANJAY KUMAR**	**92-97**
14.	सांख्यकारिका-पातञ्जलयोगसूत्रयोः मुक्तिसाधनस्य तुलनात्मकसमीक्षा (A Comparative Study of the Means of Liberation in the Samkhyakarika and Patanjala Yoga Sutras)	हरिप्रसन्नः अधिकारी	98-102
15.	विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ	डॉ. गौस शेख	103–109
16.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रचार प्रसार में जनसंचार माध्यमों की भूमिका	अलका यादव, डॉ. सन्जू	110–113
17.	भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता : एक समालोचनात्मक अध्ययन	डॉ. निरंजन कुंभकार	114–117

18.	वर्तमान में राजस्थान में मरूस्थलीकरण की समस्या	हेमा राम जाट	118–119
19.	मध्यकालीन भारत में महिला दास प्रथा	आकाश गुप्ता	120–124
20.	बिहार में अगस्त क्रांति और समाजवादी आंदोलन के प्रणेता : रामवृक्ष बेनीपुरी	कल्पना भारती, प्रो. पंकज कुमार राय	125–130
21.	**New Terrorism and Age of the Internet – A case of Kashmir Post 1990**	**Rajesh Gupta**	**131-143**
22.	**India–Israel Relations in the Post-Abraham Accords Era: Balancing Regional Power, Israel–Iran Tensions, and India's Multi-Alignment Diplomacy**	**Mr. Hari Shanker Singh**	**144-163**
23.	एक जिला एक उत्पाद (ओडीओपी) योजना के अंतर्गत आलू आधारित विकास : मध्य प्रदेश के इंदौर जिले का अध्ययन	राजा डावर, डॉ. बी एल पाटीदार	164–168
24.	पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इतिहास में हिन्दी के साहित्यिक साक्ष्यों की भूमिका (1900–1950)	डॉ. दीपक कुमार, मयंक वसु	169–175
25.	**A Study of Locus of Control Among Degree College Students in Haryana**	**Dr. Rajendra Jakhar**	**176-182**
26.	**Spiritual Quest and Self-Realisation in Raja Rao and Hermann Hesse : A Comparative Study**	**Dr. Rekha Rani**	**183-189**
27.	**Strengthening Climate Action through the India –Japan Joint Crediting Mechanism : An Analysis of the June 2026 Rules of Implementation**	**Jai Shri Prajapat, Dr. Arvind Verma**	**190-195**
28.	**A Comparative Study of Personality among Government School and Private School Level Basketball Players**	**Manish Kumar Sharma, Dr. Surjeet Singh Kaswan**	**196-200**
29.	21वीं सदी की कविता में भूमंडलीकरण से उत्पन्न पर्यावरणीय चिंताएँ	डॉ. सौम्य	201–207
30.	**The Maladevi Temple of Gyaraspur [Vidisha] : Architectural Innovation and Sectarian Syncretism in Early Medieval Dasarna**	**SHIVAM RAGHUWANSHI, Dr. SUNITA MALVIYA**	**208-213**
31.	जम्मू–कश्मीर और रियासतों के एकीकरण में सरदार बल्लभभाई पटेल की भूमिका और ऐतिहासिक योगदान का अध्ययन	सायमा रफीक	214–220

संपादकीय...

ज्ञान, अनुसंधान और नवाचार : विकसित भारत की आधारशिला

मानव सभ्यता का विकास ज्ञान, जिज्ञासा और अनुसंधान की सतत प्रक्रिया का परिणाम है। प्रत्येक युग में समाज की प्रगति उन व्यक्तियों और संस्थानों के कारण संभव हुई है जिन्होंने स्थापित धारणाओं से आगे बढ़कर नए विचारों को जन्म दिया। आज इक्कीसवीं सदी के इस ज्ञान–आधारित युग में शोध केवल शैक्षणिक उपाधि प्राप्त करने का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, वैज्ञानिक उन्नति, सांस्कृतिक संरक्षण और राष्ट्रीय विकास का सशक्त साधन बन चुका है। ऐसे समय में बोहल शोध मंजूषा का जुलाई 2026 अंक अपने पाठकों और शोधकर्ताओं के समक्ष विविध विषयों पर आधारित शोध आलेखों का समृद्ध संकलन प्रस्तुत करते हुए अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है।

वर्तमान समय अनेक नई चुनौतियों और संभावनाओं का समय है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल प्रौद्योगिकी, पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास, शिक्षा में नवाचार, भारतीय ज्ञान परंपरा, सामाजिक समरसता तथा वैश्विक सहयोग जैसे विषय आज शोध के प्रमुख केंद्र बन चुके हैं। इन क्षेत्रों में गंभीर एवं तथ्यपरक अनुसंधान न केवल नई जानकारियाँ प्रदान करता है, बल्कि नीति–निर्माण, सामाजिक जागरूकता और व्यवहारिक समाधान विकसित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शोध तभी सार्थक होता है जब वह समाज की वास्तविक आवश्यकताओं से जुड़कर जनहित में उपयोगी सिद्ध हो।

भारतीय ज्ञान परंपरा सदैव अनुसंधान और विमर्श की संस्कृति को प्रोत्साहित करती रही है। वेद, उपनिषद, बौद्ध एवं जैन साहित्य, आयुर्वेद, गणित, खगोलशास्त्र और दर्शन के क्षेत्र में भारत ने विश्व को अमूल्य ज्ञान प्रदान किया है। आज आवश्यकता है कि हम अपनी इस समृद्ध बौद्धिक विरासत का आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ पुनर्पाठ करें और उसे वैश्विक संदर्भों में प्रस्तुत करें। नई शिक्षा नीति 2020 ने भी अनुसंधान, नवाचार और बहुविषयक अध्ययन को विशेष महत्व देकर इसी दिशा में एक सशक्त पहल की है।

उच्च शिक्षा संस्थानों में गुणवत्तापूर्ण शोध की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। केवल शोध–पत्रों की संख्या बढ़ाना पर्याप्त नहीं है, उनकी गुणवत्ता, मौलिकता, वैज्ञानिक पद्धति, नैतिकता तथा सामाजिक उपयोगिता भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। साहित्यिक चोरी, तथ्यहीन निष्कर्ष और औपचारिक शोध संस्कृति जैसी प्रवृत्तियाँ शोध की विश्वसनीयता को प्रभावित करती हैं। इसलिए प्रत्येक शोधकर्ता का दायित्व है कि वह सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता और बौद्धिक ईमानदारी के साथ अपने अनुसंधान कार्य को संपन्न करे। एक उत्कृष्ट शोध वही है जो नए प्रश्न उत्पन्न करे, नए दृष्टिकोण विकसित करे और भविष्य के अनुसंधानों के लिए मार्ग प्रशस्त करे।

आज अंतःविषयक अनुसंधान का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, मानविकी, वाणिज्य, शिक्षा, चिकित्सा और प्रौद्योगिकी के बीच समन्वित अध्ययन जटिल समस्याओं के व्यापक समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं। जलवायु परिवर्तन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, साइबर सुरक्षा, ग्रामीण विकास, महिला सशक्तिकरण तथा डिजिटल समावेशन जैसे विषय बहुआयामी दृष्टिकोण की अपेक्षा करते हैं। इसलिए शोधकर्ताओं को पारंपरिक

सीमाओं से बाहर निकलकर सहयोगात्मक अनुसंधान को अपनाना चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि शोध के निष्कर्ष केवल पुस्तकालयों या शोध पत्रिकाओं तक सीमित न रहें, बल्कि समाज तक पहुँचें। जब अनुसंधान के परिणाम शिक्षा, प्रशासन, उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य, पर्यावरण और सामाजिक जीवन में व्यावहारिक रूप से उपयोग किए जाते हैं, तभी शोध की वास्तविक सार्थकता सिद्ध होती है। ज्ञान का उद्देश्य केवल संग्रह नहीं, बल्कि समाज के जीवन स्तर में सकारात्मक परिवर्तन लाना है। इस दृष्टि से शोध पत्रिकाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि वे शोधकर्ताओं और समाज के बीच एक प्रभावी सेतु का कार्य करती हैं।

बोहल शोध मंजूषा का उद्देश्य भी यही है कि विभिन्न विषयों के विद्वानों, शिक्षकों, शोधार्थियों और स्वतंत्र चिंतकों को एक ऐसा अकादमिक मंच उपलब्ध कराया जाए जहाँ मौलिक, प्रमाणिक और गुणवत्तापूर्ण शोध कार्यों का प्रकाशन हो सके। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेख विविध विषयों पर नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं तथा समकालीन समस्याओं के समाधान की दिशा में सार्थक विमर्श को आगे बढ़ाते हैं। हमें विश्वास है कि यह अंक पाठकों के ज्ञानवर्धन के साथ–साथ नए शोध के लिए प्रेरणास्रोत सिद्ध होगा।

हम सभी लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय मंडल, सलाहकारों तथा सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके समर्पण और विद्वत्ता से इस अंक का प्रकाशन संभव हो सका। साथ ही हम युवा शोधकर्ताओं से आग्रह करते हैं कि वे अनुसंधान को केवल शैक्षणिक आवश्यकता न मानें, बल्कि राष्ट्र निर्माण और मानव कल्याण के व्यापक उद्देश्य से जोड़कर देखें। सत्य की खोज, नवीन ज्ञान का सृजन और समाज के प्रति उत्तरदायित्व यही एक सफल शोधकर्ता की वास्तविक पहचान है।

आइए, हम सब मिलकर ऐसी शोध संस्कृति का निर्माण करें जो मौलिकता, नैतिकता, वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित हो। यही संस्कृति भारत को ज्ञान महाशक्ति बनाने की दिशा में सशक्त आधार प्रदान करेगी और आने वाली पीढ़ियों के लिए समृद्ध बौद्धिक विरासत का निर्माण करेगी।

संपादक :

डॉ. नरेश सिहाग

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 11-21

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गुरू जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में पर्यावरणीय नैतिकता और भक्ति चेतना का अंतर्संबंध : एक साहित्यिक अध्ययन

पूनम, पी–एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग (हिंदी)
सामाजिक एवं मानविकी संकाय, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा) पिन कोड 125001
डॉ. संजय, शोध निर्देशक
प्रोफेसर, हिंदी विभाग, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा) पिन कोड 125001

सारांश :

भारतीय भक्ति आंदोलन ने धार्मिक चेतना के साथ–साथ सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस आंदोलन के अनेक संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से मानवता, समरसता, समानता तथा लोककल्याण का संदेश दिया। इसी परंपरा में गुरु जम्भेश्वर जी का व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यंत विशिष्ट है। उन्होंने भक्ति को केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित न रखकर उसे प्रकृति, जीव–जंतुओं, वनस्पति और पर्यावरण संरक्षण से जोड़कर एक व्यापक जीवन–दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी सबदवाणी में पर्यावरणीय नैतिकता और भक्ति चेतना का ऐसा समन्वित स्वरूप मिलता है, जो भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का अद्वितीय उदाहरण है।

वर्तमान समय में विश्व जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन, प्रदूषण तथा जैव विविधता के संकट जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसे समय में गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ मानव समाज को प्रकृति के साथ संतुलित और संवेदनशील संबंध स्थापित करने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। उनकी वाणी में वृक्षों की रक्षा, जीव–दया, जल संरक्षण तथा अहिंसा को धार्मिक कर्तव्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इस प्रकार उनकी भक्ति चेतना केवल ईश्वर–भक्ति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समस्त सृष्टि के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराती है।

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में निहित पर्यावरणीय नैतिकता और भक्ति चेतना के अंतर्संबंध का साहित्यिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। साथ ही यह स्पष्ट करना भी है कि उनकी शिक्षाएँ आधुनिक पर्यावरणीय विमर्श तथा सतत विकास की अवधारणा के संदर्भ में किस प्रकार प्रासंगिक हैं। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि गुरु जम्भेश्वर जी का साहित्य भक्ति परंपरा को एक नवीन पर्यावरणीय दृष्टिकोण प्रदान करता है तथा वर्तमान वैश्विक संकट के समाधान हेतु नैतिक आधार उपलब्ध कराता है।

मुख्य शब्द : गुरु जम्भेश्वर जी, सबदवाणी, भक्ति आंदोलन, पर्यावरणीय नैतिकता, भक्ति चेतना, जीव–दया, लोकमंगल, प्रकृति संरक्षण, मानवीय मूल्य, भारतीय संस्कृति।

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उसने प्रकृति और मानव के मध्य गहरे संबंध को सदैव स्वीकार किया है। ऋग्वेद, उपनिषद, पुराण तथा भारतीय दार्शनिक परंपरा में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश को पंचमहाभूत के रूप में पूजनीय माना गया है। भारतीय चिंतन में प्रकृति केवल भौतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का आधार और ईश्वर की सृजनात्मक शक्ति की अभिव्यक्ति है। इसी कारण भारतीय समाज में वृक्षों, नदियों, पर्वतों और पशु–पक्षियों के प्रति श्रद्धा और संरक्षण की भावना विकसित हुई।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन भारतीय समाज के इतिहास में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और धार्मिक आंदोलन था। इस आंदोलन ने जाति–पाँति, ऊँच–नीच तथा कर्मकांडों का विरोध करते हुए भक्ति को जनसामान्य तक पहुँचाया। कबीर, रैदास, मीरा, तुलसीदास, सूरदास, गुरु नानक तथा अन्य संत कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक समरसता, समानता और मानवता का संदेश दिया। इन्हीं संतों की परंपरा में गुरु जम्भेश्वर जी का स्थान अत्यंत विशिष्ट है।

गुरु जम्भेश्वर जी ने अपने जीवन और साहित्य के माध्यम से जिस जीवन–दर्शन का प्रतिपादन किया, उसका आधार सत्य, अहिंसा, करुणा, जीव–दया और प्रकृति संरक्षण है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि यदि मनुष्य प्रकृति के नियमों का सम्मान नहीं करेगा तो उसका अस्तित्व भी संकट में पड़ जाएगा। इसलिए उन्होंने वृक्षों की रक्षा, जीवों के प्रति दया और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को धार्मिक आचरण का अनिवार्य अंग माना। उनकी सबदवाणी में अनेक स्थानों पर प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण दिखाई देता है। वे मनुष्य को संयमित जीवन, सादगी और प्रकृति के साथ संतुलित व्यवहार की प्रेरणा देते हैं। यही कारण है कि उनके विचार आज के पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

वर्तमान समय में औद्योगिकीकरण, शहरीकरण तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो रहा है। वनों की कटाई, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और जैव विविधता का क्षरण मानव सभ्यता के लिए गंभीर चुनौती बन चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र तथा विश्व के अनेक पर्यावरणविद् सतत विकास की अवधारणा पर बल दे रहे हैं, जिसका मूल उद्देश्य विकास और पर्यावरण के मध्य संतुलन स्थापित करना है। आश्चर्य की बात यह है कि गुरु जम्भेश्वर जी ने कई शताब्दियों पूर्व ही अपने उपदेशों में इसी संतुलन की आवश्यकता पर बल दिया था।

गुरु जम्भेश्वर जी की भक्ति चेतना का मूल तत्व केवल ईश्वर की उपासना नहीं है, बल्कि समस्त सृष्टि के प्रति प्रेम और उत्तरदायित्व भी है। उनके अनुसार जो व्यक्ति जीवों पर दया नहीं करता और प्रकृति का संरक्षण नहीं करता, उसकी भक्ति अधूरी है। इस प्रकार उनकी भक्ति चेतना और पर्यावरणीय नैतिकता एक–दूसरे की पूरक हैं।

आज जब संपूर्ण विश्व पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को स्वीकार कर चुका है, तब गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ भारतीय सांस्कृतिक विरासत के रूप में एक आदर्श प्रस्तुत करती हैं। उनका साहित्य केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि मानव और प्रकृति के सह–अस्तित्व का घोषणापत्र है। उनकी वाणी यह संदेश देती है कि आध्यात्मिक

उन्नति तभी संभव है जब मनुष्य प्रकृति के प्रति संवेदनशील और उत्तरदायी बने।

इसी संदर्भ में प्रस्तुत शोध–पत्र गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में निहित पर्यावरणीय नैतिकता और भक्ति चेतना के अंतर्संबंध का साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि उनकी वाणी में व्यक्त पर्यावरणीय दृष्टि आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप है तथा भारतीय भक्ति साहित्य को एक नवीन और व्यापक आयाम प्रदान करती हैं।

गुरू जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में भक्ति चेतना का स्वरूप :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में भक्ति चेतना का स्वरूप अत्यंत व्यापक, मानवीय एवं लोककल्याणकारी है। उनकी भक्ति केवल ईश्वर–उपासना तक सीमित नहीं है, बल्कि सत्य, अहिंसा, करुणा, जीव–दया, सदाचार तथा प्रकृति–संरक्षण जैसे जीवन–मूल्यों से गहराई से जुड़ी हुई है। उन्होंने भक्ति को बाह्य आडंबरों और कर्मकांडों से मुक्त कर आंतरिक शुद्धता तथा नैतिक आचरण का आधार माना है। उनके अनुसार सच्चा भक्त वही है जो अपने व्यवहार में दया, संयम और परोपकार को स्थान देता है तथा समस्त सृष्टि के प्रति समान भाव रखता है। सबदवाणी में गुरु जम्भेश्वर जी ने भक्ति को आत्मानुशासन और लोकमंगल का माध्यम माना है। उनकी दृष्टि में ईश्वर की आराधना तभी सार्थक है जब मनुष्य अपने जीवन में सत्य और धर्म का पालन करे तथा जीव–जंतुओं एवं प्रकृति के प्रति संवेदनशील रहे। इस प्रकार उनकी भक्ति चेतना आध्यात्मिक साधना और सामाजिक उत्तरदायित्व का समन्वित रूप प्रस्तुत करती है।

उनकी वाणी में निर्गुण भक्ति की सरलता, नैतिक जीवन की गरिमा और मानवता के प्रति समर्पण का सुंदर समावेश मिलता है। वे मनुष्य को लोभ, मोह, हिंसा और अहंकार से दूर रहकर प्रेम, सेवा और सह–अस्तित्व का मार्ग अपनाने की प्रेरणा देते हैं। उनकी भक्ति–दृष्टि व्यक्ति और समाज दोनों के नैतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है।

इस प्रकार गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में भक्ति चेतना का स्वरूप आध्यात्मिक अनुभूति, नैतिक जीवन, सामाजिक समरसता और पर्यावरणीय संवेदनशीलता का समन्वित प्रतिरूप है। यही विशेषता उनकी वाणी को भारतीय भक्ति साहित्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है तथा वर्तमान समय में भी उसे समान रूप से प्रासंगिक और प्रेरणादायी बनाती है।

भक्ति और नैतिक जीवन का संबंध :

गुरु जम्भेश्वर जी के अनुसार भक्ति का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य के चरित्र का निर्माण करना है। यदि किसी व्यक्ति का आचरण नैतिक नहीं है, तो उसकी उपासना भी सार्थक नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने सत्य, संयम और दया को भक्ति का आधार माना।

उनकी दृष्टि में धार्मिकता का मूल्य व्यक्ति के व्यवहार से निर्धारित होता है। जो मनुष्य दूसरों के प्रति करुणामय है, प्रकृति का संरक्षण करता है और लोकहित में कार्य करता है, वही सच्चा भक्त है।

यह विचार आधुनिक नैतिक दर्शन से भी मेल खाता है, जहाँ नैतिक आचरण को सामाजिक कल्याण का आधार माना जाता है। गुरु जम्भेश्वर जी ने कई शताब्दियों पूर्व ही इस सिद्धांत को अपने साहित्य में स्थापित कर दिया था।

भक्ति चेतना में जीव-दया का स्थान :

गुरु जम्भेश्वर जी की वाणी में जीव–दया को सर्वोच्च मानवीय गुण माना गया है। उनका विश्वास था कि प्रत्येक जीव में ईश्वर का अंश विद्यमान है, इसलिए किसी भी जीव के प्रति हिंसा करना ईश्वर की सृष्टि का अपमान है।

बिश्नोई समाज में वन्यजीवों की रक्षा और घायल पशुओं की सेवा की जो परंपरा आज भी जीवित है, उसका मूल स्रोत गुरु जम्भेश्वर जी की यही शिक्षा है। यह परंपरा सिद्ध करती है कि उनकी भक्ति केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक और सामाजिक भी थी।

जीव–दया का यह सिद्धांत आधुनिक पशु–अधिकार और जैव विविधता संरक्षण की अवधारणाओं के साथ भी सामंजस्य स्थापित करता है। इस दृष्टि से गुरु जम्भेश्वर जी का साहित्य अपने समय से कहीं आगे का साहित्य प्रतीत होता है।

गुरू जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में प्रकृति-दर्शन :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में प्रकृति–दर्शन भारतीय सांस्कृतिक चेतना और आध्यात्मिक दृष्टि का सजीव प्रतिरूप है। उनकी वाणी में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन नहीं, बल्कि ईश्वर की सृष्टि का पवित्र और जीवंत स्वरूप माना गया है। वे मानव और प्रकृति के मध्य सह–अस्तित्व तथा संतुलित संबंध की स्थापना पर बल देते हैं। उनके अनुसार पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति और समस्त जीव–जगत परस्पर एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और इनका संरक्षण मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है।

गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से प्रकृति के प्रति श्रद्धा, संवेदना और संरक्षण की भावना का विकास किया। उनकी दृष्टि में हरे वृक्षों की रक्षा, वन्यजीवों के प्रति करुणा तथा प्राकृतिक संसाधनों का संयमित उपयोग केवल सामाजिक कर्तव्य नहीं, बल्कि धार्मिक आचरण का भी अंग है। यही कारण है कि उनकी सबदवाणी में जीव–दया और पर्यावरण–संरक्षण को भक्ति का अभिन्न आधार माना गया है।

उनका प्रकृति–दर्शन मानव–केंद्रित न होकर समग्र सृष्टि–केंद्रित है। वे यह संदेश देते हैं कि प्रकृति का संतुलन बनाए रखना समस्त जीव–जगत के कल्याण के लिए आवश्यक है। उनकी शिक्षाओं से प्रेरित विश्नोई परंपरा में वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा की जो परंपरा विकसित हुई, वह उनके प्रकृति–दर्शन का व्यावहारिक रूप है।

इस प्रकार गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में प्रकृति–दर्शन आध्यात्मिक चेतना, नैतिक मूल्यों और लोकमंगल की भावना का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करता है। वर्तमान पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में उनके विचार मानव समाज को प्रकृति के प्रति उत्तरदायी, संवेदनशील और संतुलित जीवन–पद्धति अपनाने की प्रेरणा प्रदान करते।

गुरू जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में वृक्ष संरक्षण की भावना :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में वृक्ष संरक्षण की भावना मानवीय संवेदना, धार्मिक आस्था और पर्यावरणीय नैतिकता का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करती है। उन्होंने वृक्षों को केवल प्राकृतिक संपदा नहीं, बल्कि समस्त जीव–जगत के जीवनाधार के रूप में स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में वृक्ष पृथ्वी के संतुलन, जल संरक्षण, वायु की शुद्धता तथा जैव विविधता के संरक्षण के प्रमुख आधार हैं। इसलिए वृक्षों की रक्षा करना प्रत्येक

मनुष्य का नैतिक और सामाजिक दायित्व है।

गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से हरे वृक्षों को काटने का विरोध करते हुए उनके संरक्षण का संदेश दिया। उन्होंने प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व की भावना को धार्मिक जीवन का अनिवार्य अंग बनाया। उनकी भक्ति–दृष्टि में ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा वही है जो प्रकृति और समस्त प्राणियों के प्रति करुणा और संरक्षण की भावना उत्पन्न करे। इस प्रकार वृक्षों की रक्षा उनके लिए केवल पर्यावरणीय कार्य नहीं, बल्कि लोकमंगल और धर्म का महत्वपूर्ण स्वरूप है।

उनकी शिक्षाओं का प्रभाव विश्नोई समाज की जीवन–पद्धति में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान इस भावना का सर्वोच्च उदाहरण है, जहाँ अमृता देवी विश्नोई और 363 स्त्री–पुरुषों ने खेजड़ी वृक्षों की रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। यह घटना सिद्ध करती है कि गुरु जम्भेश्वर जी का वृक्ष संरक्षण संबंधी विचार केवल सैद्धांतिक नहीं था, बल्कि व्यवहार में भी पूर्ण निष्ठा के साथ अपनाया गया।

खेजड़ली बलिदान – गुरू जम्भेश्वर जी की पर्यावरणीय चेतना का ऐतिहासिक उदाहरण :

गुरु जम्भेश्वर जी की पर्यावरणीय दृष्टि का सर्वाधिक सशक्त और ऐतिहासिक उदाहरण 1730 ईस्वी का खेजड़ली बलिदान है। यह घटना केवल विश्नोई समाज के इतिहास की अमूल्य धरोहर नहीं, बल्कि विश्व के पर्यावरण संरक्षण आंदोलनों में भी एक अद्वितीय स्थान रखती है। इस बलिदान ने यह सिद्ध कर दिया कि गुरु जम्भेश्वर जी द्वारा प्रतिपादित जीव–दया, वृक्ष संरक्षण और प्रकृति–प्रेम के सिद्धांत केवल धार्मिक उपदेश नहीं थे, बल्कि उनके अनुयायियों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुके थे।

सन् 1730 ईस्वी में मारवाड़ के शासक महाराजा अभयसिंह के आदेश पर उनके मंत्री गिरिधर भंडारी को जोधपुर में निर्माण कार्य हेतु खेजड़ी के वृक्षों की कटाई के लिए खेजड़ली गाँव भेजा गया। जब सैनिक वृक्ष काटने लगे, तब विश्नोई महिला अमृता देवी ने इसका विरोध किया और वृक्ष से लिपटकर उसे बचाने का संकल्प लिया।

परंपरा में उनसे जुड़ा प्रसिद्ध कथन :–

सिर सांटे रूख रहे, तो भी सस्तो जाण।

अर्थात् यदि वृक्ष बचाने के लिए सिर भी कट जाए, तो यह सौदा भी सस्ता है। विश्नोई पर्यावरण–दर्शन की सर्वोच्च अभिव्यक्ति माना जाता है।

अमृता देवी तथा उनकी तीन पुत्रियों के बलिदान के पश्चात आसपास के अनेक विश्नोई गाँवों से लोग खेजड़ली पहुँचे और एक–एक व्यक्ति वृक्षों से लिपटकर अपने प्राण न्योछावर करने लगा। अंततः 363 विश्नोई स्त्री–पुरुषों ने खेजड़ी वृक्षों की रक्षा के लिए अपना बलिदान दिया। इस अभूतपूर्व घटना से प्रभावित होकर मारवाड़ के शासक ने वृक्षों की कटाई रुकवा दी तथा विश्नोई क्षेत्रों में हरे वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा के लिए विशेष आदेश जारी किए।

यह घटना गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाओं की व्यावहारिक परिणति है। उन्होंने अपने अनुयायियों को जीव–दया, हरे वृक्षों की रक्षा और प्रकृति के प्रति करुणा का जो संदेश दिया था, वही खेजड़ली में आचरण के रूप में दिखाई देता है। इस दृष्टि से खेजड़ली बलिदान भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में धर्म और पर्यावरण संरक्षण के अद्वितीय समन्वय का उदाहरण है।

साहित्यिक दृष्टि से देखा जाए तो यह बलिदान गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में निहित पर्यावरणीय नैतिकता की जीवंत व्याख्या है। उनकी भक्ति केवल ईश्वर–आराधना तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त सृष्टि के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराती है। प्रकृति की रक्षा उनके लिए धर्म का अंग है और जीवों के प्रति करुणा भक्ति का अनिवार्य तत्व।

आधुनिक पर्यावरणीय विमर्श में भी खेजड़ली बलिदान का विशेष महत्व है। अनेक विद्वान इसे संगठित पर्यावरण संरक्षण के प्रारंभिक ऐतिहासिक उदाहरणों में गिनते हैं तथा यह माना जाता है कि इस घटना ने बाद के चिपको आंदोलन जैसी जनआंदोलनात्मक पर्यावरणीय पहलों को वैचारिक प्रेरणा प्रदान की।

जीव-दया और जैव विविधता संरक्षण :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में जीव–दया को धर्म, भक्ति और मानवीय जीवन का मूल आधार माना गया है। उनके अनुसार समस्त प्राणी ईश्वर की सृष्टि के अभिन्न अंग हैं, इसलिए प्रत्येक जीव के प्रति करुणा, सहानुभूति और संरक्षण का भाव रखना मनुष्य का परम कर्तव्य है। उनकी शिक्षाएँ अहिंसा, दयाभाव और सह–अस्तित्व की भावना को विकसित करती हैं तथा समस्त जीव–जगत के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देती हैं।

गुरु जम्भेश्वर जी का यह चिंतन आधुनिक जैव विविधता संरक्षण की अवधारणा के साथ पूर्णतः सामंजस्य स्थापित करता है। उन्होंने वन्यजीवों, पशु–पक्षियों और समस्त प्राणियों की रक्षा को प्रकृति के संतुलन के लिए अनिवार्य माना। उनका विश्वास था कि प्रत्येक जीव पर्यावरणीय व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है और किसी भी जीव का विनाश प्राकृतिक संतुलन को प्रभावित करता है।

बिश्नोई समाज में हिरण, चिंकारा, मोर तथा अन्य वन्यजीवों की रक्षा की परंपरा गुरु जम्भेश्वर जी की जीव–दया संबंधी शिक्षाओं का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज भी बिश्नोई समुदाय घायल पशुओं की सेवा, वन्यजीवों के संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा को अपना धार्मिक और सामाजिक दायित्व मानता है। खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान भी इसी जीव–दया और प्रकृति–प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है।

जल संरक्षण और संयमित जीवन :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में जल संरक्षण और संयमित जीवन को आदर्श मानव जीवन के आवश्यक तत्वों के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। उनकी शिक्षाओं में प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग तथा सादगीपूर्ण जीवन–शैली पर विशेष बल दिया गया है। मरुस्थलीय प्रदेश में जीवन व्यतीत करने के कारण वे जल के महत्व और उसकी उपयोगिता से भली–भाँति परिचित थे। इसलिए उन्होंने जल को जीवन का आधार मानते हुए उसके संरक्षण और सदुपयोग की प्रेरणा दी।

गुरु जम्भेश्वर जी के अनुसार प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों का अनावश्यक दोहन मानव और पर्यावरण दोनों के लिए हानिकारक है। उनका मानना था कि संयमित जीवन–पद्धति अपनाकर ही प्राकृतिक संतुलन को सुरक्षित रखा जा सकता है। उनकी वाणी में सादगी, संतोष और मितव्ययिता जैसे गुणों को श्रेष्ठ जीवन का आधार माना गया है, जो व्यक्ति को अपव्यय और अत्यधिक उपभोग से दूर रखते हैं।

जल संरक्षण के साथ संयमित जीवन का उनका सिद्धांत वर्तमान पर्यावरणीय चिंतन में भी अत्यंत प्रासंगिक है। आज जल–संकट और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण की बढ़ती समस्या के बीच उनकी शिक्षाएँ

संतुलित उपभोग और पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का संदेश देती हैं। उनकी दृष्टि में जल का संरक्षण केवल उपयोगिता का विषय नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक दायित्व भी है।

इस प्रकार गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में जल संरक्षण और संयमित जीवन का विचार पर्यावरणीय नैतिकता, लोकमंगल और सतत जीवन–दृष्टि का सशक्त प्रतिपादन करता है। यह मानव और प्रकृति के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है तथा वर्तमान समय में भी समान रूप से प्रासंगिक और अनुकरणीय सिद्ध होता है।

भक्ति चेतना और पर्यावरणीय नैतिकता का अंतर्संबंध :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में भक्ति चेतना और पर्यावरणीय नैतिकता का गहरा एवं अविभाज्य संबंध दिखाई देता है। उनकी भक्ति केवल ईश्वर–आराधना या आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त सृष्टि के प्रति करुणा, दायित्व और संरक्षण की भावना से भी अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि ईश्वर की सच्ची उपासना वही है, जिसमें प्रकृति, वनस्पति, पशु–पक्षियों तथा समस्त जीव–जगत के प्रति प्रेम और संवेदनशीलता विद्यमान हो।

गुरु जम्भेश्वर जी के विचार में मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक है। इसलिए वृक्षों की रक्षा, जीव–दया, जल का संरक्षण तथा प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग धार्मिक और नैतिक जीवन का अनिवार्य अंग है। उनकी भक्ति–दृष्टि मनुष्य को आत्मकेंद्रित जीवन से ऊपर उठाकर लोकमंगल और पर्यावरण–संरक्षण की ओर प्रेरित करती है। इस प्रकार उनकी भक्ति चेतना आध्यात्मिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व का समन्वित स्वरूप प्रस्तुत करती है।

सबदवाणी में वर्णित करुणा, अहिंसा, संयम और सह–अस्तित्व जैसे मूल्य पर्यावरणीय नैतिकता के आधारभूत सिद्धांत हैं। गुरु जम्भेश्वर जी का मानना था कि प्रकृति का संरक्षण केवल मानव हित के लिए नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के संतुलन और कल्याण के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि उनकी शिक्षाओं से प्रेरित बिश्नोई समाज आज भी वन्यजीवों और हरे वृक्षों की रक्षा को अपना धार्मिक कर्तव्य मानता है।

भक्ति और पर्यावरणीय नैतिकता का यह समन्वय खेजड़ली के ऐतिहासिक बलिदान में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है, जहाँ प्रकृति की रक्षा को धर्म और आस्था का सर्वोच्च स्वरूप मानते हुए सैकड़ों लोगों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। यह घटना सिद्ध करती है कि गुरु जम्भेश्वर जी की भक्ति केवल आध्यात्मिक अनुभूति नहीं, बल्कि प्रकृति और जीवन के प्रति सक्रिय उत्तरदायित्व की चेतना है।

गुरू जम्भेश्वर जी की पर्यावरणीय चेतना और सतत विकास की अवधारणा :

गुरु जम्भेश्वर जी की पर्यावरणीय चेतना भारतीय संत परंपरा की एक ऐसी विशिष्ट धारा है, जिसमें प्रकृति–संरक्षण, जीव–दया और संतुलित जीवन–पद्धति को मानव जीवन का अनिवार्य आधार माना गया है। उनकी सबदवाणी में व्यक्त विचार यह स्पष्ट करते हैं कि प्रकृति का संरक्षण केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि भावी पीढ़ियों के सुरक्षित भविष्य के लिए आवश्यक नैतिक दायित्व भी है। यही दृष्टिकोण आधुनिक सतत विकास की अवधारणा से साम्य स्थापित करता है।

गुरु जम्भेश्वर जी ने प्राकृतिक संसाधनों के संयमित उपयोग, हरे वृक्षों की रक्षा, वन्यजीवों के संरक्षण तथा जल के सदुपयोग पर विशेष बल दिया। उनका मानना था कि प्रकृति के साथ संतुलित संबंध स्थापित किए बिना

मानव समाज का स्थायी विकास संभव नहीं है। उनकी शिक्षाएँ उपभोग की असीम प्रवृत्ति के स्थान पर संयम, संतोष और उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन–पद्धति को अपनाने की प्रेरणा देती हैं।

सतत विकास का मूल उद्देश्य वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए प्राकृतिक संसाधनों को भविष्य के लिए सुरक्षित रखना है। गुरु जम्भेश्वर जी का जीवन–दर्शन भी इसी सिद्धांत का समर्थन करता है। उन्होंने मानव को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक माना तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने को धर्म और नैतिकता का अभिन्न अंग बताया। उनके विचारों में विकास और प्रकृति के बीच संघर्ष नहीं, बल्कि समन्वय और सह–अस्तित्व की भावना प्रमुख है।

बिश्नोई समाज द्वारा वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा की परंपरा तथा खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान गुरु जम्भेश्वर जी की पर्यावरणीय चेतना के व्यावहारिक स्वरूप को प्रमाणित करते हैं। यह परंपरा बताती है कि प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व केवल सैद्धांतिक विचार नहीं, बल्कि जीवन का व्यवहारिक मूल्य होना चाहिए .....गुरु जम्भेश्वर जी की पर्यावरणीय चेतना आधुनिक सतत विकास की अवधारणा की पूर्वपीठिका के रूप में देखी जा सकती है। उनकी शिक्षाएँ प्रकृति, समाज और मानव के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करने का संदेश देती हैं तथा वर्तमान पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान के लिए एक नैतिक एवं सांस्कृतिक आधार प्रदान करती हैं।

सबदवाणी का पारिस्थितिक अध्ययन :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी का पारिस्थितिक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनकी वाणी में प्रकृति और मानव के मध्य संतुलित संबंध की व्यापक अवधारणा निहित है। उनकी शिक्षाओं में पर्यावरण को केवल भौतिक संसाधन नहीं माना गया, बल्कि जीवन और सृष्टि के आधारभूत तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि उनकी सबदवाणी में प्रकृति के प्रति सम्मान, संरक्षण और संवेदनशीलता का भाव निरंतर अभिव्यक्त होता है।

पारिस्थितिक दृष्टि से उनकी वाणी मानव–केंद्रित विचारधारा के स्थान पर समस्त जीव–जगत के सह–अस्तित्व का समर्थन करती है। वे मनुष्य को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक मानते हैं। वृक्षों, वन्यजीवों, जल और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा को उन्होंने नैतिक और आध्यात्मिक जीवन का आवश्यक अंग माना है। इस प्रकार उनकी भक्ति–दृष्टि पर्यावरणीय उत्तरदायित्व से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई दिखाई देती है।

सबदवाणी में व्यक्त जीव–दया, अहिंसा, संयम और प्रकृति–प्रेम जैसे मूल्य पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में सहायक सिद्ध होते हैं। इन मूल्यों के माध्यम से गुरु जम्भेश्वर जी मानव और प्रकृति के बीच परस्पर निर्भरता तथा सामंजस्य की स्थापना का संदेश देते हैं। उनकी शिक्षाओं से प्रेरित बिश्नोई समाज द्वारा वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा की परंपरा इस पारिस्थितिक चेतना का व्यावहारिक स्वरूप है।

सबदवाणी में सह-अस्तित्व का सिद्धांत :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में सह–अस्तित्व का सिद्धांत उनके जीवन–दर्शन और भक्ति–चिंतन का मूल आधार है। उनकी वाणी मानव, प्रकृति और समस्त जीव–जगत के मध्य परस्पर सहयोग, संतुलन और सामंजस्यपूर्ण संबंध स्थापित करने का संदेश देती है। उनके अनुसार सृष्टि का प्रत्येक तत्व 'मनुष्य, पशु–पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, जल और वायु' एक–दूसरे पर आश्रित हैं। अतः किसी एक तत्व की उपेक्षा या विनाश समग्र

प्राकृतिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। यही विचार सह–अस्तित्व की व्यापक अवधारणा को अभिव्यक्त करता है।

गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी शिक्षाओं में यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य को प्रकृति पर अधिकार स्थापित करने के स्थान पर उसके साथ संतुलित और उत्तरदायी व्यवहार करना चाहिए। उन्होंने जीव–दया, वृक्ष–संरक्षण, जल–संरक्षण तथा संयमित जीवन को धर्म और नैतिकता का अनिवार्य अंग माना। उनकी दृष्टि में समस्त प्राणियों में एक ही परम चेतना का निवास है, इसलिए प्रत्येक जीव के प्रति करुणा और सम्मान का भाव रखना सच्ची भक्ति का परिचायक है।

सबदवाणी में सह–अस्तित्व का सिद्धांत केवल पर्यावरणीय चेतना तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक समरसता और मानवीय समानता का भी समर्थक है। गुरु जम्भेश्वर जी ने जाति, वर्ग और भेदभाव से ऊपर उठकर समस्त मानव समाज में प्रेम, सहयोग और सद्भाव की स्थापना पर बल दिया। उनकी यह दृष्टि समाज और प्रकृति के बीच संतुलित संबंधों को मजबूत करती है।

बिश्नोई समाज की जीवन–पद्धति में सह–अस्तित्व का यह सिद्धांत आज भी जीवंत रूप में दिखाई देता है, जहाँ वन्यजीवों, वृक्षों और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा को धार्मिक कर्तव्य माना जाता है। खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान इस जीवन–दर्शन का सर्वोच्च उदाहरण है। गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में सह–अस्तित्व का सिद्धांत आध्यात्मिक चेतना, पर्यावरणीय नैतिकता और लोकमंगल की भावना का समन्वित प्रतिरूप है। यह सिद्धांत वर्तमान समय में मानव और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने के लिए अत्यंत प्रासंगिक एवं मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

समकालीन पर्यावरणीय संकट और गुरू जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ :

वर्तमान युग में पर्यावरणीय संकट विश्व की सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक बन चुका है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक तापवृद्धि, वनों का निरंतर विनाश, जल स्रोतों का प्रदूषण, जैव विविधता का ह्रास तथा प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन मानव सभ्यता के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रहे हैं। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावादी जीवन–शैली ने प्रकृति के संतुलन को गहराई से प्रभावित किया है। ऐसे समय में गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ पर्यावरण संरक्षण के लिए एक दूरदर्शी और जीवनोपयोगी मार्गदर्शन प्रदान करती हैं।

गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी सबदवाणी में प्रकृति को जीवन का आधार मानते हुए उसके संरक्षण को धर्म, नैतिकता और मानवीय कर्तव्य से जोड़ा। उन्होंने हरे वृक्षों की रक्षा, जीव–दया, जल के सदुपयोग तथा प्राकृतिक संसाधनों के संयमित उपयोग का संदेश देकर मनुष्य को प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा दी। उनकी दृष्टि में प्रकृति का संरक्षण केवल पर्यावरणीय आवश्यकता नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व भी है।

समकालीन पर्यावरणीय संकट का एक प्रमुख कारण मनुष्य की असीमित उपभोग प्रवृत्ति है। गुरु जम्भेश्वर जी ने इसके विपरीत सादगी, संतोष और संयम को आदर्श जीवन का आधार माना। उनका मानना था कि आवश्यकता के अनुरूप संसाधनों का उपयोग और प्रकृति के प्रति सम्मानपूर्ण व्यवहार ही दीर्घकालीन समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। यह विचार आज की सतत विकास की अवधारणा के साथ पूर्णतः सामंजस्य स्थापित करता

है।

गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाओं का व्यावहारिक स्वरूप बिश्नोई समाज की जीवन–पद्धति में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वन्यजीवों की रक्षा, हरे वृक्षों का संरक्षण तथा पर्यावरण के प्रति समर्पण की भावना आज भी इस समुदाय की पहचान है। खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान यह सिद्ध करता है कि प्रकृति की रक्षा के लिए त्याग और समर्पण की भावना भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का अभिन्न अंग रही है।

आज जब विश्व पर्यावरणीय असंतुलन के दुष्परिणामों का सामना कर रहा है, तब गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ मानव को प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व, नैतिक उत्तरदायित्व और संतुलित जीवन–पद्धति अपनाने की प्रेरणा देती हैं। उनकी वाणी यह संदेश देती है कि पर्यावरण संरक्षण केवल सरकारी नीतियों का विषय नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के आचरण और सामाजिक चेतना का हिस्सा होना चाहिए।

अतः कहा जा सकता है कि गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ समकालीन पर्यावरणीय संकट के समाधान के लिए एक सुदृढ़ नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान करती हैं। उनका जीवन–दर्शन मानव, प्रकृति और समस्त जीव–जगत के मध्य संतुलित संबंध स्थापित करने की प्रेरणा देता है तथा वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए सतत एवं समरस जीवन की दिशा निर्धारित करता है।

निष्कर्ष :

गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी भारतीय भक्ति साहित्य की एक महत्वपूर्ण धरोहर है, जिसमें भक्ति के साथ–साथ प्रकृति–प्रेम, जीव–दया, नैतिकता और लोककल्याण की भावना का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। उनकी वाणी केवल ईश्वर की आराधना तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव को ऐसा जीवन जीने की प्रेरणा देती है जिससे समाज और प्रकृति दोनों का कल्याण हो सके।

इस शोध के माध्यम से यह ज्ञात हुआ कि गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी शिक्षाओं में वृक्षों की रक्षा, वन्यजीवों के संरक्षण, जल के सदुपयोग, संयमित जीवन तथा समस्त जीवों के प्रति करुणा का संदेश दिया। उन्होंने मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलित संबंध स्थापित करने पर विशेष बल दिया। उनकी दृष्टि में सच्ची भक्ति वही है, जो व्यवहार में दया, सत्य, अहिंसा और पर्यावरण संरक्षण के रूप में दिखाई दे।

शोध के दौरान यह भी स्पष्ट हुआ कि गुरु जम्भेश्वर जी की पर्यावरणीय चेतना केवल सैद्धांतिक विचार नहीं थी, बल्कि उनके अनुयायियों ने उसे अपने जीवन में अपनाया। बिश्नोई समाज द्वारा हरे वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा तथा खेजड़ली का ऐतिहासिक बलिदान इस बात का प्रमाण है कि उनकी शिक्षाएँ व्यवहारिक जीवन में भी पूर्ण निष्ठा के साथ पालन की गईं। यह घटना आज भी पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में त्याग और समर्पण का अनुपम उदाहरण मानी जाती है।

वर्तमान समय में जब जलवायु परिवर्तन, जल–संकट, वनों की कटाई और जैव विविधता का ह्रास विश्व की गंभीर समस्याएँ बन चुकी हैं, तब गुरु जम्भेश्वर जी की शिक्षाएँ और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। उनका जीवन–दर्शन हमें यह संदेश देता है कि प्रकृति का संरक्षण केवल सरकारों या संस्थाओं का दायित्व नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक कर्तव्य है। यदि मनुष्य प्रकृति के साथ संतुलित और संयमित जीवन अपनाए, तो पर्यावरणीय संकट को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

अंततः कहा जा सकता है कि गुरु जम्भेश्वर जी की सबदवाणी भक्ति, मानवीय मूल्यों और पर्यावरणीय

नैतिकता का अद्वितीय संगम है। उनकी शिक्षाएँ आज भी समाज को प्रकृति के प्रति संवेदनशील, जीवों के प्रति दयालु तथा नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। यही उनकी वाणी की सबसे बड़ी विशेषता है और यही कारण है कि उनका साहित्य वर्तमान समय में भी उतना ही उपयोगी और प्रासंगिक है जितना अपने समय में था। प्रस्तुत शोध इस तथ्य को स्थापित करता है कि गुरु जम्भेश्वर जी की विचारधारा सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण और लोकमंगल की दृष्टि से आज भी एक सशक्त मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार की जा सकती है।

संदर्भ सूची :

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद। कबीर। नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2019.
2. शुक्ल, रामचंद्र। हिंदी साहित्य का इतिहास। वाराणसी नागरी, प्रचारिणी सभा, 2020.
3. द्विवेदी, हजारीप्रसाद। हिंदी साहित्य की भूमिका। नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2018.
4. चतुर्वेदी, परशुराम। संत साहित्य की रूपरेखा। इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, 2017.
5. सिंह, नामवर। इतिहास और आलोचना। नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2016.
6. सुथार, रोहतास कुमार। गुरु जम्भेश्वर वाणी, दार्शनिक विश्लेषण। कुरुक्षेत्र, निर्मल बुक एजेंसी, 1994.
7. महेश्वरी, हरिराम। जम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य। कोलकाता, बी. आर. पब्लिशिंग, 1970.
8. मीणा, एस. के. संत साहित्य और गुरु जम्भोजी। नई दिल्ली, अनंग प्रकाशन, 2020.
9. बिश्नोई, साहिराम। संत जम्भोजी तथा बिश्नोई दर्शन। नई दिल्ली, अनंग प्रकाशन, 2020.
10. जम्भसागर श्री गुरु जम्भेश्वर जी द्वारा उच्चारित सबदवाणी की हिंदी टीका राजस्थान जम्भाणी साहित्य अकादमी, 2023..
11. हरिराम महेश्वरी, जम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, कोलकाता, बी.आर. पब्लिशिंग, 1970, पृ. 45।

मो. 8307520105

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 22-27

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बेनीपुरी के कहानी–साहित्य में अनसुने समाज की उपस्थिति

दिव्या, शोधार्थी,
डॉ. अनामिका सिंह, शोध निर्देशिका,
हिन्दी विभाग, पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया, बिहार।

सार :

रामवृक्ष बेनीपुरी हिंदी साहित्य के उन रचनाकारों में से हैं जिन्होंने अपने कथा–साहित्य में समाज के उस वर्ग को केंद्र में रखा जिसे मुख्यधारा के साहित्य में प्रायः नजरअंदाज किया जाता रहा है। बेनीपुरी की कहानियों में किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, और ग्रामीण जन–जीवन के पात्र अपनी संपूर्ण मानवीय गरिमा के साथ उपस्थित होते हैं। यह शोध–पत्र बेनीपुरी के कहानी–साहित्य का विश्लेषण इस दृष्टिकोण से करता है कि किस प्रकार उन्होंने अनसुने, उपेक्षित और हाशिए पर पड़े समाज को अपनी कहानियों का नायक बनाया। बेनीपुरी का जन्म और कर्म–क्षेत्र बिहार के ग्रामीण परिवेश से जुड़ा रहा, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उनकी रचनाओं में दिखता है। उनकी कहानियाँ केवल कथात्मक मनोरंजन नहीं बल्कि सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज हैं। इस अध्ययन में बेनीपुरी की प्रमुख कहानियों, उनकी भाषा–शैली, चरित्र–चित्रण और सामाजिक चेतना का विश्लेषण किया गया है। शोध यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि बेनीपुरी ने प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए ग्रामीण और श्रमिक वर्ग की पीड़ा, संघर्ष और आकांक्षाओं को साहित्यिक स्वर दिया। यह अध्ययन हिंदी कथा–साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद की परंपरा को समझने में सहायक होगा।

मुख्य शब्द : बेनीपुरी, हाशिए का समाज, ग्रामीण यथार्थवाद, कथा–साहित्य, सामाजिक चेतना, दलित–शोषित वर्ग।

1. प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास में रामवृक्ष बेनीपुरी (1902–1968) का स्थान बहुआयामी रचनाकार के रूप में सुरक्षित है। वे केवल कहानीकार ही नहीं, बल्कि निबंधकार, नाटककार, रेखाचित्रकार, पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी भी थे। बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के बेनीपुर गाँव में जन्मे बेनीपुरी का संपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व ग्रामीण भारत की मिट्टी से गहराई से जुड़ा हुआ है। उनकी रचनाओं में जो समाज प्रतिबिंबित होता है, वह नगरीय मध्यवर्गीय समाज नहीं, बल्कि वह वंचित, श्रमशील और संघर्षरत समाज है जिसे आधुनिक भारत के निर्माण में कोई विशेष श्रेय नहीं मिला। बेनीपुरी का कहानी–साहित्य संख्या में अधिक विस्तृत नहीं है, परंतु जो भी कहानियाँ उन्होंने लिखीं, उनमें गहरी सामाजिक चेतना और मानवीय संवेदना का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। उनकी कहानियों के पात्र किसान, मजदूर, अनपढ़ ग्रामीण स्त्री–पुरुष, गरीब कारीगर और समाज के निचले तबके के

लोग हैं, जिनकी आवाज सामान्यतः इतिहास और साहित्य के पन्नों से गायब रहती है। यह शोध–पत्र इस 'अनसुने समाज' की उपस्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास है– यह जानने का प्रयास कि बेनीपुरी ने किस प्रकार और किन साहित्यिक उपकरणों से इस वर्ग को कथा का केंद्र बनाया। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि बेनीपुरी की कहानियाँ केवल कलात्मक रचनाएँ नहीं, बल्कि सामाजिक दस्तावेज भी हैं, जो स्वतंत्रता–पूर्व और स्वतंत्रता–पश्चात भारत के ग्रामीण और श्रमिक समाज की वास्तविक स्थिति को उजागर करती हैं।

2. साहित्य की समीक्षा :

बेनीपुरी पर हुए पूर्ववर्ती अध्ययनों में अधिकांश विद्वानों ने उनके निबंध–साहित्य, विशेषकर 'गेहूँ और गुलाब' तथा रेखाचित्र–संग्रह 'माटी की मूरतें' को केंद्र में रखा है। डॉ. नामवर सिंह और रामविलास शर्मा जैसे आलोचकों ने हिंदी के यथार्थवादी कथा–साहित्य की परंपरा पर विस्तार से लिखा है, जिसमें प्रेमचंद को केंद्रीय स्थान दिया गया है, परंतु बेनीपुरी के कहानी–साहित्य पर स्वतंत्र और विस्तृत आलोचनात्मक कार्य अपेक्षाकृत सीमित रहा है। कुछ आलोचकों ने बेनीपुरी को 'जनवादी लेखक' की श्रेणी में रखा है और उनकी रचनाओं में निहित वर्ग–चेतना तथा सामाजिक यथार्थवाद को रेखांकित किया है। बेनीपुरी स्वयं प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े रहे, और समाजवादी विचारधारा से प्रभावित रहे, जिसका प्रभाव उनकी कहानियों के विषय–चयन में स्पष्ट दिखता है। 'माटी की मूरतें' को आलोचकों ने हिंदी रेखाचित्र साहित्य की एक मील का पत्थर रचना माना है, जिसमें बेनीपुरी ने आमजनों 'मजूरिन, बेगर, बलदेव सिंह जैसे सामान्य पात्रों' का जीवंत चित्रण किया। यद्यपि यह रचना औपचारिक रूप से कहानी की श्रेणी में नहीं आती, परंतु इसकी कथात्मक शैली और चरित्र–चित्रण की पद्धति बेनीपुरी की कहानी–कला को समझने की कुंजी प्रदान करती है। विद्यमान साहित्य में यह कमी स्पष्ट दिखती है कि बेनीपुरी के विशिष्ट कहानी–संग्रहों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, विशेषतः 'अनसुने वर्ग' की उपस्थिति के आलोक में, व्यवस्थित अध्ययन कम हुआ है। प्रस्तुत शोध इस रिक्तता को भरने का प्रयास करता है।

3. शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध–पत्र गुणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है।

4. बेनीपुरी के कहानी-साहित्य में अनसुने समाज की उपस्थिति :

4.1. ग्रामीण कृषक समाज की प्रामाणिक उपस्थिति :

बेनीपुरी जब किसान का चित्रण करते हैं, तो वहाँ कोई दूरी महसूस नहीं होती। यह उस लेखक की तरह नहीं है जो शहर में बैठकर, अखबार में पढ़ी हुई किसानों की दुर्दशा के बारे में कल्पना करके कहानी लिख रहा हो। बेनीपुरी स्वयं उस मिट्टी से उठे थे जिसकी बात वे कर रहे थे। उनकी कहानियों में खेत केवल एक स्थान नहीं, बल्कि एक जीवित चरित्र की तरह उपस्थित रहता हैकृजो कभी फसल देकर खुशी बाँटता है, और कभी सूखे या बाढ़ की सूरत में किसान के परिवार को भुखमरी की कगार पर ला खड़ा करता है। जो बात इस चित्रण को खास बनाती है, वह यह है कि बेनीपुरी किसान को कभी एक 'टाइप' या प्रतीक के रूप में पेश नहीं करते। उनके किसान पात्रों के अपने नाम हैं, अपनी आदतें हैं, अपनी छोटी–छोटी खुशियाँ और चिंताएँ हैं। एक किसान अपने बैल से बात करता है, एक दूसरा अपनी बेटी की शादी के लिए कर्ज लेने पर मजबूर होता है, कोई तीसरा महाजन के सामने सिर झुकाए खड़ा रहता है' लेकिन भीतर से टूटा नहीं है। यही बारीकी बेनीपुरी को खास

बनाती है।

कर्ज का मुद्दा तो जैसे उनकी कहानियों में बार–बार लौटता है। महाजनी व्यवस्था ने जिस तरह किसान को पीढ़ियों तक बंधक बना रखा था, उसका असर बेनीपुरी ने बहुत बारीकी से पकड़ा है 'न ज्यादा नाटकीय, न कोरी सहानुभूति जताते हुए, बल्कि जैसे यह रोजमर्रा की सच्चाई हो। मौसम की अनिश्चितता भी इसी तरह आती है' कभी बारिश न होने की चिंता, कभी अचानक की बाढ़ का डर। यह सब इतने सहज ढंग से बुना गया है कि पढ़ते समय लगता है जैसे हम खुद उस खेत के किनारे बैठे हैं। इस सबके बावजूद, बेनीपुरी का किसान कभी पूरी तरह हार नहीं मानता। उसमें मिट्टी से जुड़े रहने की एक जिद है, एक उम्मीद है कि अगली फसल बेहतर होगी। यही उम्मीद उनकी कहानियों को निराशा में डूबने नहीं देती, बल्कि एक यथार्थवादी आशावाद की तरफ ले जाती है।

4.2. स्त्री पात्रों का संवेदनशील एवं सशक्त चित्रण :

बेनीपुरी की कहानियों में औरतें जिस तरह दिखाई जाती हैं, वह उस जमाने के बहुत से लेखकों से अलग है। आमतौर पर तब की कहानियों में औरत या तो पूरी तरह बेचारी और रोती–बिलखती दिखाई जाती थी, या फिर उसे एक आदर्श, लगभग देवी जैसा रूप दे दिया जाता था। बेनीपुरी ने इन दोनों ढाँचों से बचने की कोशिश की।

'माटी की मूरतें' की मजूरिन को याद करें– वह दिन भर पत्थर तोड़ती है, मेहनत करती है, और इस सबके बीच उसके चेहरे पर एक गुस्सा भी है, एक हँसी भी है, एक थकान भी है। वह केवल पीड़ा का प्रतीक नहीं, बल्कि एक पूरी इंसान है जिसके भीतर कई भाव एक साथ मौजूद हैं। बेनीपुरी उसे रोमानी ढंग से नहीं सजाते न उसकी गरीबी को महिमामंडित करते हैं, न उसकी मेहनत को कोई पवित्र बलिदान बना देते हैं। वह बस अपनी जिंदगी जी रही है, जैसी भी है। यही बात उनकी दूसरी स्त्री पात्रों में भी दिखती है। एक विधवा जो अपने बच्चों को पालने के लिए दिन–रात मजदूरी करती है, एक नई बहू जो अपने ससुराल में अपनी जगह बनाने की कोशिश में है, एक बूढ़ी औरत जो गाँव की पंचायत में भी अपनी बात कहने का हौसला रखती है– इन सबमें एक चीज सामान्य है : ये सब अपने हालात से लड़ रही हैं, हार नहीं मानतीं। ध्यान देने वाली बात यह भी है कि बेनीपुरी इन स्त्रियों को केवल घर की चार दीवारी में कैद नहीं रखते। वे खेत में काम करती हैं, बाजार जाती हैं, अपने अधिकारों की बात करती हैं– यह सब उस दौर के लिए काफी आगे की सोच थी। शायद इसी वजह से बेनीपुरी की स्त्री पात्र आज भी पढ़ने में ताजा और सच्ची लगती हैं, बासी या बनावटी नहीं।

4.3. श्रमिक और कारीगर वर्ग की आवाज :

समाज में जो लोग सबसे ज्यादा काम करते हैं, वे ही अक्सर साहित्य और इतिहास में सबसे कम जगह पाते हैं। बेनीपुरी ने इस विरोधाभास को पहचाना और अपनी कहानियों में मजदूरों, बेगारों और छोटे कारीगरों को वह जगह दी जो उन्हें कहीं और नहीं मिलती थी। सोचिए उस बेगार की हालत के बारे में, जिसे जमींदार या ठेकेदार के लिए बिना मजदूरी के काम करना पड़ता था। यह कोई दूर की बात नहीं थी– यह तब के बिहार की रोजमर्रा की सच्चाई थी। बेनीपुरी ने इस अन्याय को सीधे शब्दों में नहीं, बल्कि पात्रों की रोजमर्रा की जिंदगी के जरिए दिखाया। एक बेगार किस तरह सुबह से शाम तक काम करता है, फिर भी रात को खाली पेट सोता है– यह दृश्य खुद ही बहुत कुछ कह देता है, बिना किसी भाषण के। कारीगरों का चित्रण भी इसी तरह बारीक

है। चाहे वह बढ़ई हो, लोहार हो, या बुनकर– इनके हाथों का हुनर, इनकी मेहनत की कीमत समाज में कभी ठीक से नहीं पहचानी गई। बेनीपुरी इन्हें दिखाते समय इनके काम की प्रक्रिया का भी ध्यान रखते हैं– कैसे एक कारीगर अपने औजार से प्यार करता है, कैसे वह अपने काम में एक तरह का गर्व महसूस करता है, भले ही समाज उसे कमतर समझे। यह सिर्फ सहानुभूति जताने का मामला नहीं है। बेनीपुरी इन पात्रों को सम्मान देते हैं, उनकी मेहनत को मूल्य देते हैं। वे यह दिखाते हैं कि समाज की पूरी अर्थव्यवस्था इन्हीं हाथों पर टिकी है, फिर भी इन्हीं हाथों को सबसे कम सम्मान मिलता है। यह विरोधाभास उनकी कहानियों में एक चुपचाप लेकिन गहरी आलोचना की तरह काम करता है– बिना नारेबाजी के, सिर्फ सच्चाई दिखाकर।

4.4. सामंती और औपनिवेशिक शोषण की आलोचना :

जिस दौर में बेनीपुरी लिख रहे थे, वह दौर जमींदारी प्रथा और अंग्रेजी हुकूमत का था। दोनों मिलकर एक ऐसा जाल बना देते थे जिससे आम आदमी का बच निकलना लगभग नामुमकिन था। बेनीपुरी की कहानियों में यह जाल बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, हालाँकि वे कभी सीधे राजनीतिक भाषण नहीं देते। जमींदार पात्र अक्सर दूर से, ताकत के एक प्रतीक के रूप में मौजूद रहता है– उसका असली चेहरा कम दिखता है, लेकिन उसका असर हर जगह महसूस होता है। किसान उसके डर में जीता है, महाजन उसी व्यवस्था का एक हिस्सा बनकर ब्याज की दर बढ़ाता रहता है, और गाँव का आम आदमी इस पूरे ढाँचे में फँसा रहता है। बेनीपुरी इस फँसाव को बहुत संवेदनशीलता से दिखाते हैं– न ज्यादा गुस्से में, न ठंडे विश्लेषण की तरह, बल्कि जैसे यह दर्द उन्होंने खुद महसूस किया हो। औपनिवेशिक शोषण की बात करें तो यह सीधे अंग्रेज अफसरों के चित्रण से नहीं, बल्कि उनकी नीतियों के असर से दिखाई जाती हैकृलगान का बोझ, जमीन के अधिकारों का छिन जाना, स्थानीय अर्थव्यवस्था का बिखरना। यह सब बेनीपुरी की कहानियों में पृष्ठभूमि में नहीं, बल्कि पात्रों की रोज की मुश्किलों के रूप में सामने आता है। खास बात यह है कि बेनीपुरी इस शोषण का केवल आर्थिक पहलू नहीं दिखाते, बल्कि इसका मनोवैज्ञानिक असर भी पकड़ते हैं– किस तरह बार–बार के अपमान और दबाव से एक इंसान धीरे–धीरे अपने आत्मविश्वास को खोने लगता है, और फिर भी किसी कोने में उम्मीद की एक चिंगारी बचाए रखता है। यही चिंगारी, यही प्रतिरोध की हल्की सी झलक, बेनीपुरी की आलोचना को निराशावाद से बचाती है और उसे एक उम्मीद से भरी यथार्थवादिता बनाती है।

4.5. भाषा-शैली में लोक-तत्वों का समावेश :

बेनीपुरी की भाषा पढ़ते समय एक अलग ही अनुभव होता है। यह वह साफ–सुथरी, किताबी हिंदी नहीं है जो स्कूल की किताबों में मिलती है। इसमें बिहार की मिट्टी की खुशबू है– वहाँ के लोकोक्तियाँ, मुहावरे, और बोलने का अपना अंदाज। जब एक किसान पात्र बोलता है, तो वह वैसे ही बोलता है जैसे असल जिंदगी का किसान बोलता– न ज्यादा सजा–सजाया, न साहित्यिक भारीपन से लदा हुआ। यह भाषिक चयन कोई संयोग नहीं है, बल्कि एक सोची–समझी पसंद है। बेनीपुरी यह दिखाना चाहते थे कि जिस भाषा को 'अनपढ़' या 'देहाती' कहकर नीचा समझा जाता है, उसमें भी उतनी ही गहराई और सुंदरता है जितनी किसी भी 'शुद्ध' साहित्यिक भाषा में। लोकोक्तियों और मुहावरों का इस्तेमाल भी इसी सोच का हिस्सा है। ये सिर्फ भाषा को रंगीन बनाने के लिए नहीं डाले गए हैं, बल्कि ये उस समाज की सोचने की पूरी प्रक्रिया को दिखाते हैं– वे चीजों को कैसे समझते हैं, कैसे अपने अनुभव को शब्दों में ढालते हैं। एक कहावत जो कोई बूढ़ी औरत बोलती है, उसमें

पीढ़ियों का अनुभव छुपा होता है। यह भाषिक प्रयोग पढ़ने वालों को भी एक अलग दुनिया में ले जाता है। शहरी, पढ़े–लिखे पाठक के लिए यह भाषा शुरू में अजनबी लग सकती है, लेकिन धीरे–धीरे यही भाषा कहानी को इतना सजीव बना देती है कि पात्र किताब के पन्नों से उठकर सामने खड़े महसूस होते हैं। यही बेनीपुरी की सबसे बड़ी ताकत है– वे भाषा के जरिए सिर्फ कहानी नहीं कहते, बल्कि एक पूरा सामाजिक और सांस्कृतिक माहौल रच देते हैं।

4.6. मानवीय गरिमा और प्रतिरोध की चेतना :

बेनीपुरी के पात्रों की सबसे खूबसूरत बात यह है कि वे चाहे कितनी भी मुश्किल हालत में हों, अपनी इंसानियत और इज्जत को कभी पूरी तरह नहीं खोते। यह बात उन्हें कई दूसरी कहानियों के 'बेचारे' किरदारों से अलग कर देती है, जो सिर्फ दया का विषय बनकर रह जाते हैं। एक मजदूर भले ही दिन भर पसीना बहाए, लेकिन शाम को जब वह अपने घर लौटता है, तो उसके चेहरे पर एक संतोष होता है– यह संतोष उसकी मेहनत का है, उसके आत्म–सम्मान का है। एक किसान भले ही महाजन के सामने झुका हो, लेकिन उसकी आँखों में एक चमक बची रहती है जो कहती है कि वह हार नहीं मानेगा। यह छोटी–छोटी चीजें ही असल में बड़ी बात कह जाती हैं।

प्रतिरोध की चेतना भी बेनीपुरी के पात्रों में बहुत सूक्ष्म ढंग से आती है। यह कोई बड़ा क्रांतिकारी भाषण नहीं है, कोई आंदोलन का नारा नहीं है– बल्कि रोज की छोटी–छोटी जिद है। एक स्त्री जो अपनी बात कहने से नहीं डरती, एक मजदूर जो गलत बात पर सवाल उठा देता है, एक किसान जो अन्याय के खिलाफ चुपचाप मगर दृढ़ता से खड़ा रहता है– यह सब प्रतिरोध के अलग–अलग रूप हैं। बेनीपुरी इन पात्रों को निष्क्रिय पीड़ित बनाकर नहीं छोड़ते, बल्कि उन्हें अपनी जिंदगी के सक्रिय किरदार के रूप में दिखाते हैं। यही वजह है कि उनकी कहानियाँ पढ़ने के बाद उदासी नहीं, बल्कि एक तरह की ताकत और उम्मीद का अहसास होता है। यह मानवीय गरिमा ही है जो उनके पात्रों को सच में जीवंत और प्रेरणादायक बनाती है।

4.7. रेखाचित्र शैली का कहानी-कला में प्रयोग :

बेनीपुरी की एक खासियत यह है कि उन्होंने रेखाचित्र और कहानी की सीमाओं को आपस में घुला–मिला दिया। 'माटी की मूरतें' इसका सबसे अच्छा उदाहरण है– यह किताब न पूरी तरह कहानी है, न पूरी तरह संस्मरण, बल्कि दोनों का एक सुंदर मिश्रण है। इस तकनीक की खासियत यह है कि बेनीपुरी असली लोगों, असली घटनाओं को लेकर उनमें कथात्मक रंग भर देते हैं। यानी जो व्यक्ति वास्तव में उनके आस–पास रहा हो, चाहे वह कोई मजूरिन हो, कोई गरीब किसान हो, उसे वे एक कहानी के पात्र की तरह जीवंत बना देते हैं– बिना उसकी असलियत को खोए। यह तरीका पाठक को यह भरोसा देता है कि जो पढ़ा जा रहा है, वह कोरी कल्पना नहीं, बल्कि किसी हद तक सच्चाई है। यह शैली 'अनसुने' लोगों को एक खास तरह की पहचान देती है। इतिहास की किताबों में ऐसे लोगों का नाम कभी नहीं आता– न कोई मजूरिन इतिहास में दर्ज होती है, न कोई बेगार। लेकिन बेनीपुरी जब उन्हें अपने रेखाचित्र–कहानियों में जगह देते हैं, तो वे अचानक एक नाम, एक चेहरा, एक व्यक्तित्व पा जाते हैं। यह एक तरह से उन्हें इतिहास में दर्ज करने जैसा काम है, भले ही यह दर्ज साहित्य के माध्यम से हो रहा हो।

यह मिली–जुली शैली बेनीपुरी की सबसे बड़ी साहित्यिक उपलब्धियों में से एक मानी जा सकती है।

उन्होंने दिखाया कि कहानी कहने के लिए जरूरी नहीं कि सब कुछ काल्पनिक हो– असली जिंदगी की सच्चाइयाँ भी, अगर सही ढंग से कही जाएँ, तो उतनी ही गहरी और असरदार कहानी बन सकती हैं जितनी कोई पूरी तरह से कल्पना से बुनी हुई कथा।

5. निष्कर्ष :

बेनीपुरी का कहानी–साहित्य हिंदी साहित्य की उस धारा का प्रतिनिधित्व करता है जो मुख्यधारा से हटकर समाज के उपेक्षित, श्रमशील और संघर्षरत वर्ग को केंद्र में लाती है। उनकी रचनाओं में किसान, मजदूर, स्त्री और निम्न–वर्गीय कारीगरों की उपस्थिति आकस्मिक नहीं, बल्कि एक सुविचारित साहित्यिक एवं वैचारिक प्रतिबद्धता का परिणाम है। बेनीपुरी ने इन पात्रों को न तो दया का विषय बनाया और न ही उन्हें रोमानी आदर्शीकरण से ग्रस्त किया, बल्कि उनकी मानवीय जटिलता, संघर्ष–शक्ति और आत्म–गौरव को यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया। यह अध्ययन स्थापित करता है कि बेनीपुरी प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा के सशक्त अनुगामी रहे, परंतु उनकी अपनी विशिष्ट शैली 'विशेषतः रेखाचित्रात्मक तकनीक और बिहारी लोक–भाषा का प्रयोग' उन्हें एक स्वतंत्र साहित्यिक पहचान प्रदान करती है। आज जब साहित्य में हाशिए के समाज की उपस्थिति और प्रतिनिधित्व पर पुनर्विचार हो रहा है, बेनीपुरी का कथा–साहित्य इस दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन की माँग करता है।

संदर्भ सूची :

1. बेनीपुरी, रामवृक्ष, माटी की मूरतें, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1995.
2. बेनीपुरी, रामवृक्ष, गेहूँ और गुलाब, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1994.
3. बेनीपुरी, रामवृक्ष, चिता के फूल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1996.
4. बेनीपुरी, रामवृक्ष, कहानियाँ : रामवृक्ष बेनीपुरी, संपादक विश्वनाथ प्रसाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2000.
5. शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन, 1972.
6. शर्मा, रामविलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, 1980.
7. सिंह, नामवर, कहानी : नई कहानी, राजकमल प्रकाशन, 1988.
8. सिंह, नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, 1993.
9. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, राजकमल प्रकाशन, 2005.
10. वर्मा, धीरेन्द्र, हिंदी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल लिमिटेड, 1985.
11. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद, हिंदी साहित्य का अतीत, हिंदुस्तानी एकेडमी, 1960.
12. गुप्त, गणपतिचंद्र, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, 1990.
13. बेनीपुरी, रामवृक्ष, बेनीपुरी ग्रंथावली, भाग– 1, बेनीपुरी प्रकाशन, पटना, 1953.
14. बेनीपुरी, रामवृक्ष, बेनीपुरी ग्रंथावली, भाग– 2, बेनीपुरी प्रकाशन, पटना, 1955.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 28-34

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मिथिला की धार्मिक परंपराएँ, कला, साहित्य एवं स्थापत्य : एक सांस्कृतिक–ऐतिहासिक अध्ययन

पिंकी कुमारी, शोधार्थी, इतिहास विभाग
डॉ. रूद्र नारायण, सह– प्राध्यापक, इतिहास विभाग
डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

सार :

मिथिला भारतीय सभ्यता और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है, जिसकी पहचान उसकी प्राचीन धार्मिक परंपराओं, समृद्ध साहित्यिक धरोहर, विशिष्ट कला शैली तथा अद्वितीय स्थापत्य परंपरा के कारण स्थापित हुई है। वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक मिथिला ने भारतीय सांस्कृतिक इतिहास को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है। यहाँ की धार्मिक परंपराओं में वैदिक धर्म, शैव, शाक्त एवं वैष्णव परंपराओं का समन्वित स्वरूप दिखाई देता है, जिसने क्षेत्र की सामाजिक संरचना तथा सांस्कृतिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया। मिथिला की धार्मिक चेतना का प्रभाव यहाँ की कला, साहित्य और स्थापत्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। मिथिला चित्रकला, लोककला, लोकगीत तथा मैथिली साहित्य इस क्षेत्र की सांस्कृतिक समृद्धि के प्रमुख प्रतीक हैं। विशेष रूप से विद्यापति की काव्य परंपरा ने मिथिला को भारतीय साहित्यिक जगत में विशिष्ट स्थान प्रदान किया। इसी प्रकार मंदिर स्थापत्य, धार्मिक स्थल तथा पारंपरिक वास्तुकला मिथिला की सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करते हैं। धार्मिक विश्वासों एवं सांस्कृतिक मूल्यों ने इन सभी रचनात्मक अभिव्यक्तियों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

शोध–पत्र में मिथिला की धार्मिक परंपराओं, कला, साहित्य एवं स्थापत्य का सांस्कृतिक–ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है। अध्ययन ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है तथा द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मिथिला की सांस्कृतिक विरासत धार्मिक आस्थाओं, लोक परंपराओं तथा सृजनात्मक अभिव्यक्तियों के परस्पर समन्वय का परिणाम है। वर्तमान समय में इस विरासत का संरक्षण न केवल क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान की दृष्टि से आवश्यक है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के संवर्धन एवं संरक्षण के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कुंजी शब्द : मिथिला, धार्मिक परंपरा, मैथिली साहित्य, मिथिला चित्रकला, स्थापत्य कला, सांस्कृतिक विरासत।

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति की दीर्घकालीन विकास यात्रा में कुछ ऐसे सांस्कृतिक क्षेत्र रहे हैं जिन्होंने न केवल अपने

भौगोलिक परिवेश को प्रभावित किया, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय सभ्यता के बौद्धिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। मिथिला ऐसा ही एक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र है, जिसकी पहचान प्राचीन काल से ज्ञान, दर्शन, धर्म, साहित्य, कला और लोकसंस्कृति के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में रही है। उत्तर बिहार तथा नेपाल के तराई क्षेत्र में विस्तृत मिथिला अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक मूल्यों तथा धार्मिक आस्थाओं के कारण भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक अलग स्थान रखती है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक मिथिला ने भारतीय सांस्कृतिक विरासत को समृद्ध करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। यहाँ विकसित धार्मिक परंपराएँ, लोकाचार, साहित्यिक रचनाएँ, चित्रकला एवं स्थापत्य कला इस क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना और ऐतिहासिक निरंतरता को अभिव्यक्त करते हैं। मिथिला की सांस्कृतिक संरचना का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यहाँ धर्म, कला, साहित्य एवं स्थापत्य परस्पर जुड़े हुए तत्व हैं, जिन्होंने सामूहिक रूप से क्षेत्रीय पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मिथिला का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य :

मिथिला का इतिहास अत्यंत प्राचीन एवं गौरवशाली रहा है। वैदिक साहित्य, उपनिषदों, रामायण तथा पुराणों में मिथिला का उल्लेख एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं धार्मिक केंद्र के रूप में मिलता है। प्राचीन काल में यह क्षेत्र विदेह जनपद का प्रमुख भाग था, जहाँ राजा जनक का शासन स्थापित था। राजा जनक केवल एक शासक ही नहीं, बल्कि दर्शन एवं ज्ञान के संरक्षक के रूप में भी प्रसिद्ध थे। उनके दरबार में याज्ञवल्क्य, गार्गी एवं मैत्रेयी जैसे विद्वानों की उपस्थिति मिथिला की बौद्धिक समृद्धि का प्रमाण प्रस्तुत करती है। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने मिथिला को धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट पहचान प्रदान की।

मिथिला की सांस्कृतिक विशेषता इसकी निरंतरता में निहित है। समय के साथ राजनीतिक परिवर्तन हुए, किंतु यहाँ की सांस्कृतिक परंपराएँ, लोकविश्वास तथा सामाजिक मूल्य निरंतर विकसित होते रहे। यही कारण है कि मिथिला आज भी अपनी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को जीवंत रूप में संरक्षित किए हुए है।

मिथिला की धार्मिक परंपराएँ एवं धार्मिक विश्वास :

मिथिला की सांस्कृतिक संरचना में धर्म का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ धार्मिक जीवन केवल पूजा–पद्धतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक संगठन, लोकाचार एवं सांस्कृतिक व्यवहार का आधार भी है। मिथिला में वैदिक परंपरा का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। यज्ञ, संस्कार एवं वैदिक अनुष्ठान आज भी सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग हैं। इसके अतिरिक्त शैव, शाक्त एवं वैष्णव परंपराओं का भी व्यापक प्रभाव रहा है।

माता सीता की जन्मस्थली होने के कारण मिथिला की धार्मिक पहचान विशेष रूप से रामायण परंपरा से जुड़ी हुई है। सीता यहाँ केवल एक पौराणिक पात्र नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आदर्श एवं लोकआस्था का केंद्र हैं। इसी प्रकार शिव एवं शक्ति की उपासना भी व्यापक रूप से प्रचलित है। अनेक लोकपर्व, धार्मिक अनुष्ठान तथा व्रत–त्योहार मिथिला के धार्मिक जीवन को समृद्ध बनाते हैं। छठ, सामा–चकेवा, झिझिया तथा मधुश्रावणी जैसे पर्व धार्मिक विश्वासों एवं सांस्कृतिक मूल्यों के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

मिथिला की कला : धार्मिक चेतना की सृजनात्मक अभिव्यक्ति :

मिथिला की कला उसके धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब है। विशेष रूप से मिथिला

चित्रकला या मधुबनी चित्रकला इस क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान का वैश्विक प्रतीक बन चुकी है। इस कला शैली का विकास लोकजीवन एवं धार्मिक परंपराओं के साथ हुआ। प्रारंभिक काल में विवाह, यज्ञ एवं धार्मिक अवसरों पर घरों की दीवारों पर चित्रांकन की परंपरा थी, जो बाद में एक विशिष्ट कला शैली के रूप में विकसित हुई। मिथिला चित्रकला में राम–सीता विवाह, राधा–कृष्ण, शिव–पार्वती, दुर्गा, लक्ष्मी तथा विभिन्न धार्मिक प्रतीकों का चित्रण प्रमुखता से किया जाता है। इन चित्रों में केवल धार्मिक कथाओं का प्रस्तुतीकरण नहीं होता, बल्कि स्थानीय समाज की सांस्कृतिक संवेदनाएँ एवं जीवन–दर्शन भी अभिव्यक्त होते हैं। इस प्रकार मिथिला की कला धार्मिक आस्था एवं सांस्कृतिक सृजनशीलता के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मिथिला का साहित्य : सांस्कृतिक चेतना का दर्पण :

मिथिला का साहित्य भारतीय साहित्यिक परंपरा का महत्वपूर्ण अंग है। संस्कृत एवं मैथिली साहित्य के विकास में इस क्षेत्र का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। मध्यकालीन कवि विद्यापति ने मैथिली साहित्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। उनकी रचनाओं में भक्ति, प्रेम, लोकजीवन एवं धार्मिक चेतना का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। विद्यापति की पदावली न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि मिथिला की सांस्कृतिक एवं धार्मिक संवेदनाओं का भी प्रतिनिधित्व करती है।

मैथिली लोकसाहित्य भी इस क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण भाग है। लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें एवं लोकगाथाएँ मिथिला के सामाजिक जीवन, धार्मिक विश्वासों तथा सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित करती हैं। विवाह गीतों, पर्व–त्योहारों से जुड़े गीतों एवं देवी–देवताओं की स्तुतियों में क्षेत्रीय संस्कृति की गहरी झलक दिखाई देती है। इस प्रकार साहित्य मिथिला की सामूहिक स्मृति एवं सांस्कृतिक पहचान का सशक्त माध्यम बनकर उभरता है।

मिथिला का स्थापत्य : सांस्कृतिक विरासत का भौतिक स्वरूप :

मिथिला का स्थापत्य इस क्षेत्र की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं का मूर्त रूप प्रस्तुत करता है। यहाँ के मंदिर, धार्मिक स्थल, तालाब, मठ एवं पारंपरिक आवासीय संरचनाएँ स्थापत्य कला की समृद्ध परंपरा को दर्शाती हैं। मिथिला के अनेक मंदिरों में स्थानीय शिल्पकला एवं धार्मिक प्रतीकों का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। इन संरचनाओं का निर्माण केवल धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नहीं किया गया, बल्कि वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के केंद्र भी रहे हैं।

पारंपरिक मिथिला स्थापत्य में स्थानीय संसाधनों एवं पर्यावरणीय परिस्थितियों का विशेष ध्यान रखा जाता था। मिट्टी, लकड़ी एवं अन्य स्थानीय सामग्रियों का उपयोग कर निर्मित भवन स्थानीय ज्ञान एवं तकनीकी दक्षता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मिथिला का स्थापत्य केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है।

धर्म, कला, साहित्य एवं स्थापत्य का अंतर्संबंध :

मिथिला की सांस्कृतिक संरचना का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यहाँ धर्म, कला, साहित्य एवं स्थापत्य परस्पर गहराई से जुड़े हुए हैं। धार्मिक विश्वासों ने कला को विषयवस्तु प्रदान की, साहित्य को प्रेरणा दी तथा स्थापत्य को स्वरूप प्रदान किया। दूसरी ओर कला, साहित्य एवं स्थापत्य ने धार्मिक परंपराओं के संरक्षण एवं प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह अंतर्संबंध मिथिला की सांस्कृतिक निरंतरता का आधार है।

मिथिला की सांस्कृतिक विरासत यह दर्शाती है कि किसी समाज की धार्मिक चेतना केवल आस्था तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह उसकी कला, साहित्य, स्थापत्य एवं सामाजिक व्यवहार को भी प्रभावित करती है। यही कारण है कि मिथिला की सांस्कृतिक पहचान आज भी जीवंत एवं प्रभावशाली बनी हुई है।

अध्ययन की प्रासंगिकता :

वर्तमान वैश्वीकरण एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर में स्थानीय सांस्कृतिक विरासतों के संरक्षण का महत्व बढ़ गया है। मिथिला की धार्मिक परंपराएँ, कला, साहित्य एवं स्थापत्य केवल क्षेत्रीय धरोहर नहीं हैं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक विविधता के महत्वपूर्ण प्रतीक हैं। इनके अध्ययन से न केवल अतीत की सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायता मिलती है, बल्कि समकालीन समाज में सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता को भी रेखांकित किया जा सकता है। इसलिए मिथिला की सांस्कृतिक विरासत का सांस्कृतिक–ऐतिहासिक अध्ययन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के व्यापक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

शोध के उद्देश्य :

1. मिथिला की धार्मिक परंपराओं एवं धार्मिक विश्वासों के ऐतिहासिक विकास तथा सांस्कृतिक महत्व का अध्ययन करना।
2. मिथिला की कला, साहित्य एवं स्थापत्य पर धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. मिथिला की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण तथा भारतीय संस्कृति में उसके योगदान का मूल्यांकन करना।

साहित्य समीक्षा :

1. **डॉ. कैलाश चन्द्र झा (2018)** ने मिथिला का सांस्कृतिक इतिहास में मिथिला की धार्मिक परंपराओं, लोकविश्वासों एवं सांस्कृतिक विकास का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनके अनुसार धार्मिक आस्थाएँ मिथिला की सांस्कृतिक पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

2. **डॉ. रामविलास मिश्र (2020)** ने मैथिली साहित्य : परंपरा और विकास में विद्यापति साहित्य, लोकसाहित्य तथा मिथिला की साहित्यिक परंपराओं का अध्ययन किया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मिथिला का साहित्य धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण का प्रमुख माध्यम रहा है।

3. **डॉ. विनोद कुमार झा एवं डॉ. नरेन्द्र ठाकुर (2021)** ने मिथिला चित्रकला : इतिहास एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में मिथिला चित्रकला के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयामों का विश्लेषण किया है। उन्होंने इसे मिथिला की सांस्कृतिक अस्मिता का महत्वपूर्ण प्रतीक माना है।

4. **डॉ. अजय कुमार (2022)** ने मिथिला का मंदिर स्थापत्य और सांस्कृतिक विरासत में क्षेत्र के प्रमुख मंदिरों एवं स्थापत्य परंपराओं का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार मिथिला का स्थापत्य धार्मिक परंपराओं एवं सांस्कृतिक निरंतरता का सशक्त प्रमाण है।

5. **संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन :**

(UNESCO) (2023) ने अपनी रिपोर्ट Culture and Heritage for Sustainable Development में स्थानीय सांस्कृतिक विरासत, पारंपरिक कला एवं साहित्य के संरक्षण को सतत सांस्कृतिक विकास का आधार माना है।

यह अध्ययन मिथिला की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण की समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

शोध अंतराल :

उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मिथिला की धार्मिक परंपराओं, कला, साहित्य एवं स्थापत्य पर अनेक विद्वानों द्वारा पृथक–पृथक शोध कार्य किए गए हैं। किंतु मिथिला की धार्मिक परंपराओं, कला, साहित्य एवं स्थापत्य का सांस्कृतिक–ऐतिहासिक दृष्टिकोण से समेकित एवं तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। विशेष रूप से धार्मिक विश्वासों और उनके कला, साहित्य तथा स्थापत्य पर पड़े प्रभावों का समग्र विश्लेषण साहित्य में सीमित रूप से उपलब्ध है। प्रस्तुत शोध इसी अंतराल को भरने का प्रयास करता है तथा मिथिला की सांस्कृतिक विरासत के विभिन्न आयामों को एकीकृत रूप में समझने का प्रयास करता है।

शोध पद्धति :

यह शोध ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है, जिनमें पुस्तकें, शोध–पत्र, जर्नल, अभिलेखीय सामग्री तथा संबंधित रिपोर्टें शामिल हैं। संकलित तथ्यों का विश्लेषण सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया गया है, ताकि मिथिला की धार्मिक परंपराओं, कला, साहित्य एवं स्थापत्य के अंतर्संबंधों को समग्र रूप से समझा जा सके।

परिणाम एवं विश्लेषण :

मिथिला की धार्मिक परंपराएँ, कला, साहित्य एवं स्थापत्य परस्पर गहराई से जुड़े हुए सांस्कृतिक तत्व हैं, जिन्होंने क्षेत्र की विशिष्ट पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मिथिला की धार्मिक परंपराओं का विकास वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक निरंतर होता रहा है। यहाँ शैव, शाक्त एवं वैष्णव परंपराओं के साथ–साथ लोकधार्मिक विश्वासों का भी व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। धार्मिक अनुष्ठान, व्रत–त्योहार तथा लोकपर्व मिथिला के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। इन परंपराओं ने समाज में सांस्कृतिक एकता, सामाजिक समरसता एवं नैतिक मूल्यों के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि मिथिला की कला धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है। विशेष रूप से मिथिला चित्रकला या मधुबनी चित्रकला में धार्मिक कथाओं, देवी–देवताओं, लोकविश्वासों एवं प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया जाता है। यह कला केवल सौंदर्यबोध का माध्यम नहीं है, बल्कि सामाजिक स्मृति, सांस्कृतिक पहचान एवं धार्मिक आस्था का भी प्रतीक है। मिथिला की चित्रकला ने स्थानीय संस्कृति को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

साहित्यिक दृष्टि से मिथिला का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। विद्यापति की काव्यधारा, मैथिली लोकगीत, लोककथाएँ एवं लोकगाथाएँ क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करती हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मिथिला का साहित्य धार्मिक भावनाओं, सामाजिक मूल्यों एवं सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण का प्रभावी माध्यम रहा है। साहित्य ने न केवल सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित किया, बल्कि सामाजिक जीवन को दिशा देने का कार्य भी किया।

स्थापत्य कला के क्षेत्र में भी मिथिला की विशिष्ट पहचान रही है। यहाँ के मंदिर, मठ, सरोवर एवं पारंपरिक भवन स्थानीय शिल्पकला, धार्मिक विश्वासों तथा सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतीक हैं। स्थापत्य संरचनाएँ केवल धार्मिक गतिविधियों का केंद्र नहीं थीं, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के भी प्रमुख केंद्र रही हैं।

इन संरचनाओं में स्थानीय संसाधनों एवं पारंपरिक तकनीकों का उपयोग क्षेत्र की तकनीकी दक्षता एवं पर्यावरणीय समझ को दर्शाता है।

विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मिथिला की धार्मिक परंपराएँ, कला, साहित्य एवं स्थापत्य एक–दूसरे के पूरक हैं। धार्मिक विश्वासों ने कला और साहित्य को विषयवस्तु प्रदान की, जबकि कला, साहित्य एवं स्थापत्य ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी संरक्षित रखने का कार्य किया। इस प्रकार मिथिला की सांस्कृतिक विरासत विविध तत्वों के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। वर्तमान समय में इस विरासत का संरक्षण न केवल क्षेत्रीय सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए आवश्यक है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक धरोहर के संवर्धन के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष यह है,कि मिथिला भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण केंद्र रहा है, जहाँ धार्मिक परंपराओं, कला, साहित्य एवं स्थापत्य का समन्वित विकास हुआ। मिथिला की धार्मिक परंपराएँ केवल आस्था का विषय नहीं हैं, बल्कि उन्होंने क्षेत्र की सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों एवं सामुदायिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया है। वैदिक परंपरा, शैव, शाक्त एवं वैष्णव धर्मधाराओं के साथ–साथ लोकधार्मिक विश्वासों ने मिथिला की सांस्कृतिक पहचान को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है।

अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि मिथिला की कला, विशेषकर मिथिला चित्रकला, धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार मैथिली साहित्य, विद्यापति की काव्य परंपरा तथा लोकसाहित्य ने क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित एवं समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मिथिला का स्थापत्य भी इसकी सांस्कृतिक परंपराओं एवं धार्मिक आस्थाओं का मूर्त रूप प्रस्तुत करता है। मंदिर, मठ एवं अन्य स्थापत्य संरचनाएँ क्षेत्र की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक निरंतरता के प्रमाण हैं।

विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मिथिला की धार्मिक परंपराएँ, कला, साहित्य एवं स्थापत्य एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं तथा सामूहिक रूप से क्षेत्रीय सांस्कृतिक अस्मिता का निर्माण करते हैं। इन सभी तत्वों ने मिथिला को भारतीय संस्कृति में विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। वर्तमान वैश्वीकरण एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के दौर में इस अमूल्य सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है। इसलिए मिथिला की सांस्कृतिक धरोहर का अध्ययन, संरक्षण एवं संवर्धन न केवल क्षेत्रीय पहचान की रक्षा के लिए, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक विरासत के समग्र विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है।

सुझाव :

1. मिथिला की धार्मिक, साहित्यिक एवं कलात्मक विरासत के संरक्षण हेतु विशेष शोध एवं प्रलेखन कार्यक्रम संचालित किए जाएँ।
2. विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में मिथिला की सांस्कृतिक विरासत से संबंधित विषयों को शामिल किया जाए।
3. मिथिला चित्रकला, लोकसाहित्य एवं पारंपरिक स्थापत्य के संरक्षण के लिए सरकारी एवं गैर–सरकारी स्तर पर योजनाएँ विकसित की जाएँ।
4. धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थलों के संरक्षण तथा उनके ऐतिहासिक महत्व के प्रचार–प्रसार पर विशेष ध्यान

दिया जाए।

5. डिजिटल माध्यमों के द्वारा मिथिला की सांस्कृतिक धरोहर का अभिलेखीकरण एवं वैश्विक स्तर पर प्रसार किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. झा, कैलाश चन्द्र (2018), मिथिला का सांस्कृतिक इतिहास, पटनाः बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ. 45–68
2. मिश्र, रामविलास (2020), मैथिली साहित्य : परंपरा और विकास, दरभंगा : मैथिली अकादमी, पृ. 78–102
3. झा, विनोद कुमार, – ठाकुर, नरेन्द्र (2021), मिथिला चित्रकला : इतिहास एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 55–84
4. कुमार, अजय (2022), मिथिला का मंदिर स्थापत्य और सांस्कृतिक विरासत, पटना : ज्ञान प्रकाशन, पृ. 91–117
5. ठाकुर, उपेन्द्र (2015), मिथिला का इतिहास, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ. 112–136
6. झा, अमरनाथ (2014), मिथिला संस्कृति और समाज, दरभंगा : मैथिली साहित्य संस्थान, पृ. 65–89
7. विद्यापति (2010), विद्यापति पदावली (सम्पा. जयकांत मिश्र), पटना : बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ. 25–54
8. मिश्र, जयकांत (2012), मैथिली साहित्य का इतिहास, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ. 140–172
9. सिंह, रामशरण (2016), भारतीय संस्कृति और मिथिला, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृ. 188–210
10. यादव, शिवकुमार (2019), मिथिला की लोकसंस्कृति, पटना : लोकभारती प्रकाशन, पृ. 98–121
11. कुमार, संजीव (2021), "मिथिला की सांस्कृतिक विरासत और धार्मिक परंपराएँ," भारतीय इतिहास समीक्षा, 47 (2), 85–101, पृ. 89–97
12. चौधरी, राधाकांत (2020), "मैथिली लोकसाहित्य में सांस्कृतिक चेतना," लोक संस्कृति शोध पत्रिका, 15 (1), 42–58, पृ. 45–54
13. झा, प्रभाकर (2022), "मिथिला चित्रकला का सांस्कृतिक महत्व," कला एवं संस्कृति जर्नल, 18(3), 61–76, पृ. 64–72
14. मिश्रा, राकेश कुमार (2021), "मिथिला के धार्मिक विश्वास और सामाजिक जीवन," समाज विज्ञान समीक्षा, 12(4), 73–88, पृ. 76–84
15. ठाकुर, मणिकांत (2023), "मिथिला के स्थापत्य में सांस्कृतिक निरंतरता," इतिहास एवं पुरातत्व अध्ययन, 9(2), 55–71, पृ. 58–67
16. UNESCO. (2023), Culture and Heritage for Sustainable Development, Paris: UNESCO Publishing, pp. 32–48
17. UNESCO(2021), Intangible Cultural Heritage and Community Identity, Paris: UNESCO Publishing, pp. 51–67
18. Singh, K. S. (2003), People of India: Bihar, New Delhi: Oxford University Press,pp. 210–234
19. Jha, D. N. (2017), Cultural Traditions of Mithila,New Delhi: Manohar Publishers, pp. 84–109
20. Mishra, Jayakant (2015), History of Maithili Literature,New Delhi : Sahitya Akademi. pp. 120–148

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 35-42

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पंडित दीन दयाल उपाध्याय और उनके सपनों का कश्मीर

सौरभ राय

राजनीति विज्ञान, दिल्ली विश्वविद्यालय।

परिचय :

कश्मीर, जोकि प्राचीन काल से ही भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का सिरमौर रहा, वही कश्मीर भारत की स्वतंत्रता से लेकर अब तक भारतीय राजनीति में एक ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है। यह समय–समय पर मीडिया, राजनीतिक गलियारों, विश्वविद्यालयों की कक्षाओं और भारतीय जनमानस में चर्चा का विषय बना रहता है– कभी अपनी खूबसूरत वादियों में पर्यटन के लिए, तो कभी अपने केसर और सेब जैसे एकाकी उत्पादों के लिए, कभी धारा 370 और 35A द्वारा प्राप्त विशेष रियायतों के लिए तो कभी उनके उन्मूलन के लिए, कभी 1990 में हुए कश्मीरी हिंदुओं के नरसंहार और पलायन के लिए, तो कभी घाटी में बढ़ते आतंकवाद और इस्लामिक कट्टरता के लिये कश्मीर स्वतंत्रता के बाद से ही भारतीय राजनीति तथा लोकमानस में चर्चा का विषय बना रहा है। लेकिन पंडित जी के विचारों में कभी ऐसे विशेष रियायत प्राप्त व आतंकवादग्रसित कश्मीर की कल्पना नहीं की गई थी बल्कि उनके सपनों का कश्मीर एकता, अखंडता, समृद्धि और परस्पर सद्भावना से पोषित कश्मीर था। वह मानते थे कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और वह भी भारत के अन्य प्रांतों की भांति समृद्धि तथा विकास का हकदार है। उनकी दृष्टि में कश्मीर का केवल भौगोलिक महत्व नहीं था, बल्कि उनका मनाना था कि सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी कश्मीर भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का अभिन्न अंग है।

भारतीय राजनीति के इतिहास में 5 अगस्त 2019 का दिन कश्मीर और भारतीय संघ के लिए एक ऐतिहासिक दिन था, जब भारतीय संसद ने अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35A का उन्मूलन कर कश्मीर को प्राप्त विशेष रियायतें समाप्त कर दीं। बहुत से लोगों के लिए यह क्षण कश्मीर में उगते विकास के उस नए सूर्य का प्रतीक था, जो उस कश्मीर घाटी को, विकास की मुख्यधारा में लाने का कार्य करेगा, जो कश्मीर घाटी स्वतंत्रता के बाद से विकास के नाम पर उपेक्षा का विषय रही थी।

मेरे इस लेख के माध्यम से हम यह जानने और समझने का प्रयास करेंगे कि पंडित दीन दयाल उपाध्याय, जो भारतीय जनसंघ (बाद में भारतीय जनता पार्टी) के प्रमुख संस्थापकों व भारतीय आध्यात्म तथा दर्शन के प्रमुख आधुनिक विचारकों के तौर पर एकात्म मानववाद के प्रणेता थे, उनकी एक स्वतंत्र कश्मीर को लेकर भारतीय नीति निर्माताओं से क्या अपेक्षाएं थी व कश्मीर के भविष्य को लेकर पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी ने क्या सपना देखा था। साथ ही अपने इस लेख के माध्यम से हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि पंडित जी क्यों अनुच्छेद 370 को कश्मीर के भारत में विलय तथा उसके विकास में बाधा मानते थे?

जम्मू कश्मीर राज्य का एक संक्षिप्त इतिहास व 370 की शुरूआत :

1947 में हुआ भारत विभाजन सम्पूर्ण भारतीय इतिहास की सबसे भीषण त्रासदियों में से एक था जिससे पाकिस्तान नामक एक नव स्वतंत्र देश का जन्म हुआ। इसने एक बड़ी समस्या को जन्म दिया जो एक नए राष्ट्र के पुनर्निर्माण और उसकी क्षेत्रीय अखंडता को बनाए रखने में बाधा था। भारत विभाजन और अंग्रेजों की 'लैप्स ऑफ पैरामाउंटसी' नीति के कारण, भारत की देशी रियासतों को यह अधिकार मिल गया कि वे स्वयं तय करें कि वे स्वतंत्र रहेंगी, भारतीय संघ का हिस्सा बनेंगी या पाकिस्तान में शामिल होंगी। तत्कालीन भारतीय उपप्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल और उनके सचिव वी.पी. मेनन की दूरदर्शिता के चलते, जूनागढ़, हैदराबाद, और कश्मीर को छोड़कर अन्य रियासतों का भारत में शांतिपूर्ण विलय हो गया। बाद में, जूनागढ़ का विलय जनमत संग्रह के द्वारा और हैदराबाद का विलय 'ऑपरेशन पोलो' नामक पुलिस कार्यवाही के माध्यम से किया गया। लेकिन कश्मीर रियासत, जिसके भारतीय संघ में विलय की जिम्मेदारी पंडित नेहरू के अधिकार क्षेत्र का विषय थी, 1948 के भारत पाकिस्तान युद्ध तक दोनों देशों के मध्य विवाद का विषय बनी रही, और अंततः कश्मीर के तत्कालीन राजा हरी सिंह द्वारा इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन (भारतीय संघ का विलय–पत्र) पर हस्ताक्षर के जरिए भारतीय संघ का हिस्सा बनी।

यदि हम कश्मीर के इतिहास की बात करें तो इसका जिक्र हमें महाभारत, नीलमत पुराण और कल्हण की राजतरंगिणी में मिलता है उपरोक्त पुराणों व धर्मग्रंथों के अनुसार, कश्मीर को महर्षि कश्यप की भूमि माना जाता है क्योंकि प्रारंभ में उन्हीं के द्वारा इसे बसाया गया था। कश्मीर की उसी पवित्र भूमि पर चौथी बौद्ध परिषद, जो 72 ई. में कश्मीर के कुंडलवन में महाराजा कनिष्क के शासनकाल में, वसुमित्र की अध्यक्षता में आयोजित की गई थी, और इसके कुछ समय बाद कश्मीर महायान बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया। इसके उपरांत पूरे गुप्त और गुप्तोत्तर काल तक संपूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया मे बौद्ध धर्म की महायान शाखा के एक प्रमुख तीर्थ के रूप में इसका विकास हुआ और धीरे–धीरे, समय बीतने के साथ–साथ 10वीं शताब्दी तक अभिनवगुप्त के नेतृत्व में कश्मीर शैव मत का प्रमुख केंद्र बनकर उभरा तथा यहीं से संपूर्ण दक्षिण एशिया में शैव मत का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही कश्मीर में भी इस्लामिक शासन की स्थापना हुई, और मुगलों के आगमन के बाद कश्मीर में मुगल आधिपत्य स्थापित हो गया। इस दौरान, कश्मीर, जो शांति और सौहार्द का प्रतीक था, रक्तरंजित हो गया, जिसमें कश्मीरी हिंदुओं और शांतिप्रिय बौद्ध उपासकों का जबरन धर्मांतरण और विस्थापन देखा गया। 18वीं शताब्दी तक आते–आते, मुगलों की कश्मीर पर राजनीतिक पकड़ कमजोर होती गई, और कश्मीर पर महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में सिखों का अधिकार हो गया। महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु और प्रथम आंग्ल–सिख युद्ध (1845–1846) में सिख सेना की पराजय के बाद, अंग्रेजों ने युद्ध क्षतिपूर्ति के नाम पर कश्मीर की 80,000 वर्ग किलोमीटर से अधिक भूमि का अधिग्रहण कर लिया। हालांकि कश्मीर घाटी को छोड़कर कश्मीर की अन्य भूमि अंग्रेजों के आर्थिक हितों के लिए कम उपयोगी थी, लेकिन कश्मीर घाटी की सामरिक स्थिति से अंग्रेज भली–भाँति परिचित थे। इसलिए अंग्रेजों ने लाहौर की संधि के तहत कश्मीर का हिस्सा महाराजा गुलाब सिंह को 75 लाख रुपये में दे दिया, जो पहले महाराजा रणजीत सिंह के एक सामंत थे। इसी डोंगरा वंश के अंतिम शासक महाराजा हरी सिंह ने कश्मीर के भारत में विलय पत्र पर हस्ताक्षर किए थे।

आर्टिकल 370, जिसे उस समय आर्टिकल 306A के तौर पर संविधान में शामिल किया गया, का मसौदा 1949 में एन गोपालस्वामी आयंगर द्वारा तैयार किया गया था। इसके अंतर्गत जम्मू–कश्मीर रियासत को विशेष अधिकार मिले, जैसे एक अलग संविधान सभा, राज्य के मुखिया को प्रधानमंत्री का पद, और राज्य की विधायिका को अन्य राज्यों की विधानसभाओं की अपेक्षा अधिक अधिकार व भारतीय संसद की कई शक्तियाँ की जम्मू कश्मीर मे निष्क्रियत जैसे अनेक विशेष प्रावधान शामिल थे। उस समय इस मसौदे का कांग्रेस के अंदर और विपक्ष द्वारा विरोध हुआ था। पंडित दीन दयाल उपाध्याय और श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने भी इसका कडा विरोध किया। पंडित दीन दयाल उपाध्याय का मानना था कि कश्मीर भारत के लिए भावनात्मक और राजनीतिक मुद्दा है और आर्टिकल 370 में मौजूद प्रावधान कश्मीर के भारत में पूर्ण एकीकरण के मार्ग में एक बड़ी बाधा हैं। वहीं दूसरी ओर जवाहरलाल नेहरू का मानना था कि जम्मू कश्मीर को आर्टिकल 370 के तहत प्राप्त विशेष रियायतें समय के अनुसार धीरे–धीरे अप्रभावी हो जाएंगी।

पंडित उपाध्याय का मानना था कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 ने कश्मीर को अलगाव में डालकर शेष भारत से अलग एक स्वतंत्र पहचान बनाने का अवसर दिया हैं जो भारत की एकता, अखंडता और संप्रभुता के आदर्शों के खिलाफ है। वह इस अनुच्छेद को भारतीय संविधान से हटाने के पक्षधर थे क्योंकि कश्मीर को एक विशेष राज्य का दर्जा देना भविष्य में भारत की एकता और अखंडता के लिए एक बड़ी चुनौती साबित होगा तथा जम्मू कश्मीर और शेष भारत के अन्य राज्यों के मध्य दूरी पैदा करेगा। वह इस बात पर जोर देते थे कि कश्मीर में भी शेष भारत के समान नागरिकता और समान कानून होने चाहिए, जिससे वहां के लोग और शेष भारत के लोग भारतीयता की एक समान भावना महसूस करें। उनके दृष्टिकोण में, कश्मीर में शिक्षा, स्वास्थ्य, और आर्थिक विकास के लिए मजबूत बुनियादी ढाँचा होना चाहिए, ताकि वहाँ के लोग गरीबी और अशिक्षा से बाहर निकल सकें। वह चाहते थे कि कश्मीर एक पर्यटन और सांस्कृतिक केंद्र बने, जिससे वहाँ की सुंदरता और धरोहर को दुनिया के सामने प्रस्तुत किया जा सके। पंडित दीन दयाल जी ने पाञ्चजन्य, अक्तूबर 1, 1956 के अंक मे प्रकाशित अपने एक लेख मे लिखा कि "कश्मीर का अलग संविधान और उसके विशेष अधिकार हमारी बाहरी विविधता के प्रतीक नहीं, बल्कि मौलिक विघटन का संकेत हैं। नेहरू जी भले ही धर्मनिरपेक्षता और पंथनिरपेक्षता की बातें करते हों, लेकिन उन्हें मुसलमानों और उनकी देशभक्ति पर विश्वास नहीं है। वे मुसलमानों को कुछ पद देकर उनका समर्थन खरीदने की कोशिश करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि ईमानदार और देशभक्त मुसलमान पीछे रह जाते हैं और पदलोलुप व्यक्ति आगे आ जाते हैं। बखश्शी और अब्दुल्ला दोनों ही इस प्रवृत्ति के परिणाम हैं, स्थिति और प्रवृत्ति के कारण उनमें केवल अंतर की मात्रा हो सकती है, परंतु उनकी मूल प्रकृति एक ही है"।

भारत सरकार की कश्मीर नीति में साहस की कमी है :

एक बार नेहरूजी ने 1953 में दिल्ली में दिए अपने एक भाषण में कहा कि कश्मीर समस्या के समाधान के रूप में वर्तमान युद्धविराम रेखा के आधार पर समझौते का प्रस्ताव रखा गया था। हालांकि, उन्होंने यह नहीं बताया कि यह प्रस्ताव वापस लिया गया या नहीं। बल्कि, उनके भाषण से यह प्रतीत होता है कि प्रस्ताव अब भी पूर्ववत ही है। उनके इस भाषण के जवाब में पंडित दीन दयाल उपाध्याय ने नागपुर से अकोला जाते वक्त अपने एक बयान में कहा कि "यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि प्रधानमंत्री आक्रमणकारी के सामने आत्मसमर्पण कर

दें। भारतीय जनसंघ ने हमेशा पाक अधिकृत जम्मू–कश्मीर पर पूर्ण अधिकार की मांग की है। हम राज्य का विभाजन और पाकिस्तान को किसी भी भाग का सौंपना सहन नहीं करेंगे। आज जब पाकिस्तान धमकियाँ दे रहा है, नेहरूजी का यह वक्तव्य राजनीतिक अकुशलता और कायरता को दर्शाता है, जो देश के लिए अपमानजनक है। पड़ोसी आक्रामक राष्ट्र के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध रखने की उनकी बड़ी घोषणाएँ इस कायरतापूर्ण विश्वासघाती कृत्य को छिपा नहीं सकतीं। देश के नागरिकों को प्रधानमंत्री को चेतावनी देनी होगी कि वे पाकिस्तान को संतुष्ट करने के लिए कश्मीर की बलि कतई न दें"।[1]

जनमत संग्रह के संबंध में पंडित दीन दयाल उपाध्याय ने अपने वक्तव्य में कहा कि "यदि पाकिस्तान सभी मुद्दों को छोड़कर जनमत संग्रह के माध्यम से कश्मीर समस्या सुलझाना चाहता है, तो हमें पहले भारत विभाजन के प्रश्न पर जनमत संग्रह करना होगा। सुरक्षा परिषद में ऐंग्लो–अमरीकी शक्तियों द्वारा प्रस्तुत कश्मीर प्रस्ताव भारत के प्रति अन्यायपूर्ण और अपमानजनक है। जनसंघ की सभी इकाइयाँ जनसभाएँ आयोजित करके शासन और विश्व की शक्तियों को जनभावना से अवगत कराएँगी। इस षड्यंत्र में उन शक्तियों का हाथ है जो पाकिस्तान को इस प्रश्न के सहारे अपने नियंत्रण में रखना चाहती हैं। अंग्रेजों की अनुदार नीति, अपनी साम्राज्यवादी परंपरा को निभाने के लिए आज भी काम कर रही है। मैं सरकार से अनुरोध करता हूँ कि वह सुरक्षा परिषद से अपना प्रतिनिधि वापस बुला ले। यदि पाकिस्तान सभी मुद्दों को छोड़कर जनमत संग्रह के माध्यम से समस्या सुलझाना चाहता है, तो हमें पहले भारत विभाजन के प्रश्न पर जनमत संग्रह करना होगा"।[2]

कश्मीर मे मौजूद पृथक संविधान सभा पर उनके विचार :

पंडित दीन दयाल उपाध्याय इस बात से भलीभाँति परिचित थे की जम्मू–कश्मीर की आम जनता के बीच भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 व 35A के तहत प्राप्त रियायतों में प्रचलित तथ्यों के अलावा एक अनभिज्ञता थी। साथ ही जम्मू कश्मीर के अपने संविधान की भी वहाँ कि आम जनता को बहुत कम जानकारी थी। पंडित जी के अनुसार मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि, धारा 370 जो जम्मू–कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग मानती है, वास्तविकता में वह भारत की एकता और अखंडता के लिए एक अभिशाप है क्योंकि इसमें कई प्रावधान ऐसे हैं, जो कश्मीरी आवाम को देश के अन्य राज्यों के शासन तथा राजनीति में भाग लेने की अनुमति नहीं देते। इससे पहले कि हम इन प्रावधानों पर विचार करें, हमें देखना चाहिए कि आखिरकार कश्मीर के लिए पृथक संविधान की आवश्यकता ही क्यों महसूस हुई और उस संविधान का औचित्य ही क्या था।

भारतीय संदर्भ में सर्वप्रथम पृथक संविधान की कल्पना अंग्रेजों द्वारा उस समय की जब वह अपने भारतीय उपनिवेश को दो भागों भारत ओर पाकिस्तान में बांटकर यहाँ से जाने की तैयारी कर रहे थे। उस समय देशी रियासतों को यह अधिकार दिया गया था कि वे अपने विवेक से जिसमे चाहें उस नव स्वतंत्र राष्ट्र में शामिल हो सकती हैं। अंग्रेजों के इस निर्णय ये पीछे यह धारणा यह रही कि देशी राज्यों के शासक प्रभुसत्ता संपन्न हैं। हम यहां देशी राज्यों के एकीकरण पर विचार नहीं करेंगे, क्योंकि इसका विवरण श्री वी.पी. मेनन की प्रसिद्ध पुस्तक या भारत सरकार द्वारा 'देशी राज्यों' के संबंध में प्रकाशित 'श्वेतपत्र' से ज्ञात किया जा सकता है। लेकिन

---

1. पाञ्चजन्य, अप्रैल 23, 1956
2. पाञ्चजन्य, नवंबर 25, 1957

यहाँ हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हमने कभी यह विश्वास नहीं किया कि देशी राज्य प्रभुसत्ता संपन्न हैं। हैदराबाद और जूनागढ़ में की गई पुलिस कार्रवाई ने इसे और स्पष्ट कर दिया। इसके अलावा कश्मीर के संबंध में पं. नेहरू ने संसद में घोषणा की थी कि "यदि महाराज ने 'विलय पत्र' पर हस्ताक्षर नहीं किए होते, तो भी भारत ने अपनी सेनाएँ कश्मीर की रक्षा के लिए भेजी होती, क्योंकि देश का जो भाग किसी अन्य देश से संबद्ध नहीं है, वह वैधानिक दृष्टि से भारत का अंग है। भारतीय संविधान सभा को पूरे भारत के लिए संविधान बनाने का अधिकार है। जम्मू–कश्मीर भी भारत का हिस्सा है और इसलिए वह उनके लिए भी संविधान बनाने का अधिकार रखती है"। इसलिए जब बख्श्ी गुलाम मोहम्मद कहते हैं कि 'इस प्रभुसत्ता संपन्न सभा' के निर्णय को कोई नहीं बदल सकता, तो वे भारतीय संसद की प्रभुसत्ता को चुनौती देते हैं।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय के अनुसार "प्रभुसत्ता के अंतर्गत कोई दूसरी प्रभुसत्ता नहीं हो सकती। या तो भारतीय जनता प्रभुसत्ता संपन्न हैं और जम्मू–कश्मीर के लोग उसका हिस्सा हैं, या यदि जम्मू–कश्मीर खुद को स्वतंत्र प्रभुसत्ता संपन्न घोषित करता है, तो भारतीय संसद द्वारा स्वीकृत किसी भी कानून का वहाँ लागू होना साम्राज्यवाद का प्रतीक है। हमारी धारणा है कि बख़्शी गुलाम मोहम्मद ने यह शब्द या तो निरर्थक रूप में कहे हैं या यह अब्दुल्ला समर्थक लोगों को तुष्ट करने की एक नीति है। शेख अब्दुल्ला के भाषण के उद्धरण भी इसी उद्देश्य से थे कि जनता को यह दिखाने के लिए कि वे भी शेख अब्दुल्ला से किसी प्रकार भिन्न विचार नहीं रखते हैं। फर्क सिर्फ इतना हैं शेख अब्दुल्ला ने अपनी पृथकतावादी भावनाओं को रणवीरपुरा में व्यक्त किया था और बख्श्ी गुलाम मोहम्मद ने विधानसभा को चुना। इसलिए यह आवश्यक है कि किसी भी तरह, भारत सरकार को समय से पहले चेतना चाहिए"।

5 नवंबर 1956 को पांचजन्य के एक अंक मे प्रकाशित अपने एक लेख में पंडित जी अनुच्छेद 370 का हवाला देते हुए लिखते हैं कि "इसमें कोई संदेह नहीं कि उक्त अनुच्छेद राज्य में भारतीय संविधान लागू होने पर कुछ नियंत्रण निर्धारित करता है, लेकिन यह एक अस्थायी व्यवस्था थी। इस परिच्छेद की अंतिम धारा के अनुसार, यह अनुच्छेद पहले ही समाप्त हो जाना चाहिए था। अगर यह समाप्त नहीं हुआ है तो इसका उत्तरदायित्व जम्मू–कश्मीर सरकार पर है, जिसने अन्य सरकारों की तरह राजनैतिक चतुराई नहीं दिखाई। वास्तव में इस समय आवश्यकता इस बात की थी कि राज्य सरकार प्रस्ताव पारित कर उक्त अनुच्छेद को समाप्त कर देती और इस प्रकार समस्या का समाधान हो जाता। दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ"।

पंडित दिन दयाल उपाध्याय का मानना था कि पं. नेहरू और उनके समर्थक कश्मीर को एक विशेष राज्य के तौर पर देखते हैं इसीलिए वे कश्मीर में भारतीय संविधान के सीमित प्रयोग की ही वकालत करते हैं पंडित जी के अनुसार "कश्मीर की समस्या को राष्ट्र संघ में ले जाना और राज्य में मुसलमानों का बाहुल्य ही ऐसी दो बातें हैं, जो कश्मीर को अन्य राज्यों से विशेष बनाती हैं। पं. नेहरू और बख़्शी गुलाम मोहम्मद का संकेत इन्हीं बातों की ओर है। जहाँ तक अंतरराष्ट्रीय पहलू का संबंध है, हर कोई, यहाँ तक कि पं. नेहरू भी समझ चुके हैं कि इस प्रश्न को सुरक्षा परिषद में ले जाना एक गलती थी और राष्ट्र संघ से इसका हल निकलना संभव नहीं है। यह भी स्वीकार किया गया है कि राज्य के नए विधान के निर्माण में विलंब नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 370 उस समय तक के लिए एक बार को उचित समझा जा सकता था, जब तक कि हमारा संविधान नहीं बना था। लेकिन यदि हम आज भी उस पृथकतावादी अनुच्छेद को बनाए रखते हैं, तो इससे

कश्मीर में अलगाववाद फैलाने में पाकिस्तान को सहायता प्राप्त होगी"।

पंडित जी के शब्दों में "यदि हम पाकिस्तान की द्विराष्ट्र सिद्धांत पर आधारित दलील को निष्प्रभ करना चाहते हैं तो हमें मन, वचन, कर्म से कश्मीर सहित एक राष्ट्र के सिद्धांत पर दृढ़ रहना पड़ेगा। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री श्री सुहरावर्दी ने पाकिस्तान के निमित्त संयुक्त निर्वाचन की वकालत की थी, जिसमें भी जहाँ तक कश्मीर का प्रश्न है, द्वि–राष्ट्र सिद्धांत का ही प्रामुख्य था। यदि वह यह अनुभव करने लगे हैं कि पाकिस्तान के लिए यह सिद्धांत अनुपयुक्त सिद्ध हो चुका है तो इसे कश्मीर के बारे में भी मान लेना चाहिए। और इसके पहले कि पाकिस्तान में कोई व्यक्ति इस सत्यता का अनुभव करे, पं. नेहरू और बख़्शी गुलाम मोहम्मद को इसका अनुभव हो जाना चाहिए। कश्मीर के लिए पृथक् संविधान की माँग यह दर्शाती है कि सत्य को स्वीकार नहीं किया गया है"।

पंडित के अनुसार यदि हम प्रस्तावित कश्मीरी संविधान को देखें तो वह न केवल पृथकतावादी है, बल्कि उसकी रूपरेखा भी भारतीय संविधान से बहुत अलग है। कश्मीर सरकार उपयुक्त नहीं समझती कि कश्मीरी लोग खुद को भारत का नागरिक समझें और एक साझे राष्ट्रवादी होने का अनुभव करें। कहा जाता है कि भारत और कश्मीर की नागरिकता समान रहेगी, किंतु भारतीय संविधान में वर्णित अधिकार तथा शक्तियां जम्मू–कश्मीर के नागरिकों को प्राप्त नहीं होंगे तथा अन्य स्थानों पर निवास करने वाले लोगों को जम्मू–कश्मीर राज्य के लोगों के समान अधिकार प्राप्त नहीं होंगे। जम्मू तथा कश्मीर के लोगों को संसद के लिए मतदान करने का अधिकार नहीं होगा। शायद उन्हें कुछ मौलिक अधिकार प्राप्त हों, किंतु उनका आधार संविधान नहीं होगा। जम्मू–कश्मीर में चुनाव तथा जनगणना तो होंगे, किंतु भारत के समान नहीं। सर्वोच्च न्यायालय का भी वहाँ सीधा अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। हाईकोर्ट के जजों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा नहीं बल्कि सदर–ए–रियासत द्वारा की जाएगी। संविधान का मसविदा इस प्रकार की कुछ बातें भी प्रस्तावित करता है, जिनके अनुसार राष्ट्रपति की शक्तियाँ भी सीमित हो जाती हैं। सदर–ए–रियासत की नियुक्ति और पदच्युति को लेकर भी विरोधाभास है। एक ओर कहा जाता है कि सदर–ए–रियासत तब तक पद पर रहेंगे जब तक राष्ट्रपति चाहेंगे, किंतु दूसरी ओर राज्य विधानसभा द्वारा सामान्य बहुमत के आधार पर सिफारिश किए जाने पर राष्ट्रपति सदर–ए–रियासत की नियुक्ति करेंगे। राज्य विधानसभा द्वारा दो–तिहाई बहुमत से अविश्वास प्रस्ताव पारित किए जाने पर सदर–ए–रियासत को पदच्युत भी किया जा सकेगा। यदि सभी कुछ विधानसभा द्वारा तय किया जाना है तो 'राष्ट्रपति की इच्छानुसार' का क्या अर्थ है?

इसके अलावा राज्य विधानसभा में ऐसा कोई संशोधन प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा, जो भारत और राज्य के बीच निर्धारित संबंधों में परिवर्तन करे। इसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि इस व्यवस्था से एकीकरण की अटकलें समाप्त हो जाएँगी तथा अनिश्चित स्थिति का अनुचित लाभ नहीं उठाया जा सकेगा। पंडित जी के अनुसार "इस व्यवस्था का उद्देश्य अनुच्छेद 370 को स्थायी बनाना है, क्योंकि राज्य के संविधान में कोई प्रस्ताव एक बार पारित होने के बाद भविष्य में हमारे संविधान के लिए वहाँ के द्वार सदैव बंद हो जाएँगे तथा राज्य के निवासी भविष्य में भारत और अन्य राज्यों की सेवाओं से वंचित हो जाएंगे। भारत सरकार को कश्मीर संविधान के मसविदे में अंतर्निहित भावनाओं पर ध्यान देना चाहिए और भारत को छिन्न–विच्छिन्न होने से बचाना चाहिए। यदि सरकार इस कर्तव्य को पालन करने में असफल होती है, तो सभी राष्ट्रीय शक्तियों को कश्मीर संविधान से

असहमति ही नहीं बल्कि पूरी शक्ति से उसका विरोध भी करना चाहिए"।

पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर पर दीन दयाल उपाध्याय जी के विचार :

पंडित जी के विचारों में पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर पाकिस्तान से भारत के रिश्तों को लेकर सबसे प्राथमिक विषयों में से एक है। उनके अनुसार भारत सरकार को तथाकथित आजाद कश्मीर को पुनः प्राप्त करने के लिए तत्काल सैन्य और राजनयिक कार्रवाई करनी चाहिए। पंडित दीन दयाल जी का मानना है कि कश्मीर का हिस्सा भारत का अभिन्न अंग है। भारत सरकार को मांग करनी चाहिए कि पाकिस्तान इस क्षेत्र को छोड़ दे और यदि पाकिस्तान सहमत नहीं है, तो भारत सरकार को तथाकथित आजाद कश्मीर को पुनः प्राप्त करने के लिए राजनयिक संबंधों को तोड़ने से लेकर युद्ध की घोषणा करने तक सभी आवश्यक उपाय करने चाहिए। पंडित का मानना है कि पाकिस्तान के कब्जे वाला कश्मीर भारत के लिए प्रतिष्ठा से ज्यादा आध्यात्मिक मुद्दा है क्योंकि भारत और कश्मीर की आत्माएं एक हैं।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय और कश्मीर : एक दृष्टिकोण :

पंडित दीन दयाल उपाध्याय का मानना था कि जम्मू–कश्मीर के कुछ हिस्सों पर पाकिस्तान का अवैध कब्जा इसलिए है क्योंकि भारतीय सेना को उन्हें मुक्त करने की अनुमति नहीं दी गई। उन्होंने जोर देकर कहा कि यदि भारतीय जनसंघ और प्रजा परिषद ने संघर्ष और बलिदान न दिया होता, तो कश्मीर का वह भाग भारत का हिस्सा नहीं बनता। सरकार की नीतियाँ सैनिक प्रयासों को निष्फल कर सकती थीं। शेख अब्दुल्ला राजा हरि सिंह की नीतियों को समाप्त करना चाहते थे, लेकिन पंडित प्रेमनाथ डोगरा[3] और श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने शेख अब्दुल्ला को अपनी नीति बदलने पर मजबूर किया। शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी और श्यामा प्रसाद मुखर्जी के बलिदान के बाद, कश्मीर नीति में बदलाव आया, लेकिन पूर्ण विलय की प्रक्रिया अभी अधूरी है।

पंडित दीन दयाल उपाध्याय के शब्दों में "भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 व 35A और राज्य की विधानसभा में निहित प्रावधानों से स्पष्ट है कि राज्य का राष्ट्रीय और भावनात्मक स्तर पर भारत से एकीकरण अधूरा है। यदि जम्मू–कश्मीर भारत का हिस्सा है, तो भारतीय संविधान के सभी प्रावधान वहाँ भी लागू होने चाहिए। जम्मू–कश्मीर के चुनाव संबंधी प्रावधानों में भी राज्य सरकार का हस्तक्षेप बहुत अधिक है। भारतीय निर्वाचन आयोग का कार्यक्षेत्र राज्य तक बढ़ाना तब तक अधूरा रहेगा जब तक चुनाव संबंधी सभी प्रावधान वहाँ लागू नहीं होते। लोकसभा के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव नागरिकों का मूल अधिकार है, और इससे वहाँ के लोगों को वंचित करना राज्य और भारत के संबंधों में दरार को दर्शाता है। भारतीय जनसंघ ने अपने नागपुर अधिवेशन में संविधान के अनुच्छेद 370 को समाप्त करने का आग्रह किया है। जब तक यह अनुच्छेद रहेगा, तब तक राज्य के संवैधानिक संबंध सामान्य नहीं होंगे। राज्य को दिया गया विशेष दर्जा केवल सरकार को विशेषाधिकार देता है, नागरिकों को नहीं। इस भेदभावपूर्ण व्यवहार का देश विरोधी शक्तियाँ भारत के विरुद्ध प्रयोग करती हैं। इसलिए राज्य के नागरिकों को वही अधिकार मिलने चाहिए जो अन्य नागरिकों को उपलब्ध हैं, और भेदभाव समाप्त किया जाना चाहिए"।

---

3. प्रेमनाथ डोंगरा जम्मू कश्मीर प्रांत के नेता थे इन्होंने कश्मीर का भारत मे पूर्ण विलीनीकरण का समर्थन किया तथा बलराज माधोक के साथ मिलकर 1947 मे प्रजा परिषद पार्टी की स्थापना किया।

अंततः यह कहा जा सकता है कि पंडित दीन दयाल उपाध्याय जी ने कश्मीर को लेकर जो एक सपना देखा था उसी की प्रेरणा से आज कश्मीर अनुच्छेद 370 और 35A द्वारा प्राप्त भेदभावपूर्ण विशेषाधिकारों को त्याग कर विकास के मार्ग पर अग्रसर है। आज, उनके विचार और सिद्धांत न केवल कश्मीर की प्रगति के लिए प्रेरणा स्रोत हैं, बल्कि संपूर्ण भारत के लिए भी मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। आर्टिकल 370 व आर्टिकल 35–A को समाप्त करते हुए मौजूदा गृहमंत्री अमित शाह जी ने अपने संसद मे दिए अभिभाषण मे भी पंडित दीन दयाल उपाध्याय व श्यामा प्रसाद मुखर्जी के विचारों को स्थान दिया और कश्मीर के संदर्भ मे उनके स्वप्नों जो कश्मीर में शांति, समृद्धि और सौहार्द का वातावरण से परिपूर्ण थे तथा जहां हर नागरिक अपने अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करते वक्त एक राष्ट्र, एक निशान, एक विधान की सामूहिक राष्ट्रवादी भावना से ओतप्रोत हो, का भी उल्लेख किया।

संदर्भ सूची :

1. महेश चंद्र शर्मा, दीन दयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वगमय, खण्ड 10, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
2. बजरंग लाल गुप्ता, पं. दीन दयाल उपाध्याय जीवन दर्शन और समसामयिकता, खण्ड 5, किताबवाले प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2022
3. सुमंत्रा बोस, कश्मीर स्टस ऑफ कॉफलिकट्स, पाथ टू पीस, हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003.
4. दीन दयाल उपाध्याय, पोलिटिकल डायरी, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
5. हरीश दत्त शर्मा, राष्ट्रीय जीवन माल पं. दीनदयाल उपाध्याय, डायमॉन इस बुक्स, नई दिल्ली, 2012

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 43-52

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण विमर्श

डॉ. शालिनी सी.

सह–प्राध्यापक, हिंदी विभाग

राजकीय महिला महाविद्यालय, वझुथाकौड, तिरुवनंतपुरम, केरल – 695014, भारत

सारांश :

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण विमर्श एक महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र के रूप में उभरकर सामने आया है। हिंदी कविता की परंपरा में प्रकृति सदैव संवेदना, सौंदर्य और जीवन–मूल्यों की वाहक रही है, किंतु आधुनिक काल में इसका स्वरूप अधिक व्यापक और चिंतनपरक हो गया है। वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने कवियों को प्रकृति और मानव संबंधों पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित किया है। आधुनिक हिंदी कवियों ने प्रकृति को केवल सौंदर्य के विषय के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान, लोकजीवन, पारिस्थितिक संतुलन और मानवीय अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत अध्ययन आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण चेतना के विविध आयामों का विश्लेषण करता है। साहित्य समीक्षा के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि समकालीन हिंदी कविता पर्यावरण संरक्षण, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता तथा सतत विकास की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इस प्रकार आधुनिक हिंदी काव्य पर्यावरणीय जागरूकता और सांस्कृतिक संरक्षण का सशक्त माध्यम बनकर उभरता है।

मुख्य शब्द : आधुनिक हिंदी काव्य, प्रकृति, संस्कृति, पर्यावरण विमर्श, पर्यावरण चेतना, समकालीन कविता।

परिचय :

हिंदी साहित्य में प्रकृति का चित्रण प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा है। प्रकृति मानव जीवन की सहचरी, प्रेरक शक्ति तथा सांस्कृतिक चेतना की आधारभूमि रही है। हिंदी काव्य परंपरा में प्रकृति केवल सौंदर्य और भावनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि वह मनुष्य, समाज और संस्कृति के बीच संबंधों को भी अभिव्यक्त करती है। आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति का स्वरूप और अधिक व्यापक हो गया है, जहाँ वह पर्यावरणीय चिंताओं, सांस्कृतिक मूल्यों तथा सामाजिक यथार्थ से गहराई से जुड़ती दिखाई देती है।

औद्योगीकरण, शहरीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव से प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय असंतुलन, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण, जैव–विविधता का ह्रास तथा जल संकट जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। इन चुनौतियों ने साहित्यकारों और कवियों को प्रकृति और पर्यावरण के प्रति नए दृष्टिकोण से सोचने के लिए प्रेरित किया। आधुनिक हिंदी कवियों ने प्रकृति को केवल रमणीय दृश्य

या सौंदर्यबोध का विषय न मानकर उसे मानव अस्तित्व, सांस्कृतिक पहचान और पारिस्थितिक संतुलन के संदर्भ में प्रस्तुत किया है।

प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। भारतीय संस्कृति में नदियों, पर्वतों, वृक्षों तथा वन्य जीवों को आदर और संरक्षण की दृष्टि से देखा गया है। आधुनिक हिंदी कविता इस सांस्कृतिक परंपरा को पुनर्स्मरण करते हुए पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर बल देती है। समकालीन कवियों की रचनाओं में प्रकृति के विनाश के प्रति चिंता, विकास की अंधी दौड़ की आलोचना तथा मानव और प्रकृति के संतुलित संबंधों की आवश्यकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

वर्तमान अध्ययन आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण विमर्श के अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास करता है। यह अध्ययन इस बात का विश्लेषण करता है कि आधुनिक हिंदी कवियों ने पर्यावरणीय संकटों, सांस्कृतिक मूल्यों और प्रकृति के प्रति मानवीय संवेदनाओं को किस प्रकार अभिव्यक्त किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि हिंदी काव्य पर्यावरणीय जागरूकता, सांस्कृतिक संरक्षण और सतत विकास की अवधारणा को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।



चित्र 1 : आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति के विविध रूप

साहित्य समीक्षा :

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति का स्वरूप केवल सौंदर्य–वर्णन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वह संस्कृति, लोकजीवन और पर्यावरणीय संकटों के साथ गहरे रूप में जुड़ता गया है। उपलब्ध शोध–पत्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि छायावाद में प्रकृति आत्मीय, सौंदर्यात्मक और भावात्मक रूप में उपस्थित थी, जबकि प्रगतिवाद, नई कविता और समकालीन कविता में प्रकृति सामाजिक यथार्थ, विस्थापन, प्रदूषण, जल–संकट, वन–विनाश और मानव–केंद्रित विकास की आलोचना का माध्यम बनती है।

"पर्यावरण और समकालीन हिंदी कविता" जैसे अध्ययनों में यह रेखांकित किया गया है कि समकालीन कविता प्रकृति के मोहक चित्रण के साथ–साथ उसके विनाश के कारणों की भी पड़ताल करती है। इसी प्रकार "हिंदी कविता में पर्यावरण चेतनारू एक समीक्षात्मक अध्ययन" हिंदी कविता की लंबी परंपरा में प्रकृति और पर्यावरण को जीवन, संस्कृति और संवेदना का अभिन्न अंग मानता है। इससे स्पष्ट होता है कि हिंदी कविता में पर्यावरण विमर्श पश्चिमी इको–क्रिटिसिज्म का मात्र अनुकरण नहीं है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना,

लोक–स्मृति और सह–अस्तित्व की परंपरा से भी जुड़ा हुआ है।

"हिंदी कविता में प्रकृति की भूमिकारू परंपरागत से आधुनिक" प्रकृति–चित्रण की ऐतिहासिक यात्रा को समझाते हुए बताता है कि आधुनिक कविता में प्रकृति अब निष्क्रिय पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक संदेशों की सक्रिय वाहक है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह, भवानीप्रसाद मिश्र, नागार्जुन, कुंवर नारायण और समकालीन कवियों की कविताओं में नदी, पेड़, मिट्टी, खेत, जंगल और पक्षी केवल प्रतीक नहीं, बल्कि जीवन–संकट के संकेतक बनकर आते हैं।

बलदेव वंशी की रचना "धरती हाँफ रही है" पर आधारित शोध–पत्र पर्यावरणीय चेतना को सीधे प्रदूषण, प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण और मनुष्य की उपभोक्तावादी प्रवृत्ति से जोड़ता है। इसी प्रकार "समकालीन कविताओं में पर्यावरण समस्याएं" अध्ययन यह दिखाता है कि आधुनिक कवि जल, जंगल और जमीन के संकट को मानवीय अस्तित्व के संकट के रूप में देखते हैं। "नदी और साबुन" कविता पर केंद्रित शोध जल–संस्कृति और नदी–सभ्यता के क्षरण को आधुनिक विकास की विडंबना के रूप में प्रस्तुत करता है।

समग्रतः इन अध्ययनों से स्पष्ट है कि आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति अब केवल रमणीय दृश्य नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति, लोक–जीवन, नैतिक जिम्मेदारी और पर्यावरणीय प्रतिरोध का केंद्र है। फिर भी अधिकांश शोध विशिष्ट कवियों या कविताओं तक सीमित हैंय प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण विमर्श को एकीकृत दृष्टि से देखने वाले तुलनात्मक और सैद्धांतिक अध्ययन अभी अपेक्षाकृत कम हैं। अतः इस विषय पर आगे शोध की पर्याप्त संभावना है।

अध्ययन के उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण विमर्श के विविध आयामों का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत आधुनिक हिंदी कविताओं में प्रकृति–चित्रण की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाएगा तथा यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि कवियों ने प्रकृति को सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक जीवन से किस प्रकार जोड़ा है। अध्ययन का एक अन्य उद्देश्य पर्यावरणीय समस्याओं, पारिस्थितिक संकटों तथा पर्यावरण संरक्षण संबंधी चिंताओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का मूल्यांकन करना है। साथ ही, यह शोध आधुनिक हिंदी काव्य में निहित पर्यावरणीय जागरूकता, सांस्कृतिक मूल्यों और मानव–प्रकृति संबंधों की प्रासंगिकता को रेखांकित करने का प्रयास करेगा।

शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत आधुनिक हिंदी काव्य, प्रकृति, संस्कृति एवं पर्यावरण विमर्श से संबंधित शोध–पत्रों, समीक्षात्मक लेखों, पुस्तकों, शोध–प्रबंधों तथा प्रतिष्ठित अकादमिक पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। साहित्य समीक्षा पद्धति के माध्यम से विभिन्न विद्वानों के विचारों, निष्कर्षों तथा शोध–परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। चयनित शोध–सामग्री का विषयवस्तु विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि आधुनिक हिंदी कवियों ने प्रकृति, सांस्कृतिक चेतना तथा पर्यावरणीय चुनौतियों को किस प्रकार अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार अध्ययन का आधार उपलब्ध प्रामाणिक साहित्य का विश्लेषण एवं व्याख्यात्मक मूल्यांकन है।



चित्र 2 : प्रकृति और मानव के पारस्परिक संबंध

आधुनिक हिंदी काव्य : स्वरूप एवं प्रवृत्तियाँ :

आधुनिक हिंदी काव्य हिंदी साहित्य के विकास की वह महत्वपूर्ण धारा है, जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मानवीय जीवन से जुड़े विविध आयामों की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। भारतेन्दु युग से प्रारंभ होकर द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता तथा समकालीन कविता तक आधुनिक हिंदी काव्य ने निरंतर नए विषयों और अभिव्यक्ति के रूपों को अपनाया है। इस काव्यधारा का प्रमुख उद्देश्य केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समाज और व्यक्ति की बदलती परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण भी है।

आधुनिक हिंदी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में व्यक्तिवाद, मानवीय संवेदना, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता, लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना तथा समकालीन समस्याओं का चित्रण प्रमुख हैं। छायावादी कवियों ने प्रकृति, प्रेम और आत्मानुभूति को केंद्र में रखा, जबकि प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक विषमता, शोषण और वर्ग–संघर्ष को स्वर दिया। नई कविता ने व्यक्ति के आंतरिक द्वंद्व, अस्तित्वबोध और आधुनिक जीवन की जटिलताओं को अभिव्यक्त किया।

समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरणीय चेतना, स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, आदिवासी–विमर्श तथा वैश्वीकरण के प्रभावों पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रकृति अब केवल सौंदर्य का विषय नहीं रह गई, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन और सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक बनकर उभरती है। इस प्रकार आधुनिक हिंदी काव्य अपने बहुआयामी स्वरूप, सामाजिक सरोकारों और नवीन चिंतन के कारण हिंदी साहित्य की एक सशक्त एवं प्रासंगिक विधा के रूप में स्थापित हुआ है।

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति–बोध :

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति–बोध एक महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुआ है। प्रकृति भारतीय जीवन, संस्कृति और साहित्य का अभिन्न अंग रही है। आधुनिक हिंदी कवियों ने प्रकृति को केवल दृश्य–सौंदर्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसे मानवीय संवेदनाओं, सांस्कृतिक मूल्यों तथा जीवन–दर्शन से भी जोड़ा है। छायावादी कवियों से लेकर समकालीन कवियों तक प्रकृति विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है। कहीं वह सौंदर्य और शांति का प्रतीक है, तो कहीं पर्यावरणीय संकट और मानवीय हस्तक्षेप के प्रति चेतावनी का माध्यम बनकर सामने आती है।

1. प्रकृति का सौंदर्यात्मक चित्रण :

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति का सौंदर्यात्मक चित्रण अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण है। छायावादी कवियों 'जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा महादेवी वर्मा' ने प्रकृति को कोमल भावनाओं, प्रेम, करुणा और आत्मानुभूति के साथ चित्रित किया है। पर्वत, नदियाँ, वन, पुष्प, चंद्रमा, सूर्य तथा ऋतुओं के माध्यम से प्रकृति की रमणीयता को अभिव्यक्ति मिली है। प्रकृति का यह स्वरूप मानव मन को सौंदर्यबोध, आनंद और आध्यात्मिक शांति प्रदान करता है।

प्रकृति तत्व	**काव्यात्मक अभिव्यक्ति**	**प्रमुख प्रभाव**
पर्वत	स्थिरता एवं महानता का प्रतीक	प्रेरणा एवं आत्मविश्वास
नदी	जीवन प्रवाह एवं गतिशीलता	ऊर्जा और निरंतरता
पुष्प	कोमलता एवं सौंदर्य	प्रेम और संवेदनशीलता
वन एवं वृक्ष	हरित जीवन और शांति	पर्यावरणीय संतुलन
ऋतुएँ	परिवर्तन और नवजीवन	आशा एवं उत्साह

इस प्रकार प्रकृति का सौंदर्यात्मक चित्रण आधुनिक हिंदी कविता को भावात्मक गहराई और कलात्मक सौंदर्य प्रदान करता है।

2. प्रकृति और मानव संबंध :

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति और मानव के संबंध को अत्यंत आत्मीय एवं परस्पर निर्भर माना गया है। कवियों ने प्रकृति को मानव जीवन की सहचरी, मित्र और मार्गदर्शक के रूप में देखा है। मानव की भावनाएँ, अनुभव और जीवन–संघर्ष प्रकृति के विभिन्न रूपों से जुड़कर अभिव्यक्त होते हैं। आधुनिक कवियों ने यह भी संकेत किया है कि प्रकृति के बिना मानव जीवन की कल्पना संभव नहीं है।

समकालीन कविता में प्रकृति और मानव संबंध पर्यावरणीय दृष्टि से और अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने इस संबंध को प्रभावित किया है। कवियों ने प्रकृति के विनाश को मानव अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा बताया है तथा पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया है।

मानव-प्रकृति संबंध का आयाम	काव्य में अभिव्यक्ति	सामाजिक संदेश
सह–अस्तित्व	मानव और प्रकृति की एकता	संतुलित विकास
भावनात्मक संबंध	प्रकृति से आत्मीय लगाव	संवेदनशील जीवन–दृष्टि
सांस्कृतिक संबंध	प्रकृति का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व	सांस्कृतिक संरक्षण
पर्यावरणीय चेतना	प्रकृति–विनाश के प्रति चिंता	संरक्षण एवं जागरूकता
जीवन–निर्भरता	जल, वायु और वन का महत्व	सतत विकास की आवश्यकता

अतः आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति–बोध केवल सौंदर्य–अनुभूति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन, संस्कृति, पर्यावरण और सामाजिक उत्तरदायित्व से गहराई से जुड़ा हुआ है। आधुनिक कवियों ने प्रकृति के माध्यम से मानव को उसके पर्यावरणीय दायित्वों का बोध कराया है तथा प्रकृति और मानव के संतुलित संबंध को जीवन के लिए अनिवार्य माना है।

आधुनिक हिंदी काव्य में सांस्कृतिक चेतना :

आधुनिक हिंदी काव्य भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना का सशक्त दर्पण है। भारतीय संस्कृति विविधता, सहिष्णुता, आध्यात्मिकता, लोकपरंपराओं और मानवीय मूल्यों पर आधारित रही है। आधुनिक हिंदी कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से न केवल सांस्कृतिक विरासत का चित्रण किया है, बल्कि बदलते सामाजिक परिवेश में उसके संरक्षण और संवर्धन की आवश्यकता को भी रेखांकित किया है। वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और तीव्र आधुनिकीकरण के दौर में सांस्कृतिक पहचान और मूल्यों के संरक्षण का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। इसी कारण आधुनिक हिंदी कविता में लोकजीवन, लोकसंस्कृति, परंपराएँ, त्योहार, रीति–रिवाज और सांस्कृतिक प्रतीकों का व्यापक चित्रण दिखाई देता है।

1. लोक संस्कृति और परंपरा :

लोक संस्कृति किसी भी समाज की मूल पहचान होती है। आधुनिक हिंदी कवियों ने ग्रामीण जीवन, लोकगीतों, लोककथाओं, मेलों, त्योहारों, कृषि–परंपराओं तथा सामुदायिक जीवन को अपनी रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह और भवानीप्रसाद मिश्र जैसे कवियों ने लोकजीवन की सहजता, सरलता और मानवीय संवेदनाओं को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।

लोक संस्कृति का चित्रण केवल अतीत की स्मृतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक एकता, सामूहिक चेतना और सांस्कृतिक निरंतरता का भी प्रतीक है। आधुनिक कविता में लोकपरंपराएँ व्यक्ति को उसकी जड़ों से जोड़ती हैं तथा सांस्कृतिक अस्मिता को मजबूत बनाती हैं।

लोक-सांस्कृतिक तत्व	काव्य में अभिव्यक्ति	महत्व
लोकगीत	जनभावनाओं की अभिव्यक्ति	सांस्कृतिक निरंतरता
मेले एवं उत्सव	सामुदायिक सहभागिता	सामाजिक एकता
कृषि परंपराएँ	प्रकृति से जुड़ाव	ग्रामीण संस्कृति का संरक्षण
लोककथाएँ	सांस्कृतिक स्मृति	परंपरागत ज्ञान का संवहन
ग्रामीण जीवन	सरलता एवं सामूहिकता	सांस्कृतिक पहचान

2. सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण :

आधुनिक हिंदी काव्य में सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, करुणा, सह–अस्तित्व, पारिवारिक एकता, नैतिकता और मानवता जैसे मूल्यों को अत्यधिक महत्व प्राप्त है। आधुनिक कवियों ने इन मूल्यों को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करते हुए समाज को सांस्कृतिक रूप से जागरूक बनाने का प्रयास किया है।

समकालीन समय में भौतिकवाद और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के कारण पारंपरिक मूल्यों में परिवर्तन देखा जा रहा है। ऐसी स्थिति में हिंदी कविता सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से मानवीय मूल्यों को पुर्नस्थापित करने का कार्य करती है। कवि सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण को समाज की स्थिरता और नैतिक विकास के लिए आवश्यक मानते हैं।

सांस्कृतिक मूल्य	**काव्यगत अभिव्यक्ति**	**सामाजिक प्रभाव**
सत्य एवं नैतिकता	आदर्श जीवन का चित्रण	नैतिक जागरूकता
करुणा एवं मानवता	मानवीय संवेदनाओं का विस्तार	सामाजिक सौहार्द
सह–अस्तित्व	प्रकृति और समाज के साथ संतुलन	समरसता
पारिवारिक मूल्य	संबंधों की गरिमा	सामाजिक स्थिरता
सांस्कृतिक विरासत	परंपराओं का सम्मान	सांस्कृतिक संरक्षण

इस प्रकार आधुनिक हिंदी काव्य में सांस्कृतिक चेतना केवल अतीत के गौरव का स्मरण नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने का एक सशक्त प्रयास भी है। हिंदी कविता लोक संस्कृति, परंपरा और मानवीय मूल्यों के संरक्षण के माध्यम से भारतीय समाज की सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ बनाती है।

पर्यावरण विमर्श और समकालीन चिंताएँ :

आधुनिक हिंदी काव्य में पर्यावरण विमर्श एक महत्वपूर्ण साहित्यिक और सामाजिक विषय के रूप में उभरकर सामने आया है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण, जैव–विविधता का ह्रास, जल संकट तथा प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन जैसी समस्याएँ वैश्विक चिंता का विषय बन चुकी हैं। हिंदी कवियों ने इन चुनौतियों को केवल वैज्ञानिक या सामाजिक समस्या के रूप में नहीं देखा, बल्कि उन्हें मानवीय अस्तित्व और भविष्य से जुड़े गंभीर प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत किया है। समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरणीय संकट के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण दिखाई देता है, जो पाठकों को प्रकृति के प्रति जिम्मेदारी और संरक्षण की भावना विकसित करने के लिए प्रेरित करता है।

1. पर्यावरण संकट का काव्यात्मक चित्रण :

समकालीन हिंदी कवियों ने पर्यावरणीय संकटों का सजीव और प्रभावशाली चित्रण किया है। उनकी कविताओं में सूखती नदियाँ, कटते वन, प्रदूषित वायु, विलुप्त होते जीव–जंतु तथा बिगड़ता प्राकृतिक संतुलन बार–बार उभरकर सामने आता है। कवि आधुनिक विकास मॉडल की आलोचना करते हुए यह संकेत करते हैं

कि प्रकृति के असीम दोहन ने मानव और पर्यावरण के बीच संतुलन को कमजोर कर दिया है।

कई कविताओं में नदी केवल जलधारा नहीं, बल्कि जीवन और संस्कृति का प्रतीक है। वृक्ष केवल वनस्पति नहीं, बल्कि पृथ्वी के अस्तित्व के रक्षक के रूप में चित्रित किए गए हैं। इस प्रकार पर्यावरण संकट का काव्यात्मक चित्रण पाठकों में संवेदनात्मक जागरूकता उत्पन्न करता है।

पर्यावरणीय समस्या	**काव्यात्मक प्रतीक**	**निहित संदेश**
वनों की कटाई	सूने जंगल, कटते वृक्ष	प्रकृति संरक्षण की आवश्यकता
जल प्रदूषण	मैली नदियाँ	जल–संसाधनों का संरक्षण
वायु प्रदूषण	धुंध और धुआँ	स्वच्छ पर्यावरण का महत्व
जैव–विविधता का ह्रास	विलुप्त पक्षी एवं जीव	पारिस्थितिक संतुलन की रक्षा
जलवायु परिवर्तन	अनियमित ऋतुएँ	सतत विकास की आवश्यकता

2. पारिस्थितिक चेतना एवं पर्यावरण संरक्षण :

आधुनिक हिंदी कविता केवल पर्यावरणीय संकटों का चित्रण ही नहीं करती, बल्कि उनके समाधान की दिशा में पारिस्थितिक चेतना भी विकसित करती है। पारिस्थितिक चेतना का आशय मानव और प्रकृति के बीच संतुलित एवं उत्तरदायी संबंध स्थापित करने से है। हिंदी कवि प्रकृति को जीवन का आधार मानते हुए उसके संरक्षण को नैतिक और सामाजिक दायित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

समकालीन कविताओं में वृक्षारोपण, जल संरक्षण, जैव–विविधता की रक्षा तथा प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर बल दिया गया है। कवियों का मानना है कि प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व ही मानव सभ्यता के सतत विकास का आधार है। इस दृष्टि से हिंदी कविता पर्यावरणीय जागरूकता फैलाने का प्रभावी माध्यम बनती है।

पारिस्थितिक चेतना के आयाम	**काव्यगत अभिव्यक्ति**	**अपेक्षित परिणाम**
प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता	प्रकृति को जीवन–सहचरी के रूप में चित्रित करना	पर्यावरणीय जागरूकता
जल संरक्षण	नदियों और जलस्रोतों का महत्व	जल–सुरक्षा
वृक्ष संरक्षण	वृक्षों को जीवनदाता के रूप में प्रस्तुत करना	हरित पर्यावरण
जैव–विविधता संरक्षण	जीव–जंतुओं के महत्व का वर्णन	पारिस्थितिक संतुलन
सतत विकास	संतुलित जीवन–शैली का समर्थन	पर्यावरण संरक्षण

अतः आधुनिक हिंदी काव्य का पर्यावरण विमर्श केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का एक सशक्त माध्यम है। यह मनुष्य को प्रकृति के प्रति उसके दायित्वों का बोध कराते हुए पर्यावरण संरक्षण, पारिस्थितिक संतुलन और सतत विकास की दिशा में प्रेरित करता है। समकालीन हिंदी कविता में निहित यह चेतना आज के पर्यावरणीय संकटों के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक और आवश्यक है।

परिणाम एवं विश्लेषण :

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट हुआ कि आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण

विमर्श एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। साहित्य समीक्षा से ज्ञात होता है कि आधुनिक हिंदी कवियों ने प्रकृति को केवल सौंदर्यात्मक दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उसे मानव जीवन, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है। छायावादी काव्य में प्रकृति का भावात्मक एवं सौंदर्यपरक स्वरूप प्रमुख रहा, जबकि समकालीन कविता में पर्यावरणीय संकट, पारिस्थितिक असंतुलन और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण संबंधी चिंताएँ अधिक प्रमुखता से उभरकर सामने आई हैं।



चित्र 3 : अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष

विश्लेषण से यह भी स्पष्ट हुआ कि आधुनिक हिंदी कविता भारतीय लोकसंस्कृति, परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अनेक कवियों ने ग्रामीण जीवन, लोकपरंपराओं तथा प्रकृति–आधारित सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से सांस्कृतिक अस्मिता को सशक्त बनाया है। साथ ही, पर्यावरण विमर्श से संबंधित कविताएँ पाठकों में पर्यावरणीय जागरूकता और संरक्षण की भावना विकसित करती हैं।

अध्ययन का समग्र निष्कर्ष यह है कि आधुनिक हिंदी काव्य सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय चेतना का प्रभावी माध्यम बनकर उभरता है तथा मानव और प्रकृति के संतुलित संबंधों की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

निष्कर्ष :

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण विमर्श परस्पर संबद्ध और पूरक तत्वों के रूप में उपस्थित हैं। आधुनिक कवियों ने प्रकृति को केवल सौंदर्य और भावनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं माना, बल्कि उसे मानव जीवन, सांस्कृतिक पहचान और पर्यावरणीय संतुलन से जोड़कर देखा है। काव्य में लोक संस्कृति, परंपराओं तथा मानवीय मूल्यों का चित्रण भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण की भावना को सुदृढ़ करता है। साथ ही, पर्यावरणीय संकट, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण जैसी समकालीन समस्याओं को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिंदी कविता पर्यावरणीय जागरूकता, सांस्कृतिक संरक्षण और मानव–प्रकृति सह–अस्तित्व की अवधारणा को प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार आधुनिक हिंदी काव्य समाज को प्रकृति और संस्कृति के प्रति उत्तरदायी दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करते हुए सतत एवं संतुलित विकास

की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है।

संदर्भ-सूची :

- पर्यावरण और समकालीन हिंदी कविता. Shikshan Sanshodhan, 2024.
- आधुनिक हिंदी कविता में पर्यावरण–चेतना : एक अध्ययन. Vistas, 2026.
- हिंदी कविता में पर्यावरण चेतना : एक समीक्षात्मक अध्ययन. International Journal of Hindi Research, 2025.
- 'धरती हाँफ रही है' में पर्यावरणीय चेतना. International Journal of Hindi Research, 2023.
- समकालीन कविताओं में पर्यावरण समस्याएं : एक अध्ययन. International Journal of Hindi Research, 2026.
- हिंदी कविता में प्रकृति की भूमिका : परंपरागत से आधुनिक. Quest Journals, 2024.
- पर्यावरण और कविता : कवियों का सामाजिक दायित्व बोध. Research Gate, 2014.
- आधुनिक हिन्दी कविता : प्रकृति और पर्यावरण. Research Gate, 2013.
- समकालीन कविता में पर्यावरण संवेदना. Research Gate, 2025.
- डॉ. विजय कुमार संदेश के काव्य में प्रकृति–चित्रण. International Journal of Hindi Research, 2025.
- विश्व जल दिवस और "नदी और साबुन" कविता की प्रासंगिकता. International Journal of Hindi Research, 2025.
- डॉ० ईश्वर चंद 'गंभीर' के काव्य में पर्यावरण चिंतन. International Journal of Hindi Research, 2026.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 53-55

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिलाओं में महिला उत्पीड़न से संबंधित कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता का अध्ययन

सुशीला, शोधकर्त्री
डॉ. रेखा खण्डेलवाल, सहायक आचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।

1. सारांश :

यह शोध–पत्र 'महिलाओं में महिला उत्पीड़न से संबंधित कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता का अध्ययन' के विश्लेषण को प्रस्तुत करता है। वेदों में नारी के बारे में कहा गया है कि यत्र नार्यस्तु पुज्येते, तत्र देवता रमन्ते'' अर्थात् जहाँ नारी को पूजा जाता है वहाँ देवता निवास करते है। इसी प्रकार प्राचीन काल से आज तक नारी को सम्मानीय दृष्टि से देखा जाता है। समाज में जिस तरह पुरूषों को महत्व दिया जाता है, वैसे ही वर्तमान संदर्भ में नारी का स्थान अद्वितीय है। आज महिलाएं पुरूषों के साथ समाज में कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है। आर्य सभ्यता स्त्री प्रधान थी, परन्तु आज का समाज पुरूष प्रधान हो रहा है। नारी अपने त्याग और भक्ति भाव से सभी रिश्तों को एवं जिम्मेदारियों को निभाती है।

2. प्रस्तावना :

हमारे भारतीय संविधान में महिला सुदृढ़ीकरण के लिए अपने कानून बनाये गये है। लेकिन महिलाओं को अभी भी पुरूषों के समान अधिकार प्रदान नहीं किये गये हैं कही पर ये अधिकार मिल भी गये हैं तो महिलाओं को उनका लाभ नहीं मिल पा रहा है। इसलिए आवश्यकता इस बात की भी है, महिलाओं को कानूनी अधिकारों के साथ–साथ शिक्षित भी किया जाना आवश्यक है, ताकि वे हर क्षेत्र में आगे बढ़ सकें।

शिक्षा प्राप्त होने के कारण ही आज हमारे देश में महिलाएं उच्च स्थान प्राप्त कर रही है। इनमें से श्रीमति इंदिरा गाँधी, श्रीमती प्रतिभा पाटिल, किरण बेदी, कल्पना चावला, बछेन्द्रीपाल, सायना नेहवाल, इन्दिरा नुई एवं मैरिकोम आदि ने विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी पहचान बनायी है।

3. समस्या का औचित्य :

हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के मूल्यों एवं उच्च सांस्कृतिक आदर्शो का पतन हो चुका है। इसके परिणामस्वरूप जघन्य अपराधों पर भी लोगों की किसी भी तरह की प्रतिक्रिया नहीं होती है। महिला अपराधों के संबंध में अधिकांश अपराधी गवाह, सबूत, बयान आदि के अभाव एवं धनबल के सहारे छूट जाते है। पीड़ित महिला, वकीलों के प्रश्नों और जिरह से पानी–पानी होकर गलत बयानवाजी भी कर देती है।

महिलाओं की भागीदारी भी प्रत्येक क्षेत्र में होना आवश्यक है, इनके बिना देश का विकास संभव नहीं है। कोई भी देश उन्नति की राह पर पहुँच पाता है, जब उसमें निवास कर रहे सभी लोग उसमें सहभागी होकर कार्य करें। वर्तमान समय में विभिन्न व्यावसाय में कार्य कर रही महिलाएं अपने अधिकारों से परिचित है तो वे अपने इन अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार कर रही है? यदि वे इन अधिकारों से वंचित है, तो वे इसके पीछे क्या कारण एवं समस्याएं है।

4. शोध के उद्देश्य :

- सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में कार्यरत अध्यापिकाओं की महिला उत्पीड़न से संबंधित कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
- ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में कार्यरत अध्यापिकाओं की महिला उत्पीड़न से संबंधित कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।
- शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में कार्यरत अध्यापिकाओं की महिला उत्पीड़न से संबंधित कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

5. शोध की विधि :

किसी भी शोध कार्य को पूरा करने के लिए शोधार्थी का प्रमुख उद्देश्य समस्या का हल ढूंढना है। वर्तमान समय में शोध कार्य हेतु अनेक शोध विधियों का अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत शोध के लिए सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया है।

6. जनसंख्या :

प्रस्तुत अध्ययन में जयपुर जिले के चार विद्यालयों की 100 अध्यापिकाओं को जनसंख्या के रूप में चयन किया गया है।

7. शोध में प्रयुक्त न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध कार्य उच्च माध्यमिक स्तर के 100 अध्यापिकाओं का चयन किया गया है।

8. शोध में प्रयुक्त उपकरण :

शोधकर्त्री द्वारा उपकरण के रूप में स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

9. सांख्यिकीय प्रविधियाँ :

प्रस्तुत शोध कार्य में सांख्यिकी के रूप में मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, टी परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

10. शोध का परीसीमांकन :

- यह अध्ययन माध्यमिक स्तर की अध्यापिकाओं से सम्बन्धित है।
- इस अध्ययन के लिए माध्यमिक स्तर की अध्यापिकाओं को ही न्यादर्श में लिया गया हैं।
- इस अध्ययन हेतु 100 अध्यापिकाओं का चयन किया गया है।
- इसमें माध्यमिक स्तर की 50 अध्यापिका जयपुर क्षेत्र के शहर की शामिल की गयी है।
- इसमें माध्यमिक स्तर की 50 अध्यापिका जयपुर क्षेत्र के गाँव की शामिल की गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- अनास्तासी (1959) : ''साइक्लोजी टेस्टिंग तत्व'', मैकमिलत एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क।
- उषा, डॉ. गोपाल (1796) : ''योग शिक्षा ज्ञानकोष'' स्पोर्टस पब्लिकेशन्स, दरिया गंज, नई दिल्ली।
- कपिल, डॉ. एच.के. (2006) : ''अनुसंधान विधियाँ'' विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- कपिल, डॉ. एच.के. (2008) : ''सांख्यिकी के मूल तत्व'' विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
- गुड चार्टर, बी.ए. (1941) : ''मैथोडोलोजी ऑफ एफ्लटन सेंचूरी।
- गुड चार्टर वी (1989) : ''अनुसंधान परिचय'' पारसनाथ राय चावला एण्ड संस, आगरा।
- गुड.वी.सी. (1995) : ''डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन'' मेग्राहिल न्यूयार्क।
- झा. डॉ. पीताम्बर (2000) : ''योग परिचय'' पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

डॉ. मनोज कुमार

सहायक आचार्य

श्री बालाजी पी. जी. महाविद्यालय, जयपुर।

Kumarmanoj381f@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 56-59

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शैक्षिक चिन्तक परमहंस योगानंद के शैक्षिक विचारों का भारतीय शिक्षा प्रणाली में योगदान

अन्नू, शोधकर्त्री
डॉ. सन्जू, प्राचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।

सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र बीसवीं सदी के महान आध्यात्मिक गुरु और शैक्षिक चिंतक परमहंस योगानंद के शैक्षिक दर्शन और वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली, विशेषकर राष्ट्रीय षिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) में उसकी प्रासंगिकता का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है। योगानंद जी का शैक्षिक दृष्टिकोण केवल अकादमिक या किताबी ज्ञान तक सीमित नहीं था, बल्कि वह उनके प्रसिद्ध 'हाउ–टू–लाइव' (जीवन जीने की कला) सिद्धांत पर आधारित था, जो मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के संतुलित व समग्र विकास की वकालत करता है।

इस शोध में यह रेखांकित किया गया है कि योगानंद जी द्वारा 1917 में रांची में स्थापित विद्यालय के माध्यम से दिए गए विचार– जैसे ध्यान और क्रिया योग द्वारा मानसिक स्वास्थ्य व एकाग्रता का विकास, प्रकृति के सान्निध्य में अनुभवात्मक अधिगम, संकीर्णता से परे सार्वभौमिक मूल्य–आधारित शिक्षा, तथा आत्मनिर्भरता के लिए व्यावसायिक कौशल विकास – आज की आधुनिक भारतीय शिक्षा नीति के मूल स्तंभों से अद्भुत समानता रखते हैं।

तकनीकी शब्दावली :

परमहंस योगानंद, शैक्षिक विचार, हाउ–टू–लाइव, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, समग्र विकास।

1. प्रस्तावना :

बीसवीं सदी के महान संतों में शुमार परमहंस योगानंद ने पाश्चात्य और पूर्वी संस्कृतियों के बीच एक सेतु का कार्य किया। उनके शैक्षिक विचार केवल अकादमिक ज्ञान तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे आत्मा, मन और शरीर के संतुलित विकास पर जोर देते थे। आज की भारतीय शिक्षा प्रणाली (जैसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020) जिस समग्र विकास और मूल्य–आधारित शिक्षा की बात कर रही है, उसकी नींव योगानंद जी ने एक सदी पहले ही रख दी थी।

2. परमहंस योगानंद का शैक्षिक विचार :

'हाउ–टू–लाइव' :– परमहंस योगानंद जी के अनुसार, शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को अपनी अंतर्निहित

शक्तियों को पहचानना सिखाना है। उन्होंने 1917 में रांची (झारखंड) में एक छोटे से स्कूल से अपनी शैक्षिक यात्रा शुरू की, जो बाद में 'योगदा सत्संग विद्यालय' के रूप में फला–फूला। उनके दर्शन के मुख्य स्तंभ निम्नलिखित थे –

- **संतुलित विकास :–** परमहंस योगानंद के अनुसार शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों का समान विकास करना ही संतुलित विकास है।
- **अनुभवजन्य ज्ञान :–** परमहंस योगानंद रटने की बजाय स्वयं के अनुभवों और एकाग्रता के माध्यम से सीखने को महत्वपूर्ण मानते है।
- **नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा :–** परमहंस योगानंद किसी धर्म विशेष की संकीर्णता से दूर, सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों को अपनाकर नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना चाहते थे।

3. भारतीय शिक्षा प्रणाली में परमहंस योगानंद का योगदान :

योगानंद जी के विचारों का भारतीय शिक्षा के विभिन्न आयामों पर गहरा प्रभाव है, जिसे निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है –

- **मूल्य–आधारित और चरित्र निर्माण शिक्षा :–** आज भारतीय पाठ्यक्रम में 'मूल्य आधारित शिक्षा' पर विशेष जोर दिया जा रहा है। योगानंद जी का मानना था कि यदि शिक्षा चरित्र का निर्माण नहीं कर सकती, तो वह व्यर्थ है। उन्होंने छात्रों में सत्य, अहिंसा, संयम और देशभक्ति जैसे गुणों को कूट–कूट कर भरने की वकालत की।
- **योग और ध्यान का एकीकरण :–** वर्तमान में भारतीय स्कूलों और विश्वविद्यालयों में योग को अनिवार्य या वैकल्पिक विषय के रूप में शामिल किया गया है। योगानंद जी ने 'क्रिया योग' और एकाग्रता की वैज्ञानिक तकनीकों को छात्रों की दिनचर्या का हिस्सा बनाया ताकि वे मानसिक तनाव से मुक्त रह सकें और उनकी स्मरण शक्ति का विकास हो।
- **पर्यावरण और प्रकृति के सान्निध्य में शिक्षा :–** शांति निकेतन की तरह, योगानंद जी ने भी प्रकृति के खुले वातावरण में शिक्षा देने का समर्थन किया। उनका मानना था कि प्रकृति मनुष्य की सबसे बड़ी शिक्षक है। आज की भारतीय शिक्षा प्रणाली में 'पर्यावरण शिक्षा' और 'आउटडोर लर्निंग' इसी विचार का विस्तार हैं।
- **कौशल विकास और आत्मनिर्भरता :–** योगानंद जी के स्कूलों में कृषि, उद्योग और तकनीकी कौशल की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। यह आज के 'कौशल भारत' मिशन और NEP 2020 के व्यावसायिक कोर्स के दृष्टिकोण से पूरी तरह मेल खाता है।

4. आधुनिक भारतीय संदर्भ (NEP 2020) में प्रासंगिकता :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों और परमहंस योगानंद जी के शैक्षिक दर्शन में गहरी समानताएं हैं। वर्तमान संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है –

- **समग्र विकास का लक्ष्य :–** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 छात्र के 360–डिग्री यानी चौमुखी विकास पर जोर देती है। योगानंद जी का भी यही मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का संतुलित विकास ('हाउ–टू–लाइव' सिद्धांत) होना चाहिए।

- **मानसिक स्वास्थ्य और तनाव प्रबंधन :–** आज के डिजिटल और प्रतिस्पर्धी युग में छात्र मानसिक तनाव और अवसाद से घिरे हैं, जिसके समाधान के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 मानसिक कल्याण पर बल देती है। योगानंद जी द्वारा प्रतिपादित 'क्रिया योग', ध्यान और एकाग्रता की वैज्ञानिक तकनीकें छात्रों को मानसिक शांति प्रदान करने और उनकी स्मरण शक्ति बढ़ाने में आज सबसे सटीक उपकरण हैं।
- **मूल्य–आधारित शिक्षा :–** आधुनिक शिक्षा नीति विद्यार्थियों में मानवीय, नैतिक और संवैधानिक मूल्यों को विकसित करने की बात करती है। योगानंद जी ने संकीर्णता से दूर एक ऐसी सार्वभौमिक आध्यात्मिक शिक्षा की वकालत की थी, जो छात्रों में करुणा, सत्य, अहिंसा और वैश्विक बंधुत्व (वसुधैव कुटुंबकम) की भावना जागृत कर सके।
- **व्यावहारिक और अनुभवात्मक अधिगम :–** राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 रटने की प्रवृत्ति को खत्म कर व्यावहारिक ज्ञान और 'करके सीखने' को बढ़ावा देती है। योगानंद जी ने एक सदी पहले अपने रांची विद्यालय में प्रकृति के सान्निध्य में खुले वातावरण में सीखने और प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति अपनाई थी।
- **कौशल विकास और आत्मनिर्भरता :–** नई शिक्षा नीति में कक्षा 6 से ही वोकेशनल कोर्सेज और कौशल विकास को अनिवार्य किया गया है ताकि युवा आत्मनिर्भर बन सकें। योगानंद जी ने अपने दौर में ही छात्रों के लिए कृषि, उद्योग और तकनीकी कौशल की शिक्षा अनिवार्य की थी, जो आज के आत्मनिर्भर भारत के विजन को सुदृढ़ करती है।
- **वैश्विक नागरिक का निर्माण :–** जहां राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय संस्कृति से जुड़े रहकर वैश्विक नागरिक तैयार करने का लक्ष्य रखती है, वहीं परमहंस योगानंद ने पूर्वी अध्यात्म और पश्चिमी विज्ञान का अद्‌भुत समन्वय कर दुनिया को एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण दिया था, जो आज के वैश्विक परिदृश्य में अत्यंत प्रासंगिक है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परमहंस योगानंद के शैक्षिक विचार वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक मार्गदर्शक की तरह हैं। आज जब शिक्षा व्यवसायीकरण और अत्यधिक प्रतिस्पर्धा के दौर से गुजर रही है, तब योगानंद जी का 'जीवन जीने की कला' का सिद्धांत छात्रों को मानसिक शांति, भटकाव से मुक्ति और एक जिम्मेदार नागरिक बनने की प्रेरणा देता है। उनकी शिक्षाओं को आधुनिक पाठ्यक्रम में गहराई से शामिल करके ही हम एक समृद्ध, संवेदनशील और आत्मनिर्भर भारत का निर्माण कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- योगानंद परमहंस ''जीने की कला'' योगदा सत्संग सोसायटी ऑफ इण्डिया, कलकता, संस्करण 2019
- योगानंद परमहंस ''योगी कथामृत'' योगदा सत्संग सोसायटी ऑफ इण्डिया, कलकता, संस्करण 2022
- गौतम स्वाति ''परमहंस योगानंद के अनमोल विचार'' प्रभात पब्लिकेशन्स प्रा. लि., नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2025

- लाल एवं तोमर ''विश्व के श्रेष्ठ शैक्षिक चिन्तक'' आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ, संस्करण 2008
- योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इंडिया के शैक्षिक प्रकाशन और जर्नल।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (अब शिक्षा मंत्रालय). (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार
- योगानंद परमहंस ''योगी कथामृत'' योगदा सत्संग सोसायटी ऑफ इण्डिया, कलकता, संस्करण 2022
- दोभाल मंजुला ''ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी : परमहंस योगानंद'' फिंगर प्रिंट प्रकाश बुक्स, यू. के., संस्करण 2025

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 60-65

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तरापथ राजमार्ग पर मौर्यकालीन नौकरशाही और कर नियंत्रण का विश्लेषणात्मक अध्ययन

विकास बौद्ध

शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग,

डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।

सारांश –

यह शोध पत्र मौर्य साम्राज्य के सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग उत्तरापथ के केन्द्रीय प्रशासन और राजस्व नियंत्रण का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और समकालीन यूनानी वृतांत अध्ययन की जांच करते है कि कैसे इतने विशाल राजमार्ग पर व्यवस्थित प्रशासनिक केन्द्रीकृत नौकरशाही की संरचना स्थापित की थी। उत्तरापथ पर आंतरिक और विदेशी व्यापार के संचालन के लिए अध्यक्ष की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। कौटिल्य अपने अर्थशास्त्र में १८ तीर्थों का उल्लेख करते है। शोध इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे शुलकाध्यक्ष, विवीताध्यक्ष और अंतपाल जैसे अधिकारी व्यापारिक काफिलों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के बदले कर के रूप में सीमा शुल्क (वर्तनी), पथकर (शुल्क) और पारगमन करो की वसूली करते थे। इसके अतिरिक्त, मार्ग पर किसी भी प्रकार की वित्तीय धोखाधड़ी, कर चोरी को रोकने के लिए तैनात गुप्तचर और कड़े दंडों का भी विधान था। निष्कर्षता यह कहा जा सकता है कि उत्तरापथ मार्ग पर प्रशासनिक और नौकरशाही नियंत्रण केवल कर एकत्रित करने का साधन नहीं था, अपितु पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में केन्द्रीय साम्राज्य की आर्थिक संप्रभुता बनाए रखने का एक अद्भुत प्रयास था।

कीवर्ड्स – उत्तरापथ, मौर्य प्रशासन, अर्थशास्त्र, नौकरशाही, कर नियंत्रण, शुलकाध्यक्ष और राजस्व प्रणाली।

प्रस्तावना :

भारतीय इतिहास में, मौर्य वंश की स्थापना, चौथी शताब्दी ईसा–पूर्व की एक अभूतपूर्व घटना थी। यह वंश चंद्रगुप्त मौर्य और उनके मार्गदर्शक चाणक्य द्वारा स्थापित किया गया। यह साम्राज्य न केवल अपनी सैनिक उपलब्धियों के कारण जाना जाता है, बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप में पहली बार एक विशाल केन्द्रीकृत, आर्थिक ढांचे के लिए भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त, अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक नीतियों से भी यह साम्राज्य विश्व इतिहास में अत्यंत प्रगतिशील रहा। मौर्य शासन से पहले भारतीय उपमहाद्वीप राजनीतिक और आर्थिक कारणों से विभिन्न जनपदों एवं छोटे–छोटे राज्यों मे विभक्त था। और इन्ही कारणों से अंतर–राज्जीय व्यापार में करों की विसंगतियों और सुरक्षा संबंधी अनेक जोखिम मौजूद थे। मौर्य साम्राज्य एक विशाल भूखंडः में फैला था और किसी

साम्राज्य की आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और धार्मिक उन्नति के लिए, प्रशासनिक नियंत्रण और तीव्र संचार व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है, और इसी क्रम में सुरक्षा का होना अति आवश्यक है।

मौर्य काल की इस भू–राजनीतिक और आर्थिक आवश्यकता को उत्तरापथ ने पूरा किया, जो उत्तर–पश्चिम में स्थित प्रमुख शैक्षणिक और व्यापारिक केंद्र तक्षशिला (वर्तमान पाकिस्तान) से प्रारंभ होकर, सिंधु और गंगा यमुना के दोआब, अत्यंत उपजाऊ क्षेत्रों को पार करते हुए साम्राज्य की केन्द्रीय राजधानी पाटलीपुत्र तक जाता था। महाजनदों के काल से उत्तरापथ मार्ग का विशेष महत्व रहा, व्यापरिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण यह मार्ग कई बड़े नगरों को आपस मे जोड़ता था जैसे कोसल, मल्ल, अवन्ती, कुरु मगध इत्यादि। बुद्ध के समय भी शाकल नामक स्थान का उल्लेख व्यापार हेतु मिलता है किन्तु मिलिंद के समय यह एक प्रमुख व्यापारिक मार्ग था। जातकों में वर्णित वाराणसी ६ प्रमुख नगरों मे से एक अपनी संस्कृति और व्यापार के लिए प्रसिद्ध थी। वाराणसी के मृतिका शिल्पी अपने मृदभांड तक्षशिला तक ले जाते थे यह मार्ग बढ़ते हुए बंगाल के पूर्वी तट पर स्थित प्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह ताम्रलिप्ति तक जाता था। यह स्थलीय मार्ग लगभग २००० किमी लंबा न केवल मौर्य साम्राज्य के आंतरिक व्यापार की मुख्य जीवन रेखा थी, बल्कि यह भारत को मध्य एशिया, बैक्ट्रिया और लगभग सम्पूर्ण पश्चिमी जगत से जोड़ने वाली वैश्विक सिल्क रोड की एक अत्यंत महत्वपूर्ण उप शाखा भी थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और यूनानी राजदूत मेगास्थनीज के विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि मौर्य साम्राज्य ने उत्तरापथ को अत्यधिक विनियमित, सुरक्षित और आर्थिक रूप से अत्यधिक उत्पादक क्षेत्र में बदल दिया था।

तत्कालीन समय में जब दूरियाँ किसी भी साम्राज्य के बिखरने का सबसे बड़ा कारण बनती थी। मौर्यो ने एक ऐसी नौकरशाही का ताना–बाना बुना जिसने केन्द्रीय सत्ता के आदेशों को साम्राज्य के अंतिम छोर तक तीव्र गति से पहुचाया। मौर्य नौकरशाही प्राचीन विश्व की सबसे व्यवस्थित और केन्द्रीकृत प्रणालियों में से एक थी। आचार्य कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राज्य के सप्तांग सिद्धांत के अनुसार अमात्य को राज्य की आंखे माना है। राजा के बाद शीर्ष पर जो सबसे शक्तिशाली अधिकारी वर्ग होते थे उन्हे तीर्थ कहा जाता था जिनकी संख्या १८ थी। मंत्री, पुरोहित, समाहर्ता, सन्निधाता आदि शामिल थे। तीर्थों के ठीक नीचे प्रशासनिक अधिकारी होते थे, जिन्हे अध्यक्ष कहा जाता था, जो आर्थिक, व्यापारिक और सामाजिक गतिविधियों की देखरेख करते थे। मौर्यो ने कर नियंत्रण हेतु कड़े नियम बनाए जिसका मुख्य उद्देश्य राजस्व की चोरी रोकना और भ्रष्टाचार पर नियंत्रण करना था। राज्य मार्ग मौर्य सेनाओं के त्वरित आवागमन का मार्ग था, राजा को कोष भरने के लिए राजस्व का एक निरंतर स्रोत था और साम्राज्य के कोने–कोने से सूचनाएं लाने वाले गुप्तचरों और दूतों की जीवन रेखा था। इस मार्ग की पूरी कार्यप्रणाली, मौर्यो के प्रशासनिक का, दूरदर्शिता और कड़े अनुशासन को दर्शाती है, जहां व्यापारिक लाभ कमाने के साथ राज्य की सुरक्षा को सर्वोपरि रखा गया।

कौटिल्य अर्थशास्त्र यह बताती है कि एक राज्य को आर्थिक रूप से कैसे मजबूत होना चाहिए। मेगास्थनीज की इंडिका, यूनानी राजदूत मेगस्थनीज, चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहा। उसने एक पुस्तक लिखी जिसमे मौर्य साम्राज्य के दरबार में आँखों देखा विवरण दिया। इंडिका अपने मूलरूप में न मिलकर अन्य यूनानी इतिहासकारों स्ट्रेबो और एरियन के उद्धरणों में जीवित है। यही से मौर्य साम्राज्य के विशेष सड़क जिन्हे वह एग्रोनोमोई कहता है। यह साक्ष्य कौटिल्य के सैद्धांतिक नियमों की पुष्टि करता है। मौर्य सम्राट अशोक ने अनेक शिलालेखों, का निर्माण करवाया जिसमे अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक आदि बातों का

उल्लेख किया वह अपने सातवे स्तम्भ शिलालेख में सड़कों के भौतिकी बुनियादी ढांचे पर भारी निवेश किया था इसके अतिरिक्त, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा विभिन्न स्थलों पर उत्खनन में मिले उत्तरी कृष्ण मार्जित के बर्तन और सिक्के यह दर्शाते है कि शहरों के बीच वस्तुओं का आदान–प्रदान कितना सघन था।

Ranveer Chakravarti wrote in his book '*Trade in Early India*'-*"The tax was collected by the sthanika, who worked directly by the pradeshika;the sthanika worked together with the Gopa and was subject to periodical inspections by pradeshika. It would seem that the pradeshik was the equivalent of the modern assistant-collector and the pradeshika was district collector,both grades of the officials working under the final authority of the samaharta or the chief-collector."*
D.C.Sarkar wrote in his book *'Early Indian Trade and Industry'-"The classical writer mention carvan routes passing directly from Patna (capital of Magadha in later days)to the Persian Gulf. Even Iran was directly linked up with Magadha by a well provided trade route by land. Eratosthenes seems to have know well the royal road of Patilputra.*

The first thing that struck Megasthnes, on entering India was royal road starting right down from the frontier and meeting Taxila,Hastinapur,kannauj and Prayag on the route."

R.S. Sharma wrote in his book '*Perspectives in Social and Economic History of India*', "*The supridentof the ships regulated transport by water and collected ferry dues. But customs on commodities for internal and external commerce was mainly collected by the supridentof the tolls Sulkadhyaksh; who received custom varying 1/5 to 1/25 according to the nature of commodities."*

उत्तरापथ का प्रशासनिक ढांचा :

मौर्य साम्राज्य ने केवल उत्तरापथ पर नियंत्रण नहीं कियाए बल्कि उसे व्यवस्थित रखने के लिए एक केन्द्रीकृत नौकरशाही का गठन किया था। यह अधिकारी केवल कानून की व्यवस्था नहीं देखते थे, बल्कि वाणिज्यिक गतिविधियों का नियमन करते थे। पाटिलपुत्र साम्राज्य का केंद्र था।

अंतपाल . कौटिल्य, अंतपाल साम्राज्य की सीमाओं और मुख्य व्यापारिक द्वारों का सर्वोच्च रक्षक होते थे। उत्तर (तक्षशिला) के प्रवेश द्वार पर तैनात अंतपाल की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। उसके प्रमुख कर्तव्य निम्नलिखित थे – अंतपाल, बिक्री का माल ढोने वाली गाड़ी आदि से सवा पण वर्तनी (मार्ग की सुरक्षा आदि करने का टैक्स) लेवे। कोई भी विदेशी या स्थानीय व्यापारी बिना राजकीय सील या पास के साम्राज्य की सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता था। अंतपाल इस प्रामाणिकता की जांच करता था।

अन्तपाल : सपादपणिकां व्रतनीं गृहीयात्पण्यवहनस्य।।२८।।

माल का पंजीकरण – सीमा पर व्यापारी के माल, कितना, किस प्रकार का है इसकी जांच करना और लिखित विवरण तैयार करना, ताकि आगे चलकर किसी भी प्रकार की कर चोरी न की जा सके। अंतपाल व्यापारियों से मार्ग की सुरक्षा हेतु कर लेता था, जिसे वर्तनी कहा जाता था।

विवीताध्यक्ष . इसका कार्य वीरान क्षेत्रों, चारागाहों और जंगलों की सुरक्षा करना था। प्रायः डाकुओं द्वारा व्यापारियों

को लूटने का खतरा बना रहता था। इनकी नियुक्ति व्यापारियों की सुरक्षा हेतु उत्तरापथ पर की जाती थी। साथ ही, मार्ग में कुएं और विश्राम गृह बनवाने की देख–रेख भी करते थे। कोई भी विदेशी या स्थानीय व्यापारी बिना राजकीय सील या पास के साम्राज्य की सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता था। अंतपाल इस प्रामाणिकता की जांच करता था।

विवीताध्यक्षों मुद्रां पशयेत ||६|| भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत् ||७||

शुल्काध्यक्ष : व्यापारियों का व्यापारिक काफिला (कारवां या सार्थ) जब उत्तरापथ से होता हुआ बड़े नगरों जैसे–मथुरा या पटिलपुत्र के मुख्य नगर के द्वार पर पहुंचता था, तो शुल्काध्यक्ष वहाँ का नियंत्रण संभालता था। अर्थशास्त्र में उल्लिखित है कि नगर के उत्तर या पूर्व द्वार पर एक विशेष शुल्कशाला होती थी। वस्तुओं की गुणवत्ता, वजन और मूल्य का आकलन करना तथा उसके आधार पर कर का निर्धारण करना शुल्काध्यक्ष का कार्य था।

शुल्कादायिनश्रत्वार: पश्च वा सार्थोपयातान्वणिजो लिखेयु; ||२||

के कुतस्तया: कियतपण्या: क चाभिज्ञानमुद्रा वा कृता इति ||३||

संस्थाध्यक्ष – बाजारों में माल पहुँचने के बाद संस्थाध्यक्ष की भूमिका शुरू होती थी कि व्यापारी तयकीमत से अधिक कीमत पर माल न बेचे और विदेशी से आए व्यापारी को स्थानीय बाजार में प्रताड़ित न किया जाए।

कर संग्रह और राजस्व नियंत्रण –

मौर्य साम्राज्य में राजकोष नीति अत्यंत व्यवहारिक थी राज्य तय करता था कि कर प्रणाली इतनी कठोर न हो की कर संग्रहण में समस्या उत्पन्न होने लगे और इतना लचीला न हो की हर कोई उल्लंघन करे और राज्य में राजस्व का नुकसान हो।

उत्तरापथ पर मुख्यत तीन प्रकार के कर लगाएं जाते थे –

- **शुल्क** – वस्तु के मूल्य का एक निश्चित हिस्सा था। सामान्य वस्तुओं पर यह मूल्य का १/२० या १/१० भाग होता था, जबकि कीमती वस्त्रों पर, इत्रों और रत्नों पर १/५ या १/६ तक हो सकता था।
- **वर्तनी** – यह एक पारगमन शुल्क था। कौटिल्य ने इसकी दरें तय की थी। जैसे प्रति ऊंट भार माल पर एक निश्चित पण, प्रति बैलगाड़ी पर अलग शुल्क और पैदल चलने वाले पर न्यूनतम शुल्क।
- **आतिथ्य और पारिश्रमिक शुल्क** – विदेशी व्यापारियों से उनके ठहरने और सुरक्षा के बदले अतिरिक्त उपकर लिए जाते थे।

शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम् ||१|| निष्क्रामयं प्रवेश्यं च शुल्कम् ||२||

कर चोरी और दंड विधान – मौर्य साम्राज्य का नियम, चोरी के मामलों में अत्यंत कठिन था। अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण, २१वें अध्याय में इसके कड़े नियम मिलते है।

- **माल को छुपाना** – यदि कोई व्यापारी कर से बचने के लिए अपने कीमती माल को कम मूल्य की वस्तुओं के नीचे छिपाता था, तो राज्य उसका पूरा माल जब्त कर लेता था या उस पर आठ गुना जुर्माना लगाता था।
- **बिना राजकीय सील के यात्रा करना** – यदि नगर द्वार पर किसी व्यापारी के माल पर अंतपाल या राजकीय अधिकारी की सील नही पाई जाती थी, तो उसे कर का दो–गुना माल देना पड़ता था। नकली सील बनाने वाले को मृत्युदंड या भारी अंग–भंग की सजा का प्रावधान था।

- **वजन या माप** – व्यापारियों द्वारा कम तौलने को रोकने के लिए पौतवाध्यक्ष द्वारा प्रमाणित बांटो का उपयोग करना आवश्यक था। ऐसा न करने पर भारी आर्थिक दंड दिया जाता था।
- **राजकीय सुरक्षा और हर्जाना कानून** – प्राचीन काल में यह एक क्रांतिकारी कानून था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार, यदि किसी व्यापारी का माल उत्तरापथ पर यात्रा के दौरान लूट लिया जाता था, तो उसकी भरपाई की जिम्मेदारी उस क्षेत्र के प्रशासनिक अधिकारी की होती थी। यदि माल सीमांत क्षेत्र में लूटा गया, तो अंतपाल को अपने निजी कोष या राजकीय खजाने से व्यापारी को हर्जाना देना पड़ता था। किसी जंगल या चारागाह में लूटा माल की भरपाई विवीताध्यक्ष को करनी पड़ती थी।

भौतिक बुनियादी ढांचे का विकास – मेगस्थनीज और अशोक के शिलालेखों दोनों इस बात की पुष्टि करते है कि उत्तरापथ का रख–रखाव बहुत उच्च स्तर का था। अशोक अपने सातवे स्तम्भ शिलालेख में लिखवाया है *"किं मैंने सड़कों के किनारे बरगद के वृक्ष लगवाए ताकि वे मनुष्यों और पशुओं को छाया दे सके। मैंने आम के बाग लगवाए। मैंने हर आठ कोस पर कुएं खुदवाएं, विश्राम गृह, और सराय बनवाए, ताकि यात्रियों और व्यापारियों को कोई कष्ट न हो"*। मेगस्थनीज के अनुसार, एग्रोनोमोई नामक अधिकारी सड़कों की नियमित मरम्मत करवाते थे। नदियों पर नावों के पल बनवाते थे, और यह सुनिश्चित करते थे कि भारी बैल गाड़ियां और रथ आसानी से गुजर सके। उन्होंने हर १० स्टेडिया पर दूरी और दिशा सूचक बोर्ड लगा रखे थे, जो व्यापारियों को रास्ता भटकने से बचाते थे।

केन्द्रीयकरण की सीमाएं–

अर्थशास्त्र मौर्य साम्राज्य के अत्यंत केन्द्रीकृत व्यवस्था का चित्र खीचता है, लेकिन आधुनिक इतिहासकार जैसे– रोमिला थापर का मानना है कि मौर्य साम्राज्य का नियंत्रण पूरे साम्राज्य पर एक समान न होकर कई खंडों मे विभक्त था –

- **शहरी केंद्र** – मगध और पाटिलपुत्र के आस–पास नियंत्रण शत–प्रतिशत था।
- **शहरी जंक्शन** – तक्षशिला, उज्जैन और मथुरा जैसे मार्ग केंद्रों पर नौकरशाही अत्यंत सक्रिय थी।
- **परिधीय क्षेत्र** – जंगलों और आदिवासी क्षेत्र से गुजरने वाले उत्तरापथ के हिस्सों पर मौर्य नियंत्रण केवल पारगमन सुरक्षा तक सीमित था। राज्य वहाँ के आंतरिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं करता था, बशर्ते वे व्यापारियों को नुकसान न पहुंचाए।

कड़े नियमों का उद्देश्य व्यापारियों का शोषण करना नहीं, बल्कि लेनदेन की लागत कम करना था। सही माप, भार, सड़के सुरक्षित और निर्धारित कर ने व्यापारियों के आत्मविश्वास को बढ़ाया। इसलिए, मौर्य नौकरशाही ने शोषक की बजाय एक सुविधाप्रदाता की भूमिका निभाई।

निष्कर्ष –

शोध लेख के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत का उत्तरापथ केवल एक मिट्टी या पत्थरों का भौगोलिक मार्ग नहीं था, अपितु यह मौर्य साम्राज्य की आर्थिक संप्रभुता और प्रशासनिक दूरदर्शिता का साक्षात प्रतीक था। एक विशाल साम्राज्य को केवल सेना के बल पर एकजुट नहीं किया जा सकता था। उसके लिए एक जीवंत और कर प्रदाता आर्थिक तालमेल की आवश्यकता होती है। मौर्य साम्राज्य ने ये अच्छे से समझ लिया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे वर्णित प्रशासनिक और मेगास्थनीज या अशोक के अभिलेख द्वारा प्रमाणित

व्यावहारिक ढांचा यह सिद्ध करता है कि मौर्य राज्य ने उत्तरापथ पर एक अत्यंत कुशल नियामक व्यवस्था स्थापित की थी। अंतपाल, शुलकाध्यक्ष और विवीताध्यक्ष जैसे अधिकारियों ने मार्ग को भय मुक्त बनाया। व्यापारियों को सुरक्षा, नुकसान होने पर हर्जाना और कर चोरी रोककर राजकीय कोष को हमेशा भरा।

अंततः यह कहा जा सकता है कि उत्तरापथ मार्ग पर मौर्यकालीन नौकरशाही और कर नियंत्रण का यह व्यवस्था प्राचीन विश्व के सबसे उन्नत और ढांचागत प्रशासनों में एक था। इसने न केवल भारत के आंतरिक बाजारों को एकीकृत किया, बल्कि भविष्य के शासकों जैसे शेरशाह सूरी और ब्रिटिश अधिकारियों को उत्तरापथ को विकसित करने का अवसर प्रदान किया।

Bibliography :-

- शास्त्री, विद्याभाष्कर वेदरत्न उदयवीर, *कौटलीय अर्थशास्त्र,* अमृत प्रेस लाहौर।
- मेगास्थनीज इंडिका (अनुवादक जे डब्ल्यू मैकक्रिडल *ए An Account of Ancient India described by Megasthenes and Arriyan*) थैंकर एण्ड कंपनी कलकत्ता।
- अशोक के शिलालेख E. Hultzsh; *Corpus Inscriptionum Indicarum :Inscription of Ashoka,* राजकीय प्रकाशक दिल्ली।
- मिश्र श्याम मनोहर, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, प्रामानिक पब्लिकेशन्स इलाहाबाद, १९९७
- Sharma Ram Sharan,*Perspectives in Social and Economic History of Early India*, 1983
- Sarkar, D.C, Early *Indian trade and industry*,University of Calcutta,1972
- Charkravarti, ranabir, *Trade in Early India*, Oxford university Press, 2001
- Thapar, Romila, *Ashoka and Decline of The Mauryans*,Clarendon Press, 1961
- Srivastava Balram, *Trade and Commerce in Acient India,* Vidyavilas Press,Varanasi-1, 1968

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 66-68

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

छात्रों के मानसिक तनाव को कम करने में योग क्रियाओं की भूमिका

सुनीता जाखड़, शोधकर्त्री
डॉ. रेखा खण्डेलवाल, सहायक आचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।

1. सारांश :

आधुनिक प्रतिस्पर्धी युग में शैक्षणिक दबाव, कैरियर की चिंता और सामाजिक अपेक्षाओं के कारण विद्यार्थियों में मानसिक तनाव एक गंभीर समस्या बन चुका है। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य छात्रों के मानसिक तनाव को नियंत्रित करने तथा उनके समग्र स्वास्थ्य में सुधार करने में विशिष्ट योग क्रियाओं जैसे प्राणायाम, योगनिद्रा और ध्यान की भूमिका का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक मूल्यांकन करना है।

विद्यार्थी जीवन में नियमित योग के समावेश से न केवल तनाव और एंग्जायटी में कमी आती है, बल्कि उनकी एकाग्रता, स्मृति क्षमता और संवेगात्मक स्थिरता में भी सकारात्मक सुधार देखा गया है। यह शोध पत्र छात्रों के मानसिक कल्याण के लिए शिक्षण संस्थानों में योग को अनिवार्य रूप से शामिल करने की आवश्यकता पर बल देता है और छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए एक नई दिशा प्रस्तुत करता है।

2. मुख्य शब्द :

- मानसिक तनाव
- योग क्रियाएं
- प्राणायाम
- योगनिद्रा

3. प्रस्तावना :

विद्यार्थी जीवन मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण और संवेदनशील चरण है जहाँ व्यक्ति के भविष्य, कैरियर और व्यक्तित्व की नींव रखी जाती है। वर्तमान समय में वैश्वीकरण और तीव्र प्रतिस्पर्धा के कारण पाठ्यक्रम का अत्यधिक बोझ, ग्रेडिंग प्रणाली, परीक्षाओं का भय और अभिभावकों की उच्च आकांक्षाओं ने छात्रों को भारी मानसिक दबाव में डाल दिया है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यह दीर्घकालिक तनाव छात्रों की मानसिक क्षमता को कमजोर करता है और उनमें अवधान एवं एकाग्रता की कमी, अनिद्रा और चिड़चिड़ेपन जैसे विकारों को जन्म देता है।

भारतीय योग विज्ञान इस आधुनिक समस्या का एक अत्यंत प्रभावी और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। महर्षि पतंजलि ने भी पातंजल योगसूत्र में स्पष्ट किया है कि चित्त की वृत्तियों अर्थात् विचारों के भटकाव, अशांति और तनाव को रोकना ही योग है। जब छात्र प्राणायाम और शिथिलीकरण की क्रियाएं करते हैं, तो उनका तंत्रिका तंत्र संतुलित होता है जिससे मस्तिष्क को गहरी शांति मिलती है, नकारात्मक विचारों का वेग थमता है और मानसिक ऊर्जा का पुनर्संचार होता है।

4. समस्या का औचित्य :

वर्तमान शैक्षणिक परिदृश्य में इस शोध कार्य की प्रासंगिकता और आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि समकालीन समय में छात्रों में अवसाद, अकेलेपन और अव्यवस्थित जीवन शैली की बढ़ती प्रवृत्तियां एक गंभीर सामाजिक व शैक्षिक चिंता का विषय बन चुकी हैं। ऐसे में यह शोध पारंपरिक दवाओं या महंगे मनोवैज्ञानिक परामर्श के स्थान पर एक सुरक्षित, प्राकृतिक और शून्य–लागत वाले वैज्ञानिक विकल्प के रूप में योग की उपयोगिता को सिद्ध करता है। चूंकि मानसिक तनाव सीधे तौर पर छात्र की याददाश्त और निर्णय लेने की क्षमता को कमजोर करता है, इसलिए यह अध्ययन यह समझने में मदद करता है कि कैसे विशिष्ट योग क्रियाएं मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को सुव्यवस्थित कर छात्रों की एकाग्रता और शैक्षणिक निष्पादन को बेहतर बना सकती हैं।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) छात्रों के समग्र विकास और शारीरिक–मानसिक कल्याण पर विशेष बल देती है, जिसके तहत यह अध्ययन नीति निर्माताओं, प्राचार्यों और पाठ्यक्रम निर्धारकों को यह ठोस वैचारिक आधार प्रदान करता है कि क्यों योग को दैनिक समय–सारणी का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाना चाहिए। अंततः यह शोध पत्र शिक्षा और योग विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वाले आगामी शोधकर्ताओं, शिक्षकों और शिक्षाशास्त्रियों के लिए एक मार्गदर्शक संदर्भ ग्रंथ के रूप में कार्य करता है।

5. शोध के उद्देश्य :

- छात्रों में वर्तमान शैक्षणिक तनाव के कारणों और उनके मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों की प्रकृति को गहराई का अध्ययन करना।
- छात्रों के मानसिक तनाव, परीक्षा के भय और मानसिक थकान को दूर करने में विशिष्ट योग क्रियाओं की वास्तविक भूमिका का तार्किक विश्लेषण का अध्ययन करना।
- विद्यार्थी जीवन में योग क्रियाओं के नियमित अभ्यास से होने वाले व्यावहारिक एवं संवेगात्मक बदलावों का अध्ययन करना।

6. तनाव प्रबंधन में सहायक मुख्य योग क्रियाएं :

छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने के लिए योग विज्ञान में कुछ विशिष्ट क्रियाओं को अत्यंत प्रभावशाली माना गया है जिनमें अनुलोम–विलोम प्राणायाम सबसे प्रमुख है जो मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों में संतुलन स्थापित करके तार्किक और रचनात्मक क्षमता को बढ़ाता है तथा मानसिक थकावट को तुरंत दूर करता है। इसी क्रम में भ्रामरी प्राणायाम के दौरान उत्पन्न होने वाली भनभनाहट की ध्वनि सीधे मस्तिष्कीय नसों को शांत करती है जो परीक्षा के समय होने वाली घबराहट, मानसिक अशांति और अनिद्रा को दूर करने में अचूक सिद्ध होती है। इसके साथ ही योगनिद्रा उपचेतन मन में बैठे गहरे तनाव और मानसिक विकारों को दूर करने की एक अत्यंत प्रामाणिक वैज्ञानिक विधा है जो छात्रों को कुछ ही मिनटों में कई घंटों की गहरी नींद जैसी

ताजगी और मानसिक ऊर्जा प्रदान करती है। इन क्रियाओं के साथ ध्यान का नियमित जुड़ाव विचारों को एकाग्र करने में मदद करता है जिससे छात्रों की स्मृति क्षमता और ध्यान केंद्रित करने की अवधि में अभूतपूर्व वृद्धि होती है।

7. शैक्षिक निहितार्थ एवं सुझाव :

इस शोध के निष्कर्षों के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण शैक्षिक सुझाव दिए जा सकते हैं जिसके अंतर्गत प्रत्येक विद्यालय और महाविद्यालय की दैनिक समय–सारणी में प्रार्थना सभा या सुबह के समय कम से कम बीस से तीस मिनट का अनिवार्य योग व प्राणायाम सत्र शामिल किया जाना अत्यंत आवष्यक है। इसके साथ ही शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों जैसे बी.एड और एम.एड के पाठ्यक्रमों में भी व्यावहारिक योग को प्रमुखता दी जानी चाहिए ताकि भविष्य के शिक्षक कक्षाओं में छात्रों के मानसिक तनाव को आसानी से पहचानकर उन्हें योग के माध्यम से सही दिशा में निर्देशित कर सकें। यह संपूर्ण प्रक्रिया राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के तहत छात्रों के समग्र विकास और मानसिक कल्याण के लक्ष्यों को धरातल पर अक्षरशः लागू करने के लिए एक मजबूत और व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष :

इस वैचारिक अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नियमित रूप से की जाने वाली योग क्रियाएं छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक सुरक्षा कवच की तरह कार्य करती हैं। योग को केवल शारीरिक व्यायाम के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि यह छात्रों के संवेगात्मक संतुलन को सुदृढ़ करने का एक सशक्त माध्यम है। इसके नियमित अभ्यास से छात्र कठिन परिस्थितियों, जटिल विषयों और परीक्षाओं के समय घबराने या अवसाद ग्रस्त होने के बजाय अत्यंत शांत मन से सही निर्णय लेने में सक्षम बनते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए योग क्रियाएं वर्तमान समय की सबसे महती आवश्यकता हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- सरस्वती, स्वामी सत्यानंद (2013) : आसन प्राणायाम मुद्रा बंध. बिहार योग विद्यालय।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) : स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा अनुभाग, NCERT.
- शर्मा, आर. के. (2021) : आधुनिक शिक्षा और योग विज्ञान की प्रासंगिकता. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका।
- नागरथ, आर., एवं नागेंद्र, एच. आर. (2001) योग के चिकित्सात्मक अनुप्रयोग, स्वामी विवेकानंद योग अनुसंधान संस्थान, बंगलुरु।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 69-74

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Yoga as a Cultural Heritage : An Indian Perspective

Dr. Arpita Negi, Assistant Professor,
Sanjay Dutt, Ph.D. Research Scholar
Department of Yoga Studies HPU-Shimla-5

Abstract :

Yoga has existed for thousands of years as a practice of philosophy, ethics, spiritual discipline, and physical wellbeing. While many today know yoga as exercise, its deeper roots lie within Indian cultural heritage and traditional education systems. This research paper explores yoga as a cultural heritage, tracing its origins, philosophical foundations, educational transmission, contemporary adaptations, and its role in modern Indian society. Relying on authentic Indian sources and academic research, this work illustrates how yoga remains a living tradition that continues to influence education, health, culture, and identity in India and beyond.

1. Introduction :

Yoga is one of the oldest living traditions in the world, emerging from the Indian subcontinent as a synthesis of philosophy, ethics, and contemplative practice. The term yoga comes from the Sanskrit root yuj, meaning to bind or to unite — indicating the goal of uniting the individual self with universal consciousness. Although in contemporary societies yoga is often equated with physical postures (asanas), historically it has been a comprehensive system of life integrating values, spiritual practice, and self-study.

As a cultural heritage, yoga encompasses not only practices but also a worldview, moral systems, and an educational lineage that has been sustained through centuries. This paper examines the cultural significance of yoga, its philosophical bases, modes of transmission, and relevance in modern India.

2. Historical and Philosophical Foundations of Yoga

2.1 Ancient Indian Origins :

The earliest references to yoga are found in the Vedas, sacred Indian scriptures composed around 1500–1000 BCE. These texts introduce the concept of yuj as a means of aligning human consciousness with cosmic order. The Upanishads (c. 800–400 BCE) develop yoga as a method for

self-realization and liberation (moksha). Concepts such as meditation (dhyana), breath control (pranayama), and ethical self-discipline (yama and niyama) are articulated here as part of spiritual training.

2.2 Patanjali's Yoga Sutras :

The Yoga Sutras of Patanjali (c. 2nd century BCE) systematized yoga into an eight-limbed (ashtanga) path: ethical restraints (yama), personal observances (niyama), postures (asana), breathing regulation (pranayama), sense withdrawal (pratyahara), concentration (dharana), meditation (dhyana), and absorption (samadhi). This framework has shaped classical yoga education and remains central to traditional understanding .

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां भलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
यो ऽपाकरोत् तं प्रबर गुनीनां पतञ्जर्सि पतंजलिरागतो श्ऽस्मि।।

That is to say, I bow down with folded hands to Sage Patanjali, the greatest of all the sages, who uses Ayurveda to cleanse the body of impurities, yoga to cleanse mental fluctuations, and grammar to purify speech. This motto is now frequently uttered at the start of classes.

In the philosophy of Yoga, there are four chapters :

1. Samadhi Pada - 51 sutras
2. Sadhana Pada - 55 sutras
3. Vibhuti Pada - 55 sutras
4. Kaivalya Pada - 34 sutras

There are a total of one hundred ninety-five (195) sutras in all the chapters. Maharishi Patanjali begins his text with the name 'Atha Yoga Anushasanam'.

2.3 Philosophical Aims and Goals :

Yoga philosophy articulates goals such as self-control, clarity of mind, detachment from suffering, and eventual liberation from the cycle of birth and death. These teachings are embedded in Indian epics and scriptures such as the Bhagavad Gita, where yoga is described as a path to balanced action, devotion, and wisdom.

The knowledge of the Bhagavad Gita was imparted by Lord Krishna to his disciple Arjuna. Each of the eighteen chapters of the Gita is named after a distinct type of yoga.

"The Bhagavad Gita describes eighteen types of yoga, with each chapter associated with the term 'yoga,' such as Arjuna Vishad Yoga, Sankhya Yoga, Karma Yoga, Jnana Karma Yoga, Sannyasa Yoga, Karma Sannyasa Yoga, Atma Samyama Yoga, Jnana Vijnana Yoga, Akshara Brahma Yoga, Rajavidha Rajaguhya Yoga, Vibhuti Yoga, Vishwarupa Darshana Yoga, Bhakti Yoga, Kshetra Kshetragna Vibhaga Yoga, Purushottama Yoga, Daivasura Sampad Vibhaga Yoga, Shraddhatraya Vibhaga Yoga, and Moksha

Sannyasa Yoga."

Describing the tradition of Yoga from the Bhagavad Gita, Lord Krishna says :

इमं विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्यम्।
एवं परम्परा प्राप्तिमिम राजर्षयो विदः।
स मानेनेह महता योगो नष्टः परंतप।।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेज्ब्रवीत।।
स एवायं मया तेअघ योगः प्रोक्तः पुरातनः।।'

In other words, the instruction of this Yoga by Lord Krishna was originally given by God at the beginning of creation. God first imparted the knowledge of Yoga to the Sun god. After that, the Sun god taught it to the great sage Manu, Manu passed it to Ikshvaku, and from Ikshvaku, through the lineage of sages, the tradition of Yoga continued between the guru and disciple. Eventually, this knowledge was entirely lost. The same Yoga knowledge was imparted by Lord Krishna to Arjuna, which is now once again being revealed to you.

3. Yoga as Cultural Heritage

3.1 Concept of Cultural Heritage :

According to UNESCO, cultural heritage encompasses both tangible and intangible heritage — the latter including practices, expressions, and knowledge inherited from ancestors and passed to future generations (UNESCO, 2003). Yoga fits this definition as an intangible practice rich in tradition, values, and cultural meaning.

3.2 Intangible Cultural Heritage Recognition :

Yoga has been recognized globally for its cultural importance. In 2015, the United Nations adopted a resolution declaring 21 June as International Day of Yoga, highlighting yoga's contribution to health, peace, and cultural dialogue (United Nations, 2015). In the context of India, yoga embodies centuries of philosophical thought, medical understanding (Ayurveda), and educational tradition.

3.3 Cultural Identity and Continuity :

Yoga has remained a living tradition in Indian culture, continuously practiced and adapted through generations. Whether performed in ashrams, temples, schools, or homes, yoga retains its cultural resonance, connecting practitioners with historical roots and spiritual aims.

4. Traditional Methods of Yoga Education in India

4.1 Guru–Shishya Parampara :

A key feature of Indian cultural heritage is the guru–shishya (teacher–student) tradition, where knowledge is transmitted orally through devotion, practice, and personal instruction. The guru not only teaches techniques but shapes the student's character and worldview. Yoga education historically

occurred in this relational model — often in ashrams or hermitages.

4.2 Oral and Experiential Learning :

Traditional yoga education did not rely on textbooks. Instead, knowledge was transmitted through practice, memorization, recitation of scriptures, observance of ethical practices, and reflection under the supervision of a teacher. This mode of learning emphasized disciplined habit and deep internalization of values.

4.3 Integration with Daily Life :

In classical Indian culture, yoga was not a separate activity but integrated into daily living. Meditation, ethical conduct, breath control, and physical discipline were seen as part of a balanced life and spiritual development.

5. Yoga's Role in Indian Education Systems

5.1 Yoga in Schools and Universities :

Over the past few decades, yoga has been incorporated into formal education in India. The National Council of Educational Research and Training (NCERT) has published guidelines for yoga education in schools to promote physical, mental, and moral wellbeing (NCERT, 2020). Universities also offer diploma and degree programs in yoga philosophy, therapy, and teacher training.

5.2 National Education Policy and Yoga :

India's National Education Policy (NEP) 2020 emphasizes holistic education, including physical activity and value-based learning. Yoga is highlighted as a means to develop self-discipline, resilience, and mental health among students.

5.3 Teacher Training and Curriculum Development :

Institutions such as the Morarji Desai National Institute of Yoga (MDNIY) and various central and state universities provide structured yoga education, combining traditional knowledge with modern scientific research.

6. Contemporary Adaptations and Cultural Transmission

6.1 Global Spread of Yoga :

Indian teachers like Swami Vivekananda, Swami Sivananda, and Tirumalai Krishnamacharya played influential roles in bringing yoga to the West. Modern yoga styles such as Ashtanga, Iyengar, and Bikram have evolved, blending traditional teachings with contemporary needs.

6.2 Commercialization and Cultural Challenges :

The global yoga market often emphasizes physical postures and wellness at the expense of ethical and philosophical roots. Critics argue this can lead to cultural dilution or commodification of yoga (Jain, 2014). However, adaptations can also make yoga accessible to wider audiences.

6.3 Preservation of Tradition :

Scholars stress the importance of preserving the philosophical, ethical, and spiritual dimensions of yoga even as it adapts. Education that includes history, Sanskrit terminology, and classical texts supports cultural continuity.

7. Yoga, Health, and Social Well-Being

7.1 Mental Health and Stress Reduction :

Research indicates yoga reduces stress, anxiety, and depression, contributing to overall wellbeing. Scientific studies from Indian institutions have documented improvements in psychological health among students practicing yoga regularly.

7.2 Lifestyle Diseases :

Yoga's emphasis on breath control, physical discipline, and balance contributes to prevention and management of lifestyle disorders such as hypertension, diabetes, and obesity. These findings reinforce yoga's relevance in contemporary health education.

7.3 Community and Cultural Engagement :

Yoga festivals, community classes, and national initiatives such as International Day of Yoga foster social cohesion and promote cultural engagement among diverse populations.

8. Challenges in Preserving Yoga Heritage

8.1 Cultural Appropriation :

The global adoption of yoga raises questions about cultural appropriation—where elements of yoga are taken out of context, removing their cultural and ethical grounding.

8.2 Standardization vs. Diversity :

India's diverse yoga traditions—from Hatha, Raja, Tantra, to Bhakti yoga—pose challenges in creating standardized curricula that honor diversity while providing coherent education.

8.3 Balancing Tradition and Innovation :

Preserving cultural heritage requires balancing the authenticity of traditional teachings with modern scientific research and educational needs.

9. Future Directions

9.1 Research and Documentation :

Comprehensive documentation of classical texts, oral traditions, and historical practices is essential to safeguard yoga's heritage. Digital archives and academic collaborations can support this effort.

9.2 Interdisciplinary Education :

Integrating yoga into education not only as physical practice but as a philosophical and ethical

system can deepen cultural understanding. Collaboration between departments of philosophy, psychology, and physical education can enrich curricula.

9.3 Global Cultural Dialogue :

Yoga can serve as a platform for intercultural understanding, fostering global dialogue about shared values such as compassion, self-discipline, and wellbeing.

10. Conclusion :

Yoga is more than physical exercise — it is a living cultural heritage rooted in Indian philosophy, spirituality, and education. Its history spans thousands of years, and its teachings have been transmitted through disciplined tradition and evolving pedagogies. As yoga continues to spread globally, preserving its ethical, philosophical, and educational dimensions is essential. Through formal education, research, and cultural engagement, yoga remains a vital, living heritage that enriches individual and collective life.

References :

- Bryant, E. F. (2009). The Yoga Sutras of Patanjali: A New Edition, Translation, and Commentary. North Point Press.
- De Michelis, E. (2004). A History of Modern Yoga: Patanjali and Western Esotericism. Continuum.
- Feuerstein, G. (1998). The Yoga Tradition: Its History, Literature, Philosophy and Practice. Hohm Press.
- Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education, India.
- Jain, A. R. (2014). Selling Yoga: From Counterculture to Pop Culture. Oxford University Press.
- National Council of Educational Research and Training (NCERT). (2020). Yoga in School Curriculum. NCERT Publication.
- United Nations. (2015). Resolution Adopted by the General Assembly on International Day of Yoga.
- UNESCO. (2003). Convention for the Safeguarding of the Intangible Cultural Heritage. UNESCO.
- Woodyard, C. (2011). Exploring the therapeutic effects of yoga and its ability to increase quality of life. International Journal of Yoga, 4(2), 49–54.
- Shrivastav, Dr.Sureshchander.Page No.18 Patanjal Yoga Darshan

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 75-91

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विधवाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

देवेन्द्र कुमार

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रो. ध्रुव कुमार त्रिपाठी

विद्यांत हिन्दू पी.जी. कॉलेज, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

सार :-

भारतीय समाज में विधवा महिलाओं की स्थिति लंबे समय से सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं से प्रभावित रही है। पारंपरिक दृष्टिकोण में विधवापन को त्याग, शोक, संयम और सामाजिक दूरी से जोड़ा गया, जिसके कारण अनेक महिलाओं को पारिवारिक और सामुदायिक जीवन में असमान व्यवहार का सामना करना पड़ा। आधुनिक शिक्षा, शहरीकरण, महिला अधिकारों की चेतना और आर्थिक भागीदारी ने इस सोच में परिवर्तन अवश्य किया है, किंतु यह परिवर्तन अभी पूर्ण नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत शोधपत्र 'विधवाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' लखनऊ नगर की दो आवासीय कॉलोनियों के 25 उत्तरदाताओं पर आधारित है। अध्ययन में विधवाओं की सामाजिक भागीदारी, पुनर्विवाह की स्वीकृति, आर्थिक निर्णयों में सहभागिता, नौकरी करने के अधिकार और घर के महत्वपूर्ण मुद्दों में राय की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। निष्कर्ष संकेत करते हैं कि समाज में विधवाओं के प्रति दृष्टिकोण पहले से अधिक सकारात्मक हुआ है, फिर भी 'अशुभ' मानने जैसी धारणाएँ आंशिक रूप से मौजूद हैं।

मुख्य शब्द:- विधवा, सामाजिक दृष्टिकोण, भेदभाव, महिला सशक्तिकरण, सामाजिक परिवर्तन।

परिचय :

महिला भारतीय समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संरचना का महत्वपूर्ण आधार है। परिवार, श्रम, शिक्षा, मूल्य-निर्माण और सामाजिक निरंतरता में महिलाओं की भूमिका अत्यंत व्यापक है, फिर भी इतिहास में उनकी पहचान प्रायः पुरुष-केंद्रित संबंधों के माध्यम से निर्धारित की गई। भारतीय परंपरा में एक ओर

स्त्री को देवी के रूप में सम्मानित किया गया, वहीं दूसरी ओर विधवा स्त्री को अनेक सामाजिक प्रतिबंधों और प्रतीकात्मक नियंत्रणों के अधीन रखा गया। पति की मृत्यु के बाद स्त्री के जीवन में केवल व्यक्तिगत शोक ही नहीं आता, बल्कि उसकी सामाजिक स्थिति, पारिवारिक भूमिका, आर्थिक सुरक्षा और आत्मसम्मान भी प्रभावित होते हैं। विधवापन इसलिए केवल निजी घटना नहीं है, बल्कि एक सामाजिक तथ्य है, जो पितृसत्तात्मक संरचना, जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्रीय संस्कृति से जुड़ा हुआ है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से विधवा जीवन की समस्या दो स्तरों पर समझी जा सकती है। पहला, परिवार और समुदाय द्वारा निर्मित अपेक्षाएँ, जिनमें पहनावे, खान-पान, उत्सवों में भागीदारी, पुनर्विवाह और संपत्ति संबंधी अधिकार शामिल हैं। दूसरा, विधवा महिला की अपनी agency, अर्थात वह अपनी इच्छा, रोजगार, बच्चों की देखभाल, आर्थिक निर्णय और सामाजिक संबंधों को किस सीमा तक नियंत्रित कर पाती है। पवार (2019) ने स्पष्ट किया है कि भारतीय समाज में विधवाओं की स्थिति पितृसत्ता, जाति और धार्मिक मान्यताओं से गहराई से प्रभावित होती है। यादव (2024) ने हिंदू पारिवारिक संरचना में विधवा जीवन को त्याग और संयम के रूप में प्रस्तुत करने वाली परंपराओं की आलोचनात्मक समीक्षा की है। अटवाल (2023) ने विधवापन को सामाजिक-आर्थिक निर्भरता और अधिकार-वंचना से जोड़ते हुए बताया कि संपत्ति और पुनर्विवाह से संबंधित सवाल आज भी प्रासंगिक हैं। बरोट और परमार (2024) के अनुसार विधवाओं को सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक असुरक्षा और मानसिक तनाव का संयुक्त सामना करना पड़ता है। मैनोरमा देवी (2025) ने वृद्ध विधवाओं के संदर्भ में भावनात्मक उपेक्षा, स्वास्थ्य संबंधी असुरक्षा और पारिवारिक निर्भरता को महत्वपूर्ण समस्या माना है। इन अध्ययनों से स्पष्ट है कि कानून और योजनाएँ मौजूद होने के बावजूद सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव धीमा और असमान है। प्रस्तुत अध्ययन इसी परिवर्तनशील सामाजिक संदर्भ को स्थानीय स्तर पर समझने का प्रयास करता है।

अध्ययन की प्रासंगिकता :

यह अध्ययन इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि विधवा महिलाओं के प्रति समाज का व्यवहार आज भी समान रूप से प्रगतिशील नहीं है। शिक्षा, आय और शहरी जीवन के विस्तार से सोच में सुधार हुआ है, परंतु अनेक परिवारों में विधवा महिला को शुभ-अशुभ, पुनर्विवाह, नौकरी, संपत्ति और सामाजिक भागीदारी जैसे मुद्दों पर अब भी सीमित स्वीकृति मिलती है। यह शोध स्थानीय स्तर पर यह समझने में सहायक है कि आधुनिकता के बावजूद कौन-सी परंपराएँ बनी हुई हैं और किन क्षेत्रों में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई दे रहा है।

अध्ययन का उद्देश्य :

1. विधवा महिलाओं के प्रति पारंपरिक भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और कलंक की धारणा तथा परिवार के बदलते नजरिये का अध्ययन करना।
2. विधवा महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और निर्णयात्मक पक्षों का विश्लेषण करना।

अनुसंधान पद्धति :

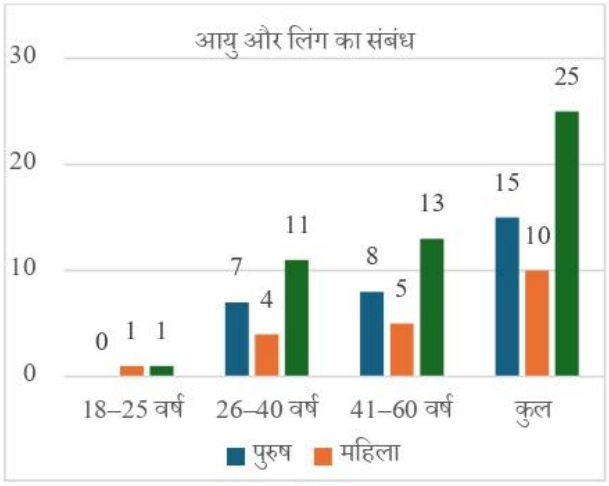
प्रस्तुत अध्ययन में अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प का उपयोग किया गया। अध्ययन का क्षेत्र लखनऊ नगर की दो आवासीय कॉलोनियाँ रहीं। नमूने में ऐसी विधवा महिलाएँ और उनके परिवारों के सदस्य शामिल किए गए जिनके घर में विधवा महिला रहती है। विश्लेषण की प्रमुख इकाई 25 से 60 वर्ष आयु-वर्ग की विधवा महिलाएँ और उनसे संबंधित पारिवारिक दृष्टिकोण रहे। नमूना आकार 25 रखा गया तथा उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का प्रयोग किया गया। प्राथमिक आँकड़े साक्षात्कार अनुसूची और संरचित प्रश्नों के माध्यम से संकलित किए गए। द्वितीयक स्रोतों में शोधपत्र, पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ और इंटरनेट आधारित सामग्री शामिल की गई। प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण SPSS के माध्यम से किया गया तथा क्रॉस-टैबुलेशन, सारणी और चार्ट के रूप में परिणाम प्रस्तुत किए गए।

परिणाम एवं चर्चा :

इस भाग में अध्ययन से प्राप्त अनुभवजन्य निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं। सारणियाँ और चार्ट आयु, लिंग, शिक्षा, आय तथा विधवाओं के प्रति सामाजिक व्यवहार के बीच संबंध को स्पष्ट करते हैं। मुख्य ध्यान सामाजिक भागीदारी, शुभ-अशुभ की धारणा, पुनर्विवाह, आर्थिक निर्णय, कार्य-स्वतंत्रता और घरेलू निर्णयों में राय पर केंद्रित है।

सारणी:-1 आयु और लिंग का संबंध

आयु और लिंग का संबंध				
लिंग	18–25 वर्ष	26–40 वर्ष	41–60 वर्ष	**कुल**
पुरुष	0	7	8	**15**
महिला	1	4	5	**10**
कुल	**1**	**11**	**13**	**25**



चार्ट:-1

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 1 से स्पष्ट है कि कुल 25 उत्तरदाताओं में 15 पुरुष और 10 महिलाएँ हैं। आयु-वितरण में 26-40 तथा 41-60 वर्ष समूह प्रमुख हैं, जबकि 18-25 वर्ष में केवल एक उत्तरदाता है। इससे स्पष्ट होता है कि अध्ययन में मध्यम और परिपक्व आयु-वर्ग का प्रतिनिधित्व अधिक है। यह वर्ग पारिवारिक निर्णयों और सामाजिक मान्यताओं को समझने के लिए अधिक उपयुक्त माना जा सकता है।

सारणी:- 2 **लिंग, शैक्षिक स्तर एवं औसत मासिक आय**

शैक्षिक एवं लिंग		औसत मासिक आय				कुल
		1-25000	25000-50000	50000-150000	150000 से अधिक	
प्राथमिक	महिला	2	0	0	0	**2**
	पुरुष	0	0	0	0	**0**
	कुल	2	0	0	0	**2**
माध्यमिक	पुरुष	1	1	0	0	**2**
	महिला	1	0	0	0	**1**
	कुल	2	1	0	0	**3**
स्नातक	पुरुष	1	2	5	1	**9**
	महिला	1	1	0	1	**3**
	कुल	2	3	5	2	**12**
स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	पुरुष	1	1	2	0	**4**
	महिला	1	3	0	0	**4**
	कुल	2	4	2	0	**8**
	पुरुष	3	4	7	1	**15**
	महिला	5	4	0	1	**10**
	कुल	**8**	**8**	**7**	**2**	**25**

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 2 शिक्षा, लिंग और औसत मासिक आय के संबंध को दर्शाती है। प्राथमिक शिक्षा वाली महिलाएँ निम्न आय-समूह में केंद्रित हैं, जबकि स्नातक पुरुषों की उपस्थिति मध्यम और उच्च आय-समूहों में अधिक है। स्नातकोत्तर समूह में भी आय का फैलाव दिखाई देता है। इससे संकेत मिलता है कि शिक्षा और आय के बीच संबंध मौजूद है, परंतु लैंगिक अंतर अब भी स्पष्ट है।

सारणी :-3 विधवा महिलाओं को सामाजिक कार्यक्रमों (शादी/त्योहार) में समान भागीदारी

औसत मासिक आय	शैक्षिक स्तर	हाँ	नहीं	कभी-कभी	**कुल**
1-25000	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	1	1	0	**2**
	स्नातक	1	0	1	**2**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	2	0	0	**2**
	कुल	**5**	**2**	**1**	**8**
25000-50000	माध्यमिक	0	1	0	**1**
	स्नातक	3	0	0	**3**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	0	4	**4**
	कुल	**3**	**1**	**4**	**8**
50000-150000	स्नातक	4	0	1	**5**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	1	0	**2**
	कुल	**5**	**1**	**1**	**7**
150000 से अधिक	स्नातक	2	0	0	**2**
	कुल	**2**	**0**	**0**	**2**
Total	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	1	2	0	**3**
	स्नातक	10	0	2	**12**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	1	4	**8**
	कुल	**15**	**4**	**6**	**25**

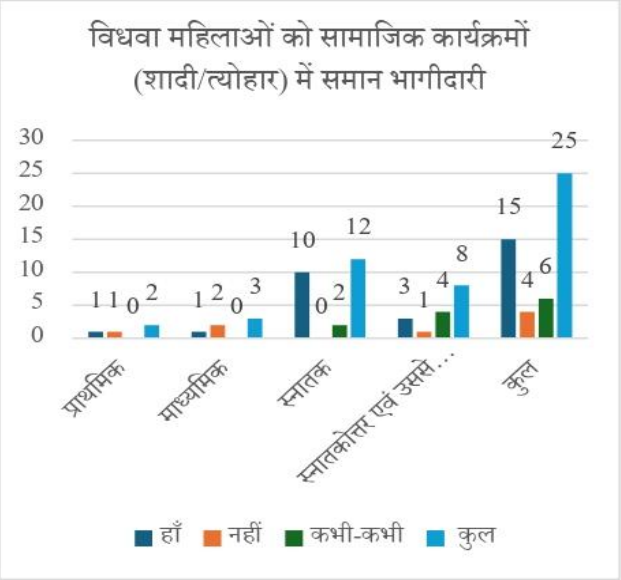
(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 3 से पता चलता है कि सामाजिक कार्यक्रमों में विधवाओं की समान भागीदारी के प्रति 15 उत्तरदाताओं ने 'हाँ', 4 ने 'नहीं' और 6 ने 'कभी-कभी' उत्तर दिया। स्नातक और उच्च आय समूहों में स्वीकृति अधिक है, जबकि निम्न आय और कम शिक्षा समूहों में दुविधा दिखाई देती है।

सारणी:-4 **विधवा महिलाओं को सामाजिक कार्यक्रमों (शादी/त्योहार) में समान भागीदारी**

शैक्षिक स्तर	हाँ	नहीं	कभी-कभी	**कुल**
प्राथमिक	1	1	0	**2**
माध्यमिक	1	2	0	**3**
स्नातक	10	0	2	**12**
स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	1	4	**8**
कुल	**15**	**4**	**6**	**25**

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)



चार्ट-2

सारणी 4 शैक्षिक स्तर के आधार पर भागीदारी की स्वीकृति को स्पष्ट करती है। स्नातक स्तर पर 12 में से 10 उत्तरदाताओं ने 'हाँ' कहा, जिससे शिक्षा के साथ सकारात्मक दृष्टिकोण मजबूत होता दिखता है। स्नातकोत्तर समूह में 'कभी-कभी' प्रतिक्रियाएँ अधिक हैं, जो विचारशील किंतु परिस्थितिजन्य स्वीकृति का संकेत देती हैं।

सारणी :- 5 **समाज में विधवा महिलाओं को 'अशुभ' मानने की प्रथा**

समाज में विधवा महिलाओं को 'अशुभ' मानने की प्रथा					
औसत मासिक आय	शैक्षिक स्तर	हाँ	नहीं	कभी-कभी	**कुल**
1-25000	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	1	1	0	**2**
	स्नातक	0	0	2	**2**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	0	2	**2**
	कुल	**2**	**2**	**4**	**8**
25000-50000	माध्यमिक	0	0	1	**1**
	स्नातक	0	1	2	**3**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	1	0	**4**
	कुल	**3**	**2**	**3**	**8**
50000-150000	स्नातक	0	2	3	**5**

	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	0	2	**2**
	कुल	**0**	**2**	**5**	**7**
150000 से अधिक	स्नातक	1	1	0	**2**
	कुल	**1**	**1**	**0**	**2**
	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	1	1	1	**3**
	स्नातक	1	4	7	**12**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	1	4	**8**
	कुल	**6**	**7**	**12**	**25**

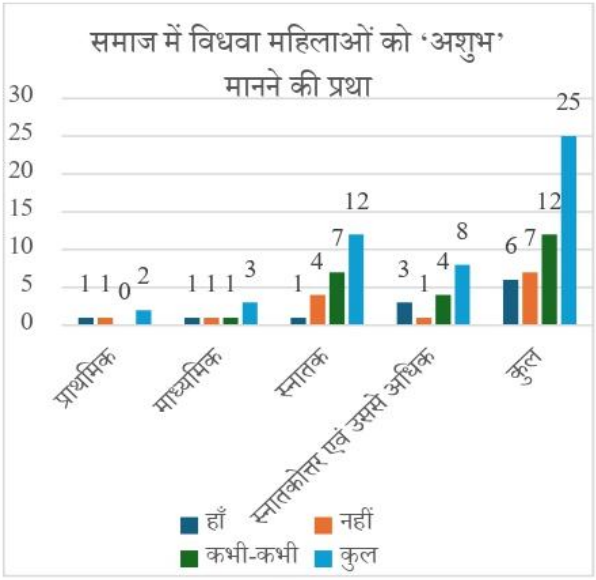
(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 5 में विधवा महिलाओं को 'अशुभ' मानने की प्रथा पर मिश्रित प्रतिक्रिया मिली। कुल 6 उत्तरदाता इस धारणा को स्वीकारते हैं, 7 अस्वीकारते हैं और 12 इसे 'कभी-कभी' मानते हैं। यह परिणाम बताता है कि ऐसी मान्यताएँ अब कमजोर हो रही हैं, लेकिन सामाजिक व्यवहार में पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं।

सारणी **:- 6** समाज में विधवा महिलाओं को 'अशुभ' मानने की प्रथा

शैक्षिक स्तर	हाँ	नहीं	कभी-कभी	कुल
प्राथमिक	1	1	0	2
माध्यमिक	1	1	1	3
स्नातक	1	4	7	12
स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	1	4	8
कुल	6	7	12	25

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)



चार्ट:-3

सारणी 6 के अनुसार शिक्षा बढ़ने पर 'अशुभ' की धारणा के प्रति प्रतिक्रियाएँ अधिक जटिल हो जाती हैं। स्नातक स्तर पर स्पष्ट स्वीकृति कम है, पर 'कभी-कभी' उत्तर अधिक हैं। इसका अर्थ है कि शिक्षित वर्ग भी परंपरा से पूरी तरह मुक्त नहीं है, बल्कि कई बार सामाजिक परिस्थिति के अनुसार व्यवहार करता है।

सारणी :- 7 विधवा महिलाओं के प्रति समाज की सोच आज पहले से बेहतर हुई है

औसत मासिक आय	शैक्षिक स्तर	बहुत अधिक	कुछ हद तक	बिलकुल नहीं	**कुल**
1-25000	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	1	1	0	**2**
	स्नातक	1	1	0	**2**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	2	0	**2**
	कुल	**3**	**5**	**0**	**8**
25000-50000	माध्यमिक	0	1	0	**1**
	स्नातक	2	1	0	**3**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	4	0	**4**
	कुल	**2**	**6**	**0**	**8**
50000-150000	स्नातक	5	0	0	**5**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	1	0	**2**
	कुल	6	1	0	**7**
150000 से अधिक	स्नातक	1	1	0	**2**
	कुल	**1**	**1**	**0**	**2**
कुल	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	1	2	0	**3**
	स्नातक	9	3	0	**12**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	7	0	**8**
	कुल	**12**	**13**	**0**	**25**

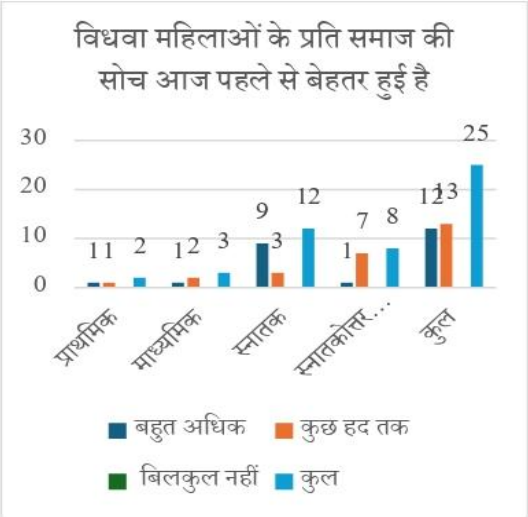
(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 7 से स्पष्ट है कि सभी उत्तरदाता मानते हैं कि विधवाओं के प्रति समाज की सोच पहले से बेहतर हुई है। 12 ने 'बहुत अधिक' और 13 ने 'कुछ हद तक' कहा। किसी ने 'बिलकुल नहीं' नहीं चुना। यह परिणाम सामाजिक परिवर्तन की दिशा को सकारात्मक बताता है, भले ही उसकी गति अलग-अलग वर्गों में भिन्न हो।

सारणी:-8 विधवा महिलाओं के प्रति समाज की सोच आज पहले से बेहतर हुई है

शैक्षिक स्तर	बहुत अधिक	कुछ हद तक	बिल कुल नहीं	**कुल**
प्राथमिक	1	1	0	**2**
माध्यमिक	1	2	0	**3**
स्नातक	9	3	0	**12**
स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	7	0	**8**
कुल	**12**	**13**	**0**	**25**

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)



चार्ट:-4

सारणी 8 में स्नातक समूह में परिवर्तन को 'बहुत अधिक' मानने वाले उत्तरदाता अधिक हैं, जबकि स्नातकोत्तर समूह में 'कुछ हद तक' विकल्प अधिक चुना गया। इससे स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा वाले लोग परिवर्तन को स्वीकार करते हैं, परंतु उसे पूर्ण या पर्याप्त नहीं मानते।

सारणी :- 9 समाज सामान्यतः विधवा पुनर्विवाह को स्वीकार करता है

औसत मासिक आय	शैक्षिक स्तर	हाँ, पूरी तरह	कुछ हद तक	बिल्कुल नहीं	**कुल**
1-25000	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	0	2	0	**2**
	स्नातक	1	1	0	**2**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	2	0	**2**
	कुल	**2**	**6**	**0**	**8**
25000-50000	माध्यमिक	0	1	0	**1**
	स्नातक	1	2	0	**3**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	4	0	**4**
	कुल	**1**	**7**	**0**	**8**
50000-150000	स्नातक	2	2	1	**5**
	स्नातकोत्तर एवं उससे	1	1	0	**2**

	अधिक				
	कुल	**3**	**3**	**1**	**7**
150000 से अधिक	स्नातक	0	1	1	**2**
	कुल	**0**	**1**	**1**	**2**
Total	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	0	3	0	**3**
	स्नातक	4	6	2	**12**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	7	0	**8**
	कुल	**6**	**17**	**2**	**25**

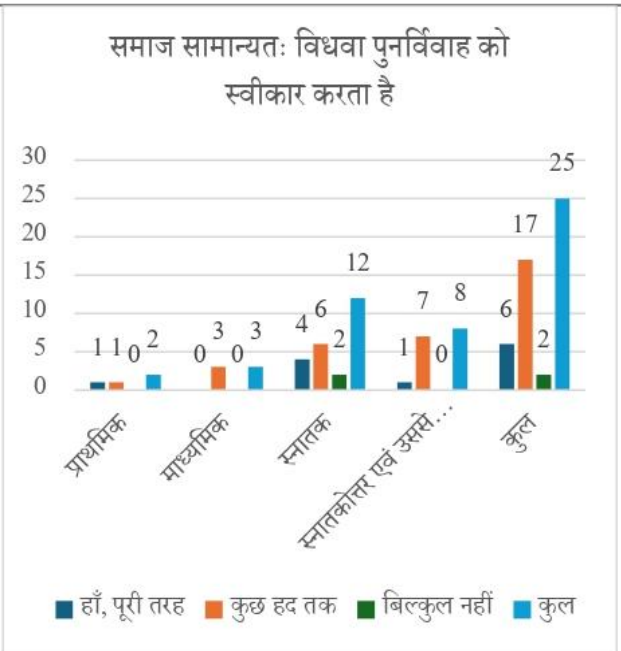
(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 9 विधवा पुनर्विवाह की सामाजिक स्वीकृति को दर्शाती है। केवल 6 उत्तरदाता पूर्ण स्वीकृति देते हैं, 17 आंशिक स्वीकृति व्यक्त करते हैं और 2 अस्वीकार करते हैं। इससे पता चलता है कि पुनर्विवाह के प्रति खुलापन बढ़ा है, लेकिन सामाजिक संकोच और परंपरागत दबाव अब भी विद्यमान हैं।

सारणी:-10 समाज सामान्यतः विधवा पुनर्विवाह को स्वीकार करता है

शैक्षिक स्तर	हाँ, पूरी तरह	कुछ हद तक	बिल्कुल नहीं	**कुल**
प्राथमिक	1	1	0	**2**
माध्यमिक	0	3	0	**3**
स्नातक	4	6	2	**12**
स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	7	0	**8**
कुल	**6**	**17**	**2**	**25**

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)



चार्ट:-5

सारणी 10 के अनुसार शैक्षिक स्तर बढ़ने पर पुनर्विवाह की पूर्ण अस्वीकृति घटती है। स्नातकोत्तर समूह में किसी ने भी 'बिल्कुल नहीं' नहीं कहा, पर अधिकतर ने 'कुछ हद तक' को चुना। यह दर्शाता है कि समर्थन मौजूद है, किंतु वह अभी भी शर्तों और सामाजिक स्वीकार्यता से जुड़ा हुआ है।

सारणी **:- 11** विधवा महिलाओं को परिवार के आर्थिक निर्णयों (खर्च, बचत, निवेश) में शामिल किया जाता है

औसत मासिक आय	शैक्षिक स्तर	हमेशा	कभी-कभी	कभी नहीं	**कुल**
1-25000	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	2	0	0	**2**
	स्नातक	1	1	0	**2**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	2	0	**2**
	कुल	**4**	**4**	**0**	**8**
25000-50000	माध्यमिक	1	0	0	**1**
	स्नातक	2	1	0	**3**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	4	0	**4**
	कुल	**3**	**5**	**0**	**8**
50000-150000	स्नातक	4	1	0	**5**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	2	0	0	**2**
	कुल	**6**	**1**	**0**	**7**
150000 से अधिक	स्नातक	2	0	0	**2**
	कुल	**2**	**0**	**0**	**2**
Total	प्राथमिक	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	3	0	0	**3**
	स्नातक	9	3	0	**12**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	2	6	0	**8**
	कुल	**15**	**10**	**0**	**25**

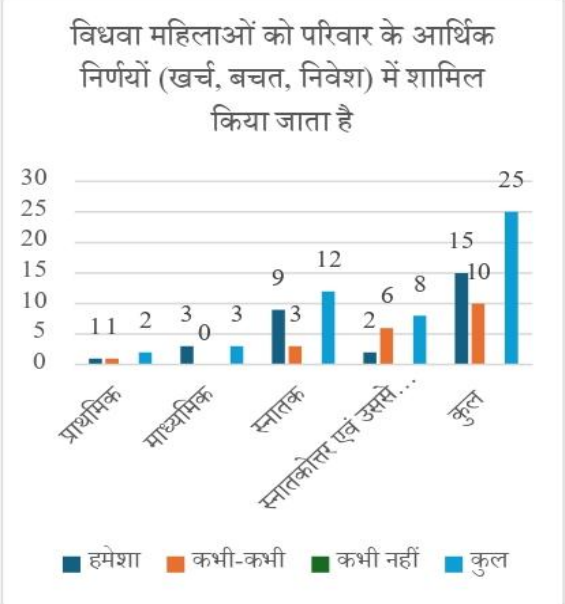
(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 11 परिवार के आर्थिक निर्णयों में विधवाओं की भागीदारी को दर्शाती है। कुल 15 उत्तरदाताओं ने 'हमेशा' और 10 ने 'कभी-कभी' कहा, जबकि 'कभी नहीं' का कोई उत्तर नहीं है। यह संकेत करता है कि विधवा महिलाओं को खर्च, बचत और निवेश जैसे निर्णयों में कम से कम कुछ भूमिका मिल रही है।

सारणी :- 12 विधवा महिलाओं को परिवार के आर्थिक निर्णयों (खर्च, बचत, निवेश) में शामिल किया जाता है

शैक्षिक स्तर	हमेशा	कभी-कभी	कभी नहीं	**कुल**
प्राथमिक	1	1	0	**2**
माध्यमिक	3	0	0	**3**
स्नातक	9	3	0	**12**
स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	2	6	0	**8**
कुल	**15**	**10**	**0**	**25**

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)



चार्ट:-6

सारणी 12 में शिक्षा के आधार पर आर्थिक निर्णयों में भागीदारी दिखाई गई है। स्नातक स्तर पर 'हमेशा' प्रतिक्रियाएँ अधिक हैं, जबकि स्नातकोत्तर समूह में 'कभी-कभी' अधिक है। इसका अर्थ है कि आर्थिक भागीदारी मौजूद है, लेकिन हर परिवार में उसकी नियमितता समान नहीं है।

सारणी :- 13 विधवा महिलाओं को अपनी इच्छा से घर के बाहर नौकरी/काम करने का निर्णय लेने का अधिकार

औसत मासिक आय	शैक्षिक स्तर	पूरा अधिकार	आंशिक अधिकार	सलाह लेकर ही निर्णय	बिल्कुल अधिकार नहीं	**कुल**
1-25000	प्राथमिक	0	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	2	0	0	0	**2**
	स्नातक	1	0	1	0	**2**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	0	1	0	**2**
	कुल	**4**	**1**	**3**	**0**	**8**
25000-50000	माध्यमिक	0	0	1	0	**1**
	स्नातक	1	1	1	0	**3**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	1	2	0	**4**

	कुल	**2**	**2**	**4**	**0**	**8**
50000-150000	स्नातक	3	0	2	0	**5**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	1	0	0	**2**
	कुल	**4**	**1**	**2**	**0**	**7**
150000 से अधिक	स्नातक	1	1	0	0	**2**
	कुल	**1**	**1**	**0**	**0**	**2**
Total	प्राथमिक	0	1	1	0	**2**
	माध्यमिक	2	0	1	0	**3**
	स्नातक	6	2	4	0	**12**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	2	3	0	**8**
	कुल	**11**	**5**	**9**	**0**	**25**

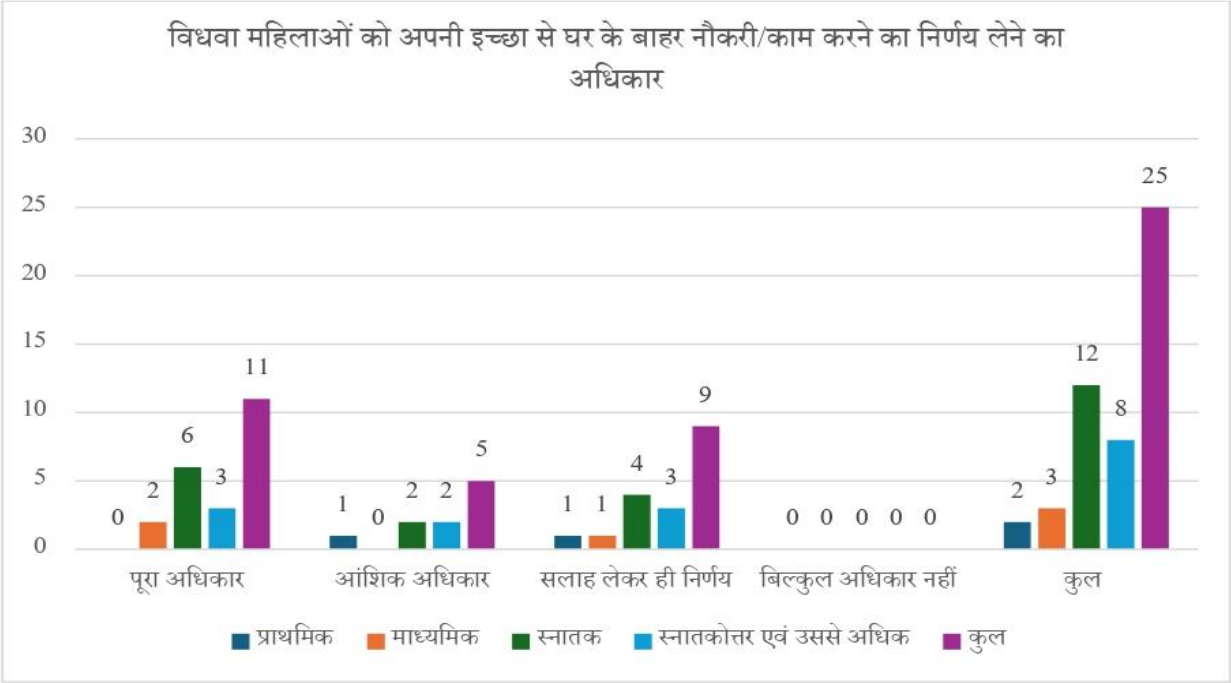
(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 13 के अनुसार नौकरी या काम करने के निर्णय में 11 उत्तरदाताओं ने 'पूरा अधिकार', 5 ने 'आंशिक अधिकार' और 9 ने 'सलाह लेकर निर्णय' कहा। किसी ने 'बिल्कुल अधिकार नहीं' नहीं चुना। यह परिणाम स्वायत्तता के विस्तार को दर्शाता है, साथ ही पारिवारिक परामर्श की निरंतर भूमिका भी बताता है।

सारणी **:- 14** विधवा महिलाओं को अपनी इच्छा से घर के बाहर नौकरी/काम करने का निर्णय लेने का अधिकार

शैक्षिक स्तर	पूरा अधिकार	आंशिक अधिकार	सलाह लेकर ही निर्णय	बिल्कुल अधिकार नहीं	**कुल**
प्राथमिक	0	1	1	0	**2**
माध्यमिक	2	0	1	0	**3**
स्नातक	6	2	4	0	**12**
स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	2	3	0	**8**
कुल	**11**	**5**	**9**	**0**	**25**

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)



सारणी 14 शैक्षिक स्तर के अनुसार कार्य-निर्णय की स्वतंत्रता को स्पष्ट करती है। स्नातक और स्नातकोत्तर समूहों में पूरा अधिकार, आंशिक अधिकार और सलाह लेकर निर्णय तीनों प्रकार की प्रतिक्रियाएँ मिलती हैं। इससे पता चलता है कि शिक्षा से अधिकार-बोध बढ़ता है, पर परिवार-आधारित निर्णय संरचना पूरी तरह समाप्त नहीं होती।

सारणी :- **15** विधवा महिलाओं की घर के महत्वपूर्ण मुद्दों (संपत्ति, रिश्तेदारी, विवाद समाधान) में राय

औसत मासिक आय	शैक्षिक स्तर	हमेशा	कभी-कभी	बहुत कम	बिल्कुल नहीं	**कुल**
1-25000	प्राथमिक	0	2	0	0	**2**
	माध्यमिक	2	0	0	0	**2**
	स्नातक	2	0	0	0	**2**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	1	1	0	0	**2**
	कुल	**5**	**3**	**0**	**0**	**8**
25000-50000	माध्यमिक	1	0	0	0	**1**
	स्नातक	3	0	0	0	**3**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	0	3	1	0	**4**
	कुल	**4**	**3**	**1**	**0**	**8**
50000-150000	स्नातक	5	0	0	0	**5**

	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	2	0	0	0	**2**
	कुल	**7**	**0**	**0**	**0**	**7**
150000 से अधिक	स्नातक	2	0	0	0	**2**
	कुल	**2**	**0**	**0**	**0**	**2**
	प्राथमिक	0	2	0	0	**2**
	माध्यमिक	3	0	0	0	**3**
	स्नातक	12	0	0	0	**12**
	स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	4	1	0	**8**
	कुल	**18**	**6**	**1**	**0**	**25**

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

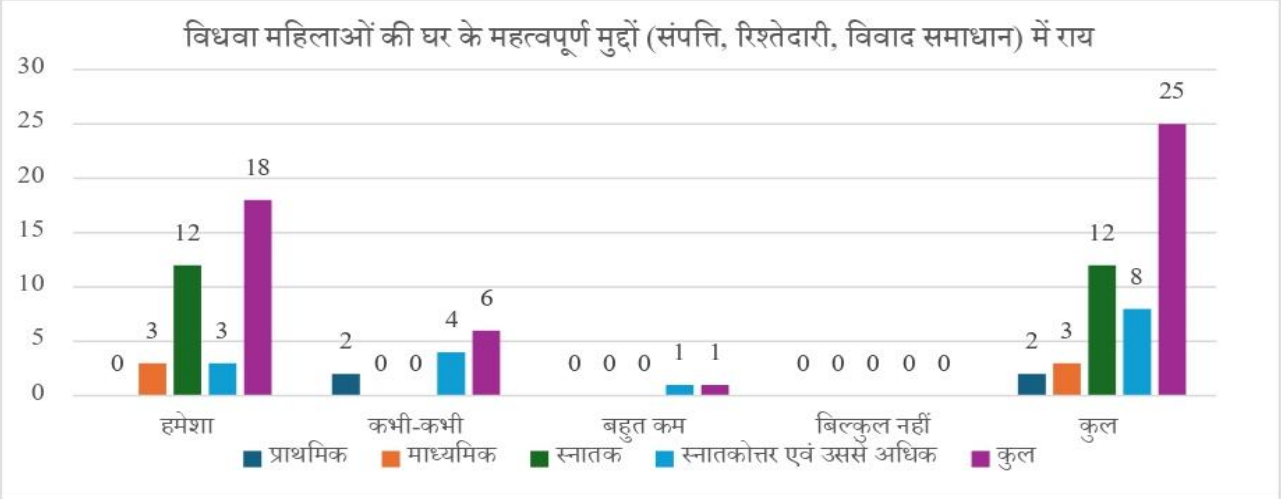
सारणी 15 से स्पष्ट है कि संपत्ति, रिश्तेदारी और विवाद समाधान जैसे महत्वपूर्ण घरेलू मुद्दों में विधवाओं की राय को अधिकतर महत्व दिया जाता है। 18 उत्तरदाताओं ने 'हमेशा', 6 ने 'कभी-कभी' और केवल 1 ने 'बहुत कम' कहा। यह विधवाओं की पारिवारिक स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन का संकेत है।

सारणी **:- 16** विधवा महिलाओं की घर के महत्वपूर्ण मुद्दों (संपत्ति, रिश्तेदारी, विवाद समाधान) में राय

शैक्षिक स्तर	हमेशा	कभी-कभी	बहुत कम	बिल्कुल नहीं	**कुल**
प्राथमिक	0	2	0	0	**2**
माध्यमिक	3	0	0	0	**3**
स्नातक	12	0	0	0	**12**
स्नातकोत्तर एवं उससे अधिक	3	4	1	0	**8**
कुल	**18**	**6**	**1**	**0**	**25**

(स्तोत्र:- प्राथमिक डाटा)

सारणी 16 में स्नातक समूह के सभी उत्तरदाताओं ने 'हमेशा' विकल्प चुना, जबकि स्नातकोत्तर समूह में प्रतिक्रियाएँ विभाजित हैं। इससे स्पष्ट होता है कि घर के महत्वपूर्ण मुद्दों में विधवा महिलाओं की राय लेने की प्रवृत्ति बढ़ी है, परंतु यह शिक्षा, परिवार और परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है।



चार्ट:-8

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि विधवा महिलाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण संक्रमण की अवस्था में है। परंपरागत मान्यताओं का प्रभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है, पर शिक्षा, शहरी जीवन, आर्थिक सुधार और महिला सशक्तिकरण ने समाज की सोच को अधिक संवेदनशील बनाया है। अध्ययन में अधिकांश उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि विधवाओं को सामाजिक कार्यक्रमों में भागीदारी, आर्थिक निर्णयों में स्थान और घर के महत्वपूर्ण मुद्दों पर राय देने का अवसर मिलना चाहिए। पुनर्विवाह के प्रति पूर्ण स्वीकृति अभी सीमित है, किंतु आंशिक स्वीकृति व्यापक रूप से दिखाई देती है। 'अशुभ' मानने की धारणा भी अब अधिकतर निश्चित विश्वास के रूप में नहीं, बल्कि परिस्थितिजन्य सामाजिक व्यवहार के रूप में दिखाई देती है।

अध्ययन यह भी बताता है कि विधवा महिला की स्थिति केवल उसके वैवाहिक दर्जे से तय नहीं होती, बल्कि शिक्षा, आय, परिवार की सोच और शहरी सामाजिक वातावरण से भी प्रभावित होती है। जहाँ उच्च शिक्षा और बेहतर आय है, वहाँ सम्मान और सहभागिता अधिक दिखाई देती है। फिर भी विधवाओं की स्वायत्तता को मजबूत करने के लिए सामाजिक जागरूकता, आर्थिक अवसर, संपत्ति अधिकारों का क्रियान्वयन और परामर्श सेवाएँ आवश्यक हैं। विधवापन को दया या कलंक की दृष्टि से नहीं, बल्कि गरिमा, अधिकार और समान अवसर के प्रश्न के रूप में समझना चाहिए।

सुझाव :

नीति एवं कानूनी स्तर पर :

- विधवा पेंशन, आवास, स्वास्थ्य बीमा, भरण-पोषण और संपत्ति अधिकार से जुड़े कानूनों तथा योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। स्थानीय प्रशासन, महिला कल्याण विभाग और समुदाय-स्तरीय संस्थाएँ पात्र विधवाओं की पहचान कर उन्हें योजनाओं से जोड़ें।

आर्थिक सशक्तिकरण और रोजगार :

- विधवा महिलाओं के लिए कौशल-विकास, स्वरोजगार, सूक्ष्म वित्त, स्वयं सहायता समूह और घरेलू उद्यमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। आर्थिक स्वावलंबन से परिवार और समाज में उनकी निर्णयात्मक स्थिति मजबूत होती है।

सामाजिक दृष्टिकोण और जन-जागरूकता :

- विधवा महिलाओं को 'अशुभ' या बोझ मानने वाली धारणाओं को चुनौती देने के लिए विद्यालयों, समुदायों, मीडिया और धार्मिक-सांस्कृतिक नेतृत्व के माध्यम से संवेदनशीलता-आधारित जागरूकता अभियान चलाए जाने चाहिए। सामाजिक सम्मान और समान भागीदारी को परिवार से ही बढ़ावा मिलना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. अटवाल, ज्योति (2023). भारत में विधवापन की सामाजिक-आर्थिक संरचना: अतीत एवं वर्तमान. *करेंट रिसर्च जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज़ एंड ह्यूमैनिटीज़*, 6(1), 54–65. https://journalofsocialsciences.org/pdf/vol6no1/CRJSSH_Vol06_No1_p_54-65.pdf

2. पवार, योगिता रानी (2019). भारतीय समाज में विधवा महिलाओं की स्थिति का समाजशास्त्रीय विवेचन. *इंस्पाइरा – जर्नल ऑफ मॉडर्न मैनेजमेंट एंड एंटरप्रन्योरशिप*, 9(3), 159–162।

3. यादव, वंदना (2024). हिंदू पारिवारिक संरचना और विधवा जीवन का स्वरूप. *अपनी माटी (यूजीसी केयर जर्नल)*, अंक 53, जुलाई–सितम्बर।

4. बरोट, टी., एवं परमार, सी. (2024). विधवा महिलाओं की ज़िम्मेदारियाँ और चुनौतियाँ: एक सामाजिक कार्य अध्ययन. *शोधकोष: जर्नल ऑफ विज़ुअल एंड परफ़ॉर्मिंग आर्ट्स*, 5(7), 166–174. https://doi.org/10.29121/shodhkosh.v5.i7.2024.2218

5. देवी, मैनोरमा. (2025). *भारत में वृद्ध विधवाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति: हिमाचल प्रदेश के मंडी ज़िले का अध्ययन*.

6. दवे, रजल (2020), "विधवापन: भारत में विधवाओं द्वारा सामना की जाने वाली समस्याएँ और चुनौतियाँ", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एडवांस्ड रिसर्च इन कॉमर्स मैनेजमेंट एंड सोशल साइंस, खंड 03, संख्या 04, पृष्ठ 34–38.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 92-97

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Railway Journey : The Industrialisation of Time and Space in The 19th Century

SANJAY KUMAR

Research Scholar, Department of History, University of Delhi.

Abstract :

The Railway Journey: The Industrialisation of Time and Space in the Nineteenth Century, Wolfgang Schivelbusch presents a new and original interpretation of railway history, rather than simply glorifying traditional narratives and technological achievements. Instead of viewing rail travel solely as a product of industrial development, it frames it within the broader cultural and intellectual transformations of the nineteenth century. This study examines how the railway transformed urban life, time, space, speed, and human perception. The book argues that it standardised concepts of time and altered daily life. This article evaluates the academic relevance, theoretical framework, and historical significance of Schivelbusch's work. It also critiques the book's Eurocentric perspective and highlights the author's selective use of sources. The article argues that *The Railway Journey* remains a foundational text for understanding the cultural dimensions of industrialisation and the modern experience of time and space.

Introduction :

The book by Wolfgang Schivelbusch, entitled The Railway Journey: The Industrialisation of Time and Space in the Nineteenth Century, presents the view that railways have not only provided transportation but also introduced new energy and consciousness. The book examines how the railways gave momentum to industrial development and simultaneously transformed human perceptions and biological psychology. Along with changes in the structure of time, place and society, significant changes have also been recorded at the psychological level. The advent of railways has reduced spatial distances, modernisation has been accelerated, and changes in social structure have also been recorded.[1]

The book explores how a new invention not only changes geographical and external equations but also brings about an even greater change at the psychological level. Schivelbusch presents an argument challenging an established notion that modernisation is merely a symbol of the advancement

of facilities and resources.[2] Modernisation also creates imbalance, alienation, and sensory overload, giving rise to capitalist and technological innovations. This has led to changes in social structures, cultural consciousness, and economic relations.[3]

The advent of mechanical power brought about rapid changes. While earlier modes of transport connected humans to nature, the mechanisation of transportation has led to increased isolation. The ease of railway travel masks the violence inherent in industrialisation. The railway is not an isolated system; it is part of a larger, interconnected system. The success of the railway depends on the entire system working as a single unit. This system relies on the collective success of railway wheels, tracks, engines, and telegraphs, all interconnected. For a railway journey to be successful, all these components must function properly.[4]

The telegraph, one of the components of the railway, had such a widespread impact that it not only corrected the railway's timetable but also helped ensure that accidents did not occur. This emerged as a crucial link between time and safety. Before the arrival of the railway, people estimated time by looking at the sun, resulting in different times across cities and towns. People gauged time based on difficult paths, forests, and rivers. But this concept changed with the coming of the railway. Now, people began to plan their travel and office timings around the train schedule. Time no longer remained a subject connected with nature but became standardised. uses a new term here : panoramic perception. This refers to the view outside the window of a railway carriage. In the past, humans were connected to nature when they travelled. This connection ended with the arrival of trains. Now, the view outside the window changes in an instant, like a scene from a film.[5] As a result, passengers could no longer connect with external things, especially with nature. It is said that railway compartments were built in the style of old carriages, providing privacy to the European upper class. Social experience has been replaced by fear and solitude, rather than interaction. The book compared this European compartment culture with the openness of American trains. The privacy found in compartments has ended conversations during journeys. The trains in America had open seating like on a ship, where people could converse with each other, whereas in Europe this was lacking due to closed compartments. The physical fatigue caused by rail travel, saying that the continuous vibration on trains led to issues like headaches, back pain and nerve fatigue, which is called railway spine or railway fatigue. Passengers' mental fatigue,[6] where rapidly changing external scenes made it difficult to adjust the mind, resulting in irritability and mental exhaustion. The book discusses railway accidents, stating that railway accidents have caused deep fear and mental trauma in society. Companies spent more on increasing speed and capacity to boost profits, while spending less on safety measures.[7]

The second section of the book also shows that the railway was not a glamorous story but a

complex process filled with disease, fear, and accidents. The train accidents caused psychological trauma to passengers. Initially, doctors called it railway spine, but later it was found that it did not cause physical injury to passengers; rather, their mental state was affected. This psychological trauma led to problems such as fear, weakness, and memory loss. Due to industrialisation, stimuli increased significantly, and humans couldn't process them all at once. So, humans developed a way to ignore them all and thus become used to them. The railway station is the gateway to the city and also links it to social changes, showing how it led to large-scale class division.

Schivelbush proves that the railways not only changed the mode of travel but also altered the human mind, social structure, and life itself. At the same time, he draws attention to the fact that the construction of railways and roads changed the maps of cities; there was a significant change in settlements, but the soul of the city vanished, and they became lifeless. Railways reduced distances and connected cities, but greatly diminished their diversity.[8]

Intellectual and Theoretical Background :

Schivelbusch's work is connected to the German intellectual tradition. The influence of scholars such as Karl Marx, W. Benjamin, and G. Simmel is clearly visible in their thoughts. The foundation of this book is inspired by Marx's Time by Destruction, but it does not limit it to merely economic effects; it extends it to human perception as well. The author provides a cultural and experiential dimension for the study of audiology and modernity.[9]

Research Sources :

The material used for writing this book is primarily qualitative and interpretative. For its composition, the author relied on 19th-century newspapers, travelogues, literary works, and medical articles. Through all these sources, they highlight the physical, mental, social, and cultural impacts of railways and industrialisation. This attempts to bring forth the experiential aspect of the railway, in addition to its development narrative.[10]

Railways and Time :

Railways transformed the concept of time. They turned local time into standardised time. Time was now determined not by looking at the sun, but by the arrival and departure of trains. This brought time forth as an administrative concept. The author, citing experiences, explains how railway time became a symbol of the capitalist system and discipline.[11]

Railways and Society :

Social Division After the advent of railways, class divisions became clearly visible. Waiting rooms at railway stations were built according to category. The first, second and third-class compartments in trains reflect social discrimination. The solitude of the compartments replaced the

experiences of journeys. Silence, fear, and terror replaced the democratic debate and discussion.[12] The book focuses more on empirical and cultural changes than on the traditional history of railways. It has completely transformed the human understanding of time. The book highlighted an important aspect of railways by challenging an established notion that railways reduced distances. The book established that while geographical distances may have decreased, significant gaps emerged in social and human relationships.[13]

Significance :

This not only narrates the history of technology but also describes the mental, physical, and social changes observed as a result of that technology. This book offers a fresh perspective that the measure of modernity is not just economic and technological progress, but also changes occurring at the level of social experience and consciousness. It shows how technological innovations structure daily human life, physical sensations, and society. This is a theoretical framework for understanding the history of transportation, modernity, and digital communication.[14]

Limitation :

This research work is an important document for understanding the history of transport and human experiences. It provides a new perspective on understanding development and technology. Hardly any academic work is flawless, and this work also has certain limitations. This work is limited to Europe, with more discussion of developments there. At the same time, it remains silent on the social experiences in India, Africa, and other Asian regions following the advent of railways. The voices of ordinary people have not been given adequate space. It analyses sources and thinking predominantly written by intellectuals and the middle class, while offering little description of the experiences of the lower classes and workers.[15] The author has failed to provide concrete data to substantiate any of the facts cited, which raises doubts about their claims. It undervalues the railway's positive aspects and has failed to give due place to the changes it has brought. The book has a strong intellectual background, but its geographical scope is quite limited. Despite all these limitations, it is an important work for understanding modernity and the concept of time and space.[16]

Conclusion :

Wolfgang Schivelbusch's book, "The Railway Journey: The Industrialisation of Time and Space in the Nineteenth Century," is a significant contribution to the cultural and intellectual history of modernity. The book examines the experiential, psychological, and conceptual transformations brought about by the railway. The railway was not merely a technological invention, but a force that reshaped human consciousness. It strengthened social connections and redefined the very meaning of time and space. How do standardised time, panoramic perception, psychological trauma, and industrial

technologies affect people's daily experiences? The railway emerged as a symbol of capitalist discipline and alienation. It challenges the social and psychological costs of industrial progress and modernisation. Based on this, it questions traditional narratives of progress.

The book draws on literary sources, travelogues, medical articles, and newspaper accounts. It presents a history of railways based on personal experiences. The limitations of the author's perspective are thoroughly examined; it is entirely Eurocentric. It also lacks systematic, empirical data. Despite these limitations, the book holds significant theoretical value. "The Railway Journey" provides a conceptual lens for viewing technological development and the evolution of railways from a unique perspective. Its emphasis on perception, discipline, and experience ensures its continued relevance for historians, sociologists, geographers, and scholars of modernity who seek to understand how technology transforms human life beyond mere material progress.

Reference :

1. White, J. H. (1983). Review of the Railway Journey: Trains and Travel in the Nineteenth Century, by W. Schivelbusch. Technology and Culture, 24(3), p.515. https://doi.org/10.2307/3104778
2. Esler, A. (1988). Review of the Railway Journey: the Industrialization of time and Space in the Nineteenth Century, by W. Schivelbusch. The American Historical Review, 93(2), p.530–531. https://doi.org/10.2307/1873522
3. Gourvish, T. (1988). Review of the Railway Journey: The Industrialization of Time and Space in the Nineteenth Century, by W. Schivelbusch. Social History, 13(2), p.268. https://doi.org/10.2307/4285702
4. Poole, R. (1988). Review of the Railway Journey, by W. Schivelbusch. Urban History Yearbook, 15, pp. 182–183. https://www.jstor.org/stable/44608704
5. Schneider, W. H. (1987). Review of the Railway Journey: the Industrialization of Time and Space in the Nineteenth Century. Technology and Culture, 28(4), pp. 886–888. https://doi.org/10.2307/3105534
6. Pickering, A. (1996). Review of the Railway Journey: the Industrialization of Time and Space in the Nineteenth Century, by W. Schivelbusch. Contemporary Sociology, 25(4), pp. 456–457. https://doi.org/10.2307/2077061
7. Shelston, A. (2006). Opportunity and Anxiety: Elizabeth Gaskell and the development of the Railway System. The Gaskell Society Journal, 20, pp. 91–101.
8. Hvattum, M. (2011). Panoramas of Railway Travel: Perception, landscape, and Modernity.

Journal of Architecture, 16(4), pp. 469–487. https://doi.org/10.1080/13602365.2011.590060
9. Daly, N. (1999). Railway Novels and the Sensation of Modernity. ELH, 66(2), pp. 461–487. https://doi.org/10.1353/elh.1999.0018
10. Erkkilä, V. (2015). American Railways and Cultural Modernity. Cultural Critique, 90, pp. 45–72. https://doi.org/10.5749/culturalcritique.90.2015.0045
11. Choi, S. (2015). Railway Guidebooks and Experiments in Modern Perception. Configurations, 23(3), pp. 321–345. https://doi.org/10.1353/con.2015.0021
12. Schivelbusch, W. (2015). World Machines: the Steam Engine, the Railway, and the Computer. Log, 33, pp. 54–61.
13. Poole, R. (1988). Review of the Railway Journey, by W. Schivelbusch. Urban History Yearbook, 15, pp. 182–183. https://www.jstor.org/stable/44608704
14. Poole, R. (1988). Review of the Railway Journey, by W. Schivelbusch. Urban History Yearbook, 15, pp.182–183. https://www.jstor.org/stable/44608704
15. Thrift, N. (1989). Review of the Railway Journey: the Industrialisation of Time and Space in the Nineteenth Century, by W. Schivelbusch. Contemporary Sociology, 18(3), pp.362–363. https://www.jstor.org/stable/2073829
16. Olsen, D. J. (1988). Review of the Railway Journey: the Industrialization of Time and Space in the Nineteenth Century, by W. Schivelbusch. Journal of Social History, 21(4), pp. 811–813. https://www.jstor.org/stable/3788024

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 98-102

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सांख्यकारिका–पातञ्जलयोगसूत्रयोः मुक्तिसाधनस्य तुलनात्मकसमीक्षा

(A Comparative Study of the Means of Liberation in the Samkhyakarika and Patanjala Yoga Sutras)

हरिप्रसन्नः अधिकारी

स्वतंत्र शोधकर्ता (Independent Researcher)

सारांश: (Abstract)

प्रस्तुतशोधपत्रे सांख्यकारिका-पातञ्जलयोगसूत्रयोः मुक्तिसाधनस्य तुलनात्मकं विवेचनं कृतम्। भारतीयदर्शनपरम्परायां मोक्षः अथवा कैवल्यं मानवजीवनस्य परमपुरुषार्थत्वेन स्वीकृतः। सांख्यदर्शनानुसारं प्रकृतिपुरुषयोः विवेकज्ञानमेव मुक्तेः प्रधानसाधनम्, यतः तत्त्वज्ञानस्य उदयेन पुरुषः स्वस्वरूपं ज्ञात्वा प्रकृतेः बन्धनात् विमुच्यते। अपरतः पातञ्जलयोगदर्शने चित्तवृत्तिनिरोधः तथा अष्टाङ्गयोगाभ्यासः कैवल्यप्राप्तेः प्रमुखोपायत्वेन प्रतिपादितः। अस्मिन् शोधे उभयोः दर्शनयोः मुक्तिसाधनविषयकसिद्धान्तानां साम्यवैषम्यात्मकं परीक्षणं कृतम्। अध्ययनात् ज्ञायते यत् सांख्यं सिद्धान्तप्रधानं दर्शनम् अस्ति, योगः तु तस्य व्यावहारिकसाधनरूपः मार्गः। निष्कर्षतः उभयोः दर्शनयोः समन्वयेनैव मुक्तेः सम्यक् स्वरूपं बोधयितुं शक्यते तथा आध्यात्मिकजीवने तयोः विशेषमहत्त्वं विद्यते।

कुञ्जीशब्दा: (Keywords): सांख्यकारिका, पातञ्जलयोगसूत्रम्, मुक्तिः, कैवल्यम्, विवेकज्ञानम्, अष्टाङ्गयोगः, भारतीयदर्शनम्।

Abstract :

The present paper offers a comparative study of the means of liberation (Moksha) as described in the *Samkhyakarika* of Ishvarakrishna and the *Yoga Sutras* of Patanjali. Both philosophical systems accept liberation as the highest goal of human life, yet they propose different approaches to attain it. Samkhya emphasizes discriminative knowledge (*Viveka-Jnana*) between Purusha and Prakriti as the direct means to liberation, whereas Yoga stresses practical discipline through the eightfold path (*Ashtanga Yoga*) leading to the cessation of mental modifications. This study examines the similarities and differences

between these two systems and highlights their complementary nature. The paper argues that while Samkhya provides the theoretical foundation of liberation, Yoga offers the practical methodology for its realization. Thus, a harmonious synthesis of knowledge and practice emerges as the most effective path toward spiritual freedom and self-realization.

Keywords : Samkhya, Yoga, Liberation, Viveka-Jnana, Ashtanga Yoga, Prakriti, Kaivalya, Indian Philosophy

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीयमनीषायाः प्रकृष्टं फलं दर्शनशास्त्रं वर्तते, यत् सत्यस्य साक्षात्काराय जीवनपद्धतिं च शोधयितुं प्रवृत्तम् अस्ति । अस्मिन् शास्त्रे न केवलं गम्भीरं चिन्तनं विद्यते, अपि तु सैद्धान्तिकविवेचनैः सह जीवनस्य व्यावहारिकविपदां समाधानम् अपि अत्र समुपलभ्यते । वस्तुतः भारतीयदर्शनं द्विधा विभक्तं वर्तते – आस्तिकदर्शनं नास्तिकदर्शनं च । तत्र वेदप्रामाण्यं ये स्वीकुर्वन्ति ते षडास्तिकाः ये च नेच्छन्ति ते नास्तिकाः इति प्रसिद्धाः । एतेषु षडास्तिकदर्शनानां मध्ये सांख्य-योगदर्शनयोः स्थानं सर्वोपरि अद्वितीयं च वर्तते । सांख्यं यदि तत्त्वज्ञानस्य आधारपीठिका अस्ति, तर्हि योगः तस्य प्रयोगात्मकः मार्गः। सांख्ययोगौ द्वौ अपि आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखत्रयात् मुक्तिं प्रतिपादयतः। यतो हि सांख्यकारिकायां स्पष्टमुक्तम् - "दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हेतौ।" [1] अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दुःखानां पीडया मनुष्यस्य तेषां निवारककारणस्य जिज्ञासा जायते । एषा जिज्ञासा एव मोक्षमार्गस्य प्रथमप्रेरणा भवति ।

सांख्यदर्शनस्य मुख्यग्रन्थः 'सांख्यकारिका' यस्य रचयिता ईश्वरकृष्णः तथा योगस्य आधारभूतग्रन्थः 'पातञ्जलयोगसूत्रम्' यस्य रचयिता महर्षिः पतञ्जलिः। द्वयोः ग्रन्थयोः समन्वयेन पुरुषस्य चरमं लक्ष्यं 'मुक्तिः' (कैवल्यं) कथं प्राप्यते, इति विषयः अतीव महत्त्वपूर्णः अस्ति । अतः अस्मिन् शोधपत्रे **सांख्यकारिका-पातञ्जलयोगसूत्रयोः मुक्तिसाधनयोः तुलनात्मिका समीक्षा** इति विषये विस्तरेण चर्चा विहिता, येन मुमुक्षूणां कृते मार्गः प्रशस्तः भवेत् ।

शोधपद्धतिः

अस्मिन् शोधपत्रे तुलनात्मकपद्धतिः, विश्लेषणात्मकपद्धतिः तथा व्याख्यात्मकपद्धतिः प्रयुक्ताः । सांख्यकारिकायाः तथा पातञ्जलयोगसूत्रस्य मूलग्रन्थयोः अध्ययनं कृत्वा मुक्तिसाधनविषयकसिद्धान्तानां तुलनात्मकं परीक्षणं कृतम् । तदनन्तरम् उभयोः दर्शनयोः साम्यवैषम्ययोः विश्लेषणं कृत्वा निष्कर्षः प्रस्तूतः ।

सांख्यकारिकायां मुक्तिसाधनम् (Salvation in Samkhyakarika)

ईश्वरकृष्णस्य सांख्यकारिकायां 'विवेकज्ञानम्' एव मुख्यं साधनं प्रोक्तम् । **पञ्चविंशतितत्त्वज्ञानम् -** प्रकृति-पुरुषयोः भेदज्ञानम् एव मुक्तिः । **कारिका ६४-व्याख्या:** सांख्यदर्शने मोक्षः न कश्चन नवीनः लाभः, अपितु पुरुषस्य स्वस्वरूपस्य प्रत्यभिज्ञानम् । यदा पुरुषः प्रकृतेः सर्वान् विकारान् स्वात् पृथक् पश्यति, तदा बन्धस्य समूलनिवृत्तिः भवति । सांख्यमते न कर्म, न उपासना, न देवतापूजा, अपितु शुद्धविवेकज्ञानमेव कैवल्यस्य कारणम् । अतः सांख्यदर्शनं ज्ञानप्रधानमार्गत्वेन भारतीयदर्शनपरम्परायां विशिष्टं स्थानं धारयति ।

---

[1]. ईश्वरकृष्णः, सांख्यकारिका, कारिका १ ।

"एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् ।
अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥"[2]

अस्यार्थः – तत्त्वानां निरन्तराभ्यासेन "नास्मि", "न मे", "नाहम्" इति विवेकज्ञानम् उत्पद्यते, तदेव कैवल्यस्य कारणम् । सांख्यदर्शने मोक्षस्य नाम कैवल्यम् इति प्रसिद्धम् । कैवल्यस्य स्वरूपं पुरुषस्य प्रकृतेः सर्वथा वैलक्षण्यबोधः अस्ति । यदा पुरुषः स्वस्य शुद्धचैतन्यस्वरूपं ज्ञात्वा प्रकृतेः गुणपरिणामेभ्यः असङ्गः भवति, तदा बन्धनस्य पूर्णनिवृत्तिः जायते । अतः सांख्यमते विवेकख्यातिः एव मोक्षस्य प्रधानं साधनम् ।[3]

योगसूत्रे मुक्तिसाधनम् (Salvation in Yoga Sutras)

महर्षिः पतञ्जलिः चित्तस्य परिष्काराय 'अष्टाङ्गयोगस्य' मार्गं ददाति । **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** [4] इति पतञ्जलिना प्रतिपादितम् । तदनन्तरं पतञ्जलिः वदति - "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।" [5] अस्य तात्पर्यम् अस्ति यत् यदा चित्तस्य समस्तवृत्तयः निरुद्धाः भवन्ति तदा पुरुषः स्वस्वरूपे प्रतिष्ठते । अयं एव योगदर्शनस्य मोक्षलक्षणः अथवा कैवल्यावस्था इति कथ्यते ।

यदा चित्तस्य सर्ववृत्तयः शान्ताः भवन्ति, तदा पुरुषः स्वरूपे तिष्ठति। **ईश्वरप्रणिधानम्:** सांख्यकारिकायाम् ईश्वरस्य स्पष्टोल्लेखः नास्ति, किन्तु योगसूत्रे "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" [6] इति उक्त्वा ईश्वरभक्तिम् अपि मुक्तिसाधनं मन्यते । योगदर्शने केवलं तात्त्विकज्ञानं पर्याप्तं न भवति । अत्र यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधिः इत्यष्टाङ्गयोगस्य क्रमिकसाधना अपेक्ष्यते । एतेषाम् अभ्यासेन चित्तशुद्धिः भवति, क्लेशक्षयः जायते तथा अन्ते पुरुषस्य स्वरूपसाक्षात्कारः सम्भवति । योगदर्शने अष्टाङ्गयोगस्य विशेषमहत्त्वं प्रतिपादितम् । यमः, नियमः, आसनम्, प्राणायामः, प्रत्याहारः, धारणा, ध्यानम्, समाधिः चेति अष्टाङ्गानि क्रमशः साधकस्य अन्तःकरणं विशोधयन्ति । एतेषां नियमिताभ्यासेन चित्तस्य स्थैर्यं जायते तथा पुरुषस्य स्वरूपज्ञानं सुलभं भवति । अतः योगः केवलं दार्शनिकसिद्धान्तः न, अपि तु जीवनोपयोगी साधनपद्धतिः अस्ति ।

उभयोः दर्शनयोः साम्यं वैषम्यं च (Comparison)

साम्यम्: - उभयोरपि मते पुरुषः नित्यः, शुद्धः, बुद्धः च अस्ति । प्रकृतिः एव बन्धस्य कारणम् । **वैषम्यम्:** - सांख्यं 'विचारप्रधानम्' अस्ति, योगः 'प्रक्रियाप्रधानम्' । योगे 'यम-नियमादीनां' पालनम् अनिवार्यं वर्तते, सांख्ये तु केवलं बौद्धिक-विवेकेन अपि कार्यं सिध्यति ।

अन्यच्च उभयोरपि दर्शनयोः मोक्षस्वरूपे पर्याप्तं साम्यम् अस्ति । सांख्यमते विवेकज्ञानस्य उदयेन पुरुषः प्रकृतेः सर्वथा पृथक् ज्ञायते तथा कैवल्यं प्राप्नोति । योगदर्शनेऽपि अन्ततः पुरुषस्य स्वरूपावस्थानमेव मोक्षः स्वीक्रियते । तथापि साधनदृष्ट्या भेदः दृश्यते । सांख्यदर्शनं मुख्यतया ज्ञानमार्गप्रधानम् अस्ति, यत्र तत्त्वविवेकः मोक्षस्य प्रमुखं साधनम् । योगदर्शने तु यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधिरूपाणि अष्टाङ्गानि क्रमशः

---

[2]. ईश्वरकृष्णः, सांख्यकारिका, कारिका ६४

[3]. वाचस्पतिमिश्रः, तत्त्वकौमुदी

[4]. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, योगसूत्र १.२

[5]. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, योगसूत्र १.३

[6]. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, योगसूत्र १.२४

साधनीयानि भवन्ति। अतः सांख्यं सिद्धान्तप्रधानं, योगः साधनप्रधानं दर्शनम् इति वक्तुं शक्यते।

मुक्तिसाधनयोः दार्शनिकमहत्त्वम् :

सांख्ययोगदर्शनयोः मुक्तिसाधनविचारः केवलं प्राचीनकालस्य आध्यात्मिकविषयः नास्ति, अपितु अद्यतनजीवनेऽपि महत्त्वपूर्णः अस्ति। आधुनिकमानवः मानसिकचिन्ता, मानसिकदबावः, असन्तोषः च अनुभवति। सांख्यस्य विवेकज्ञानं तथा योगस्य चित्तशोधनप्रक्रिया एतादृशानां समस्याणां समाधानं प्रदातुं समर्थे स्तः। अतः एते दर्शनद्वये न केवलं मोक्षमार्गं, अपि तु जीवनव्यवस्थापनस्य मार्गदर्शनमपि उपलभ्यते।

मुक्तेः स्वरूपम् :

सांख्ययोगदर्शनयोः मोक्षस्य स्वरूपे पर्याप्तं साम्यमस्ति। उभयोरपि मते पुरुषः नित्यः, शुद्धः तथा स्वतन्त्रः अस्ति। बन्धः तु अविद्यया अथवा प्रकृतिसम्बन्धेन जायते। सांख्यमते विवेकज्ञानस्य उदयेन पुरुषः प्रकृतेः पृथक्त्वं ज्ञात्वा कैवल्यं प्राप्नोति। योगदर्शने तु समाध्यवस्थायां चित्तवृत्तीनां निरोधेन पुरुषः स्वस्वरूपे प्रतिष्ठते। अतः मोक्षः न कश्चन स्थानविशेषः, अपि तु आत्मस्वरूपस्य अनुभूतिः इति उभयोरपि दर्शनयोः अभिप्रायः।

सांख्ययोगदर्शनयोः कैवल्यस्य दार्शनिकव्याख्या :

सांख्ययोगदर्शनयोः कैवल्यं परमपुरुषार्थरूपेण स्वीकृतम्। सांख्यमते कैवल्यं नाम पुरुषस्य प्रकृतेः सर्वथा पृथग्भावज्ञानम्। यदा पुरुषः स्वस्य शुद्धचैतन्यस्वरूपं ज्ञात्वा प्रकृतेः गुणपरिणामेभ्यः असङ्गः भवति, तदा कैवल्यावस्था प्राप्यते। योगदर्शनेऽपि कैवल्यं चरमलक्ष्यत्वेन प्रतिपादितम्, किन्तु तत्र चित्तवृत्तिनिरोधेन तथा समाधिसाधनया तस्य प्राप्तिः कथ्यते। उभयोरपि दर्शनयोः मोक्षः न कश्चन बाह्यलाभः, अपितु आत्मस्वरूपस्य अनुभूतिः इति विशेषः। अतः कैवल्यस्य संकल्पना भारतीयदर्शनपरम्परायाम् अत्यन्तमहत्त्वपूर्णा मन्यते।

आधुनिकजीवने सांख्ययोगयोः प्रासङ्गिकता :

वर्तमानकाले मानवः मानसिकतनावेन, चिन्तया, स्पर्धया च पीड्यते। एतादृशे समये सांख्यदर्शनस्य विवेकज्ञानं तथा योगदर्शनस्य ध्यानसाधना अत्यन्तोपयोगिनी स्तः। सांख्यदर्शनं मनुष्यं वस्तुनः यथार्थस्वरूपं ज्ञापयति, योगदर्शनं च तस्य मनसः शुद्धिं तथा स्थैर्यं जनयति। अतः आधुनिकजीवने अपि उभयोरस्य दर्शनयोः महत्त्वं न केवलं दार्शनिकदृष्ट्या, अपि तु व्यावहारिकदृष्ट्यापि अतीव उपादेयम् अस्ति।

सांख्ययोगदर्शनयोः समाजोपयोगिता :

सांख्ययोगदर्शनयोः शिक्षाः केवलम् आध्यात्मिकक्षेत्रे एव सीमिताः न सन्ति, अपितु सामाजिकजीवनेऽपि महत्त्वपूर्णाः सन्ति। सांख्यदर्शनस्य विवेकज्ञानं मनुष्यं यथार्थदृष्ट्या विचारयितुं प्रेरयति, येन जीवने सम्यक् निर्णयग्रहणं सम्भवति। योगदर्शनस्य अष्टाङ्गसाधना च व्यक्तित्वविकासे, मानसिकशान्तौ, नैतिकमूल्यवर्धने च सहायकत्वेन कार्यं करोति। वर्तमानकाले यदा मानवः मानसिकतनावेन, अस्थिरतया, नैतिकसंकटैः च पीड्यते, तदा सांख्ययोगदर्शनयोः उपदेशाः अत्यन्तप्रासङ्गिकाः भवन्ति। अतः एते दर्शनद्वये केवलं मोक्षमार्गप्रदर्शकौ न, अपि तु स्वस्थसमाजस्य निर्माणे अपि महत्त्वपूर्णं योगदानं ददातः।

सांख्ययोगदर्शनयोः समन्वयस्य आवश्यकता :

सांख्ययोगदर्शनयोः परस्परं घनिष्ठः सम्बन्धः दृश्यते। सांख्यदर्शनं यद्यपि मोक्षस्य तात्त्विकाधारं प्रस्तौति, तथापि तस्य व्यवहारिकसाधनपक्षः योगदर्शने विकसितः दृश्यते। केवलं ज्ञानमात्रेण सर्वेषां साधकानां चित्तशुद्धिः न भवति, तथा केवलाभ्यासेन अपि तत्त्वज्ञानस्य अभावः लक्ष्यप्राप्तौ बाधकः भवितुमर्हति। अतः सांख्यस्य

विवेकज्ञानं तथा योगस्य अष्टाङ्गसाधना उभे अपि परस्परपूरके स्तः । यदा ज्ञानं साधनया सह संयुक्तं भवति, तदा मोक्षमार्गः अधिकं सुगमः, प्रभावी च भवति । एतस्मात् कारणात् भारतीयदर्शनपरम्परायां सांख्ययोगयोः समन्विताध्ययनस्य विशेषमहत्त्वं स्वीक्रियते ।

मुक्तिसाधनयो: समन्वयात्मकदृष्टि:

सांख्ययोगदर्शनयोः परस्परं घनिष्ठः सम्बन्धः दृश्यते । सांख्यं यत्र मोक्षस्य सैद्धान्तिकाधारं प्रददाति, तत्र योगः तस्य व्यावहारिकसाधनमार्गं प्रदर्शयति । ज्ञानस्य अभ्यासेन चित्तशुद्धेः च समन्वयेन साधकः कैवल्यं प्राप्नोति । अतः उभयोरपि दर्शनयोः समन्वयः मुक्तिसाधनस्य अधिकसम्पूर्णं स्वरूपं प्रकाशयति ।

लेखकस्य मौलिकमतम्

लेखकस्य मते सांख्यदर्शनस्य विवेकज्ञानं तथा योगदर्शनस्य अष्टाङ्गसाधना परस्परपूरकौ स्तः । केवलं सैद्धान्तिकज्ञानं मनुष्यस्य पूर्णविकासाय पर्याप्तं न भवति । यथा सांख्यदर्शनं पुरुषप्रकृतिविवेकं बोधयति, तथैव योगदर्शनं तस्य अनुभूतिपर्यन्तं नेतुम् उपायान् प्रदर्शयति । अतः उभयोः समन्विताध्ययनं मुक्तिसाधनस्य सर्वश्रेष्ठमार्गः इति लेखकस्य अभिप्रायः । उभयोः समन्वयेनैव कैवल्यस्य पूर्णसिद्धिः सम्भवति ।

उपसंहार: (Conclusion)

अतः निष्कर्षतः वक्तुं शक्यते यत् सांख्यकारिका तथा पातञ्जलयोगसूत्रम् भारतीयदर्शनपरम्परायां मुक्तिसाधनविषये महत्त्वपूर्णं योगदानं दत्तवन्तौ । सांख्यदर्शनं विवेकज्ञानस्य महत्त्वं प्रतिपादयति, योगदर्शनं तु तस्य व्यवहारिकोपयोगितां दर्शयति । उभयोरपि दर्शनयोः लक्ष्यं कैवल्यप्राप्तिरेव अस्ति, यद्यपि तयोः साधनमार्गौ भिन्नौ स्तः । आधुनिकजीवनेऽपि एतयोः शिक्षायाः विशेषप्रासङ्गिकता वर्तते । अतः ज्ञानयोगयोः समन्वयेनैव मनुष्यः आत्मविकासं, मानसिकशान्तिं तथा परमपुरुषार्थरूपां मुक्तिं प्राप्तुं शक्नोति ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची (References)

1. ईश्वरकृष्णः, सांख्यकारिका (तत्त्वकौमुदी व्याख्या), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी ।
2. पतञ्जलिः, योगसूत्रम् (व्यासभाष्यसहितम्), मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन् ।
3. राधाकृष्णन्, एस., भारतीय दर्शन (भाग-२), राजपाल एण्ड संस ।
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथ सम्प्रदाय एवं योग, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर ।
5. बलदेव उपाध्यायः, भारतीयदर्शनम्, चौखम्भा प्रकाशनम् ।
6. उदयवीरशास्त्री, *सांख्यदर्शनम्*, चौखम्भा संस्कृत संस्थानम् ।
7. सुरेन्द्रनाथदासगुप्तः, *भारतीयदर्शनस्य इतिहासः*, मोतीलाल बनारसीदास ।
8. बलदेव उपाध्यायः, *भारतीयदर्शनम्*, चौखम्भा प्रकाशनम् ।
9. सुरेन्द्रनाथ दासगुप्तः, *भारतीयदर्शनस्य इतिहासः*, मोतीलाल बनारसीदास ।

hadhikary799@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 103-109

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ

डॉ. गौस शेख

सह –प्राध्यापक

एस. आर –बीजीएनआर शासकीय महाविद्यालय, खम्मम, तेलंगाना।

शोध -सार :

प्रस्तुत शोध–पत्र में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार एवं उपन्यासकार विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों में निहित सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण किया गया है। विद्यासागर नौटियाल ने उत्तराखण्ड के पर्वतीय समाज के जीवन, संघर्ष, लोकसंस्कृति तथा सामाजिक परिवर्तन को अत्यंत यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। उनके उपन्यास केवल साहित्यिक कृतियाँ नहीं हैं, बल्कि पर्वतीय समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के प्रामाणिक दस्तावेज भी हैं। इस शोध में नौटियाल के प्रमुख उपन्यासों के आधार पर ग्रामीण जीवन, आर्थिक विषमता, जातिगत असमानता, स्त्री जीवन, पलायन, राजनीतिक विसंगतियों तथा भाषा–शैली का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि लेखक ने सीमित कृषि, बेरोजगारी, गरीबी, प्रशासनिक उपेक्षा, भ्रष्टाचार तथा सामाजिक रूढ़ियों जैसी समस्याओं को अत्यंत संवेदनशीलता और यथार्थपरकता के साथ प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री को संघर्षशील, श्रमशील तथा आत्मसम्मानी व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया गया है, जबकि जातिगत भेदभाव और सामाजिक विषमता के विरुद्ध समानता एवं मानवीय गरिमा का समर्थन किया गया है। इसी प्रकार राजनीतिक यथार्थ के माध्यम से लोकतांत्रिक व्यवस्था की कमजोरियों, सत्ता के दुरुपयोग तथा जनसामान्य की उपेक्षा को रेखांकित किया गया है।

शोध से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विद्यासागर नौटियाल का कथा–साहित्य सामाजिक यथार्थ की व्यापक अवधारणा को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करता है। उन्होंने उत्तराखण्ड के जनजीवन, लोकसंस्कृति और मानवीय संघर्षों को साहित्यिक संवेदना तथा यथार्थवादी दृष्टि के साथ प्रस्तुत कर हिन्दी उपन्यास परंपरा को समृद्ध किया है। उनका साहित्य सामाजिक परिवर्तन, लोकतांत्रिक मूल्यों तथा मानवीय समानता की स्थापना का महत्वपूर्ण माध्यम है। इसलिए सामाजिक यथार्थ के अध्ययन की दृष्टि से विद्यासागर नौटियाल के उपन्यास हिन्दी साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

कुंजी शब्द : विद्यासागर नौटियाल, सामाजिक यथार्थ, उत्तराखण्ड, पर्वतीय समाज, ग्रामीण जीवन, स्त्री–विमर्श, पलायन, राजनीतिक यथार्थ, लोकसंस्कृति, हिन्दी उपन्यास।

प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु,

अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल तथा विद्यासागर नौटियाल जैसे रचनाकारों ने भारतीय समाज के विविध वर्गों, उनकी समस्याओं तथा सामाजिक परिवर्तन को अपने साहित्य का आधार बनाया है। विशेषतः उत्तराखण्ड के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के संदर्भ में विद्यासागर नौटियाल का साहित्य एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज के रूप में स्वीकार किया जाता है। उनके उपन्यासों में पर्वतीय जीवन, आर्थिक विषमता, जातीय संरचना, पलायन, स्त्री की स्थिति तथा राजनीतिक विसंगतियों का सशक्त चित्रण मिलता है। विद्यासागर नौटियाल के साहित्य पर उपलब्ध शोधों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अधिकांश अध्ययनों में उनके उपन्यासों की आंचलिकता, लोकसंस्कृति, भाषिक विशेषताओं तथा उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक चेतना पर विशेष बल दिया गया है। अनेक शोधकर्ताओं ने उनके कथा–साहित्य में पर्वतीय जनजीवन के चित्रण, लोकभाषा के प्रयोग तथा क्षेत्रीय संस्कृति के संरक्षण का विश्लेषण किया है। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि नौटियाल ने स्थानीय जीवन को अत्यंत प्रामाणिक रूप में अभिव्यक्त किया है। उनके उपन्यासों में नारी जीवन, सामाजिक परिवर्तन तथा राजनीतिक चेतना का भी अध्ययन किया गया है। इन अध्ययनों में यह निष्कर्ष सामने आया है कि लेखक ने स्त्री को केवल पारिवारिक दायित्वों तक सीमित न रखकर उसे संघर्षशील, आत्मसम्मानी तथा सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय वाहक के रूप में चित्रित किया है। साथ ही, उनके उपन्यासों में ग्रामीण समाज पर राजनीतिक हस्तक्षेप, प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा आर्थिक शोषण के प्रभावों का भी विश्लेषण किया गया है।

सामाजिक यथार्थ की अवधारणा पर हिन्दी आलोचना में अनेक विद्वानों ने विचार प्रस्तुत किए हैं। प्रेमचन्द के यथार्थवाद, रेणु के आंचलिक यथार्थ तथा श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्यात्मक सामाजिक दृष्टिकोण पर पर्याप्त शोध उपलब्ध हैं। इन अध्ययनों ने यह स्थापित किया है कि सामाजिक यथार्थ केवल सामाजिक समस्याओं का वर्णन नहीं, बल्कि समाज की संरचना, सत्ता–संबंधों, वर्गीय असमानताओं और मानवीय संघर्षों का गहन विश्लेषण भी है।"[1] इसी परंपरा में विद्यासागर नौटियाल का साहित्य विशेष महत्व रखता है क्योंकि उन्होंने हिमालयी समाज के यथार्थ को उसकी आंतरिक जटिलताओं सहित प्रस्तुत किया है। यद्यपि विद्यासागर नौटियाल पर अनेक शोधकार्य उपलब्ध हैं, तथापि उनके समग्र उपन्यास–साहित्य में सामाजिक यथार्थ के बहुआयामी स्वरूपकृजैसे आर्थिक विषमता, जातीय संबंध, स्त्री–विमर्श, पलायन, लोकतांत्रिक व्यवस्था की चुनौतियाँ तथा सामाजिक परिवर्तनकृका समेकित एवं तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। अधिकांश अध्ययन किसी एक उपन्यास, किसी एक विषय अथवा आंचलिकता तक सीमित रहे हैं। फलतः उनके सम्पूर्ण उपन्यास–साहित्य को सामाजिक यथार्थ की व्यापक अवधारणा के अंतर्गत समग्र रूप से विश्लेषित करने की आवश्यकता बनी हुई है।

विद्यासागर नौटियाल ने पर्वतीय जीवन को केवल प्राकृतिक सौन्दर्य के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संघर्षों और मानवीय संवेदनाओं के साथ चित्रित किया। उनका साहित्य सामान्य जन के दुःख, पीड़ा, संघर्ष तथा सामाजिक परिवर्तन की चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। उनके उपन्यासों में पहाड़ी समाज की वास्तविक परिस्थितियाँ 'गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, पलायन, जातिगत भेदभाव तथा राजनीतिक शोषण' जीवंत रूप में प्रस्तुत हुई हैं। यही कारण है कि उनका साहित्य सामाजिक यथार्थ का सशक्त उदाहरण माना जाता है।

सामाजिक यथार्थ : अवधारणा :

डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह के अनुसार, ''यथार्थ का सम्बन्ध जागरूक आत्मचेतना से है। इस जागरूक आत्मचेतना की परिस्थिति है किसी भी व्यावहारिक सन्दर्भ को यथावत् स्वीकार करना, इसके लिए अपेक्षित है।

आदर्श की स्थिति में जिस व्यावहारिकता के यथार्थ को कटु सत्य, असंगति, अनैतिकता आदि के रूप में देखते हैं। यथार्थ की स्थिति में उन्हीं को अनिवार्य संगति के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। वस्तुतः आदर्श की स्थिति व्यापक निष्ठा और उसके संस्कार की है जबकि यथार्थ घटित सत्य का यथार्थ है।''[2]

सामाजिक यथार्थ का अर्थ समाज के वास्तविक जीवन, उसकी समस्याओं, संघर्षों, विषमताओं तथा मानवीय संबंधों का सत्य एवं निष्पक्ष चित्रण है। साहित्य में सामाजिक यथार्थ केवल घटनाओं का विवरण नहीं, बल्कि समाज की संरचना, वर्गीय संबंधों, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति भी है।

यथार्थवादी साहित्य का उद्देश्य समाज की वास्तविक स्थिति को सामने लाना तथा पाठकों में सामाजिक चेतना उत्पन्न करना है। हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु तथा अनेक अन्य लेखकों ने सामाजिक यथार्थ को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

विद्यासागर नौटियाल : साहित्यिक परिचय :

विद्यासागर नौटियाल का साहित्य उत्तराखण्ड के पर्वतीय समाज के जीवनानुभवों पर आधारित है। उन्होंने अपने उपन्यासों, कहानियों और नाटकों में पर्वतीय अंचल के सामान्य जनजीवन, लोकसंस्कृति, लोकभाषा, आर्थिक विषमता, सामाजिक अन्याय, राजनीतिक विसंगतियों तथा मानवीय संघर्षों का अत्यंत सजीव एवं यथार्थपरक चित्रण किया है। उनके साहित्य में प्रकृति केवल सौन्दर्य का विषय नहीं है, बल्कि मनुष्य के जीवन, श्रम, संघर्ष और सामाजिक संबंधों से गहराई से जुड़ी हुई दिखाई देती है। यही कारण है कि उन्हें पर्वतीय समाज का संवेदनशील कथाकार माना जाता है। उनके प्रमुख उपन्यासों में 'भीम अकेला', 'सूरज सबका है', 'उलझे रिश्ते' तथा अन्य कृतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं में लेखक ने ग्रामीण जीवन की विषमताओं, पलायन, बेरोजगारी, जातीय असमानता, स्त्री की सामाजिक स्थिति, सामंती मानसिकता तथा बदलते सामाजिक मूल्यों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनके पात्र जीवन के वास्तविक संघर्षों से जूझते हुए दिखाई देते हैं, जिससे उनका कथा–साहित्य सामाजिक यथार्थ का सशक्त दस्तावेज बन जाता है।

विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ :

विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों का मूल आधार उत्तराखण्ड के पर्वतीय ग्रामीण समाज का जीवन है। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में ग्रामीण जीवन की वास्तविक परिस्थितियों का अत्यंत संवेदनशील और यथार्थपरक चित्रण किया है। उनके लिए गाँव केवल कथा की पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मानवीय संघर्षों का जीवंत केंद्र है। उनके उपन्यासों में पर्वतीय जनजीवन की समस्याएँ, संघर्ष, लोकजीवन की परंपराएँ तथा बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ अत्यंत स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त होती हैं। नौटियाल ने पर्वतीय क्षेत्रों की सीमित कृषि व्यवस्था को ग्रामीण जीवन की प्रमुख समस्या के रूप में चित्रित किया है। उत्तराखण्ड के अधिकांश गाँवों में कृषि वर्षा पर निर्भर रहती है तथा भूमि छोटे–छोटे और बिखरे हुए खेतों में विभाजित है। ऐसी परिस्थितियों में कृषि परिवारों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाती। परिणामस्वरूप ग्रामीण परिवार आर्थिक संकट, ऋणग्रस्तता तथा आजीविका की अस्थिरता का सामना करते हैं। लेखक ने इस आर्थिक संघर्ष को अपने पात्रों के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

बेरोजगारी और पलायन भी उनके उपन्यासों की केंद्रीय समस्याओं में से हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में उद्योगों एवं रोजगार के अवसरों के अभाव के कारण युवा पीढ़ी शहरों की ओर पलायन करने के लिए विवश होती है। इस

पलायन का प्रभाव केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी दिखाई देता है। गाँवों में बुजुर्ग, महिलाएँ और बच्चे रह जाते हैं, जिससे पारिवारिक संरचना तथा सामुदायिक जीवन प्रभावित होता है। नौटियाल इस समस्या को मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हैं और बताते हैं कि पलायन धीरे–धीरे ग्रामीण समाज की जीवंतता को कमजोर कर देता है। शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव भी लेखक की चिंता का प्रमुख विषय है। उनके उपन्यासों में अनेक स्थानों पर यह स्पष्ट होता है कि दूरस्थ पर्वतीय गाँवों में विद्यालयों और चिकित्सालयों की अपर्याप्त व्यवस्था के कारण सामान्य जनजीवन अनेक कठिनाइयों से घिरा रहता है। अशिक्षा सामाजिक जागरूकता के विकास में बाधा बनती है, जबकि चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में सामान्य बीमारियाँ भी गंभीर रूप धारण कर लेती हैं। लेखक इन समस्याओं को केवल प्रशासनिक विफलता के रूप में नहीं, बल्कि ग्रामीण विकास की व्यापक चुनौती के रूप में देखते हैं।

आर्थिक विषमता एवं शोषण :

नौटियाल ने आर्थिक असमानता का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में दिखाई देता है प्रत्येक सत्ता का एकमात्र उद्देश्य था कि आम प्रजा को किस प्रकार लूटा–खसोटा जाए, किस तरह उन्हें प्रताड़ित करके अपने मंसूबे पूरे किए जाये। सयाणों को कहा गया कि प्रजा पर भारी से भारी कर लगाया जाये। किसानों को भी अपनी सत्ता के अधीन रखा जाये। ऐसा करने वालों को सत्ता द्वारा बकसीस दी जायेगी। इस सम्बन्ध में निम्न उदाहरण प्रस्तुत हैं– ''और जीतने वाले शासकों ने गढ़वाल के कमीणों, सयाणों को कहा कि सिर्फ राजा बदला है और राजधानी बदली है और कुछ नहीं बदला। वे प्रजा से कर वसूलते रहे। उसमें से सयाणाचारी की अपनी चुंगी काटते रहें। राजकोष श्रीनगर में जमा किए जाने वाले राजकर की धनराशि कांतिपुर (काठमांडो) भेजा करें। जिस तरह वे महाराजा गढ़वाल की सेवा करते आए ठीक उसी तरह वे महाराजा नेपाल की सेवा करते रहें। जो सेवा करेगा उसका कुछ नहीं बिगडेगा। सयाणे अपन–अपने गांवों पर शासन चलायें। किसानों को दबाकर रखें जैसा कि वे सदियों से उन्हें दबाकर रखते आए हैं।''[3] इन परिस्थितियों में सामान्य व्यक्ति निरंतर संघर्ष करता रहता है।

जातीय व्यवस्था का यथार्थ :

विद्यासागर नौटियाल जातिगत व्यवस्था का चित्रण केवल समस्या के रूप में नहीं करते, बल्कि उसके विरुद्ध सामाजिक चेतना और परिवर्तन की आवश्यकता पर भी बल देते हैं। उनके उपन्यासों के अनेक पात्र रूढ़िवादी मान्यताओं का विरोध करते हैं तथा समानता, मानवीय गरिमा और सामाजिक न्याय के पक्षधर दिखाई देते हैं। लेखक का स्पष्ट विश्वास है कि किसी भी समाज की प्रगति तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति को उसकी जाति, जन्म अथवा सामाजिक पृष्ठभूमि के बजाय उसके मानवीय गुणों और कर्म के आधार पर सम्मान प्राप्त हो। वे समाज में व्याप्त विभाजनकारी प्रवृत्तियों की आलोचना करते हुए सामाजिक समरसता, पारस्परिक सम्मान और समान अवसरों की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं। उनके कथा–साहित्य में जातिगत भेदभाव के विरुद्ध प्रतिरोध किसी वैचारिक घोषणापत्र के रूप में नहीं, बल्कि पात्रों के जीवनानुभवों और सामाजिक व्यवहार के माध्यम से स्वाभाविक रूप से व्यक्त होता है। यही कारण है कि उनका सामाजिक दृष्टिकोण अधिक प्रभावशाली और विश्वसनीय प्रतीत होता है।देश भक्तो के कैद में नौतियाल कहते है ""ब्राह्मणोन की बेटी घसियारिनों के गीत? ठहर जा लीला आज के बाद नहीं गा पायेगी तू गीत.."[4] विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों में जातिगत व्यवस्था

का चित्रण सामाजिक यथार्थ के एक महत्त्वपूर्ण आयाम के रूप में सामने आता है। उन्होंने सामाजिक ऊँच–नीच, जातीय दूरी, अस्पृश्यता और सम्मान की असमानता जैसी समस्याओं को यथार्थपरक दृष्टि से प्रस्तुत करते हुए मानवीय समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना का समर्थन किया है। उनके उपन्यास इस बात की पुष्टि करते हैं कि किसी भी लोकतांत्रिक समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है जब जातिगत संकीर्णताओं से ऊपर उठकर समतामूलक और मानवीय सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया जाए।

स्त्री जीवन का चित्रण :

विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों में स्त्री जीवन का चित्रण अत्यंत यथार्थवादी, संवेदनशील और मानवीय दृष्टि से किया गया है। उनके साहित्य में स्त्री केवल पारिवारिक जीवन का एक निष्क्रिय अंग नहीं है, बल्कि वह परिवार, समाज और संस्कृति की आधारशिला के रूप में उपस्थित होती है। लेखक ने पर्वतीय समाज की महिलाओं के दैनिक जीवन, उनके श्रम, संघर्ष, त्याग, आत्मसम्मान और सामाजिक चेतना को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया है। उनकी महिला पात्र भारतीय ग्रामीण स्त्री के बहुआयामी व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो विपरीत परिस्थितियों में भी साहस और धैर्य के साथ जीवन का सामना करती हैं। पर्वतीय समाज में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। परिवार के पुरुषों के रोजगार अथवा अन्य कारणों से बाहर रहने की स्थिति में घर–परिवार की संपूर्ण जिम्मेदारी महिलाओं पर आ जाती है। वे खेती–बाड़ी, पशुपालन, जल और ईंधन की व्यवस्था, बच्चों के पालन–पोषण तथा परिवार के अन्य दायित्वों का निर्वहन करती हैं। विद्यासागर नौटियाल ने इस श्रमशील जीवन को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री का श्रम केवल आर्थिक आवश्यकता नहीं, बल्कि परिवार और समाज के अस्तित्व का आधार बनकर सामने आता है। सूरज सबका है उपन्यास मे "पुलमा समझती थी। वह अच्छी तरह जानती थी कि पातीराम सेठ उसे किस दृष्टि से कैसी दृष्टि से देखता है और पुलमा जानती थी कि शिव्वा के जाने के बाद पातीराम सेठ खुद उसके साथ क्या करने वाला है।"[5]

विद्यासागर नौटियाल ने स्त्रियों के आर्थिक संघर्ष को भी गंभीरता से चित्रित किया है। सीमित कृषि, गरीबी और संसाधनों की कमी के कारण पर्वतीय परिवारों की महिलाएँ अनेक कठिनाइयों का सामना करती हैं। वे घरेलू कार्यों के साथ–साथ आजीविका में भी सक्रिय योगदान देती हैं, किन्तु उनके श्रम को अपेक्षित सामाजिक मान्यता नहीं मिलती। इस प्रकार नौटियाल स्त्री के आर्थिक योगदान और उसके अवमूल्यन की समस्या की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। सामाजिक दृष्टि से भी उनके उपन्यासों की महिला पात्र अनेक रूढ़ियों और परम्परागत बंधनों से जूझती दिखाई देती हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था, सामाजिक मान्यताएँ तथा पारिवारिक अपेक्षाएँ उनके जीवन को सीमित करती हैं, फिर भी वे इन परिस्थितियों के सामने पूर्णतः असहाय नहीं होतीं। वे अपने आत्मसम्मान, नैतिक मूल्यों और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करती हैं। लेखक ने स्त्री के इस आंतरिक संघर्ष को अत्यंत सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। विद्यासागर नौटियाल की महिला पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी आत्मनिर्भरता और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है। वे परिस्थितियों से समझौता अवश्य करती हैं, किन्तु अन्याय को सहज रूप से स्वीकार नहीं करतीं। उनके व्यक्तित्व में धैर्य, सहनशीलता, आत्मविश्वास और नैतिक दृढ़ता का समन्वय दिखाई देता है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की स्त्रियाँ केवल करुणा की पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय वाहक के रूप में उभरती

हैं। वे अपने परिवार और समाज में मानवीय मूल्यों, पारस्परिक सहयोग तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को सुदृढ़ करती हैं।

नौटियाल का स्त्री–चित्रण किसी वैचारिक आग्रह के स्थान पर जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से निर्मित हुआ है। वे स्त्री को न तो आदर्शवादी रूप में प्रस्तुत करते हैं और न ही केवल पीड़ित के रूप में चित्रित करते हैं। इसके विपरीत, वे उसके व्यक्तित्व की जटिलताओं, संघर्षों, संवेदनाओं और सामाजिक भूमिका को संतुलित दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। इस कारण उनका स्त्री–विमर्श अनुभवजन्य, यथार्थपरक और सामाजिक संदर्भों से गहराई से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। अतः कहा जा सकता है कि विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों में स्त्री जीवन का चित्रण सामाजिक यथार्थ का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। उनकी महिला पात्र पर्वतीय समाज की संघर्षशील चेतना, श्रमशीलता, आत्मसम्मान और परिवर्तनकारी भूमिका का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस प्रकार उनका साहित्य हिन्दी उपन्यास परंपरा में स्त्री के यथार्थवादी और गरिमामय चित्रण का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

पलायन की समस्या :

उत्तराखण्ड की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या पलायन रही है। इससे गांव खाली होते जाते हैं तथा सामाजिक संरचना कमजोर होती है।" "गूजर कभी भी धार पर नहीं रहता। वह पहाडी की ओट लेकर रहता है। धार से बहुत नीचे झोंपडी बनाकर रहता है। गूजर की झोंपडी एक पूरा भवन। घने वृक्षों से भरे वन के अंदर एक खूबसूरत आवास।"[6]

राजनीतिक यथार्थ :

नौटियाल ने चुनावी राजनीति की वास्तविकताओं का प्रभावशाली चित्रण किया है। उनके अनुसार लोकतंत्र में चुनाव जनता की आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम होना चाहिए, किन्तु व्यवहारिक स्तर पर चुनाव अनेक बार व्यक्तिगत स्वार्थ, जातीय समीकरणों, धनबल और प्रभावशाली वर्गों के हितों तक सीमित हो जाते हैं। चुनाव के समय नेताओं द्वारा किए गए बड़े–बड़े वादे, विकास के आश्वासन और जनसंपर्क अभियान चुनाव समाप्त होते ही अपनी प्रासंगिकता खो देते हैं। इस प्रकार लेखक लोकतांत्रिक व्यवस्था और उसके व्यवहारिक स्वरूप के बीच विद्यमान अंतर को रेखांकित करते हैं।

भ्रष्टाचार उनके राजनीतिक चिंतन का एक केंद्रीय विषय है। उनके उपन्यासों में सरकारी योजनाओं का लाभ वास्तविक पात्रों तक नहीं पहुँच पाता, क्योंकि प्रशासनिक व्यवस्था में भ्रष्टाचार, पक्षपात और अनियमितताएँ व्याप्त हैं। सरकारी अधिकारी, स्थानीय प्रभावशाली लोग तथा राजनीतिक नेतृत्व कई बार व्यक्तिगत लाभ को प्राथमिकता देते हैं। परिणामस्वरूप ग्रामीण जनता, किसान, मजदूर और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग विकास योजनाओं से वंचित रह जाते हैं। लेखक स्पष्ट करते हैं कि भ्रष्टाचार केवल आर्थिक समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए गंभीर चुनौती है।सत्ता के दुरुपयोग और प्रशासनिक उदासीनता का चित्रण भी नौटियाल के उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता है। पर्वतीय क्षेत्रों की मूलभूत समस्याएँ 'जैसे सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, सिंचाई और रोजगार' लंबे समय तक उपेक्षित रहती हैं। प्रशासन जनता की वास्तविक आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील दिखाई नहीं देता। लेखक इन परिस्थितियों का चित्रण करते हुए यह प्रश्न उठाते हैं कि यदि शासन व्यवस्था का उद्देश्य जनकल्याण है, तो आम नागरिक अब भी बुनियादी सुविधाओं से

क्यों वंचित है। उनके पात्र इस व्यवस्था की विसंगतियों को अनुभव करते हैं और अनेक बार उसके विरुद्ध अपनी असहमति भी व्यक्त करते हैं।

भाषा एवं शैली :

नौटियाल की भाषा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष स्थानीय शब्दावली और लोकभाषा का सशक्त प्रयोग है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचल में प्रचलित गढ़वाली शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों तथा लोक–अभिव्यक्तियों का उन्होंने अत्यंत स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया है। यह प्रयोग केवल भाषिक सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक पहचान और क्षेत्रीय परिवेश को प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्त करने के लिए किया गया है। स्थानीय शब्दावली के कारण उनके उपन्यासों में आंचलिक जीवन की आत्मीयता और वास्तविकता अधिक प्रभावशाली बन जाती है।

उपसंहार :

विद्यासागर नौटियाल हिन्दी उपन्यास परंपरा के ऐसे लेखक हैं जिन्होंने उत्तराखण्ड के समाज को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया। उनके उपन्यास सामाजिक यथार्थ के अनेक पक्षों गरीबी, जातीय विषमता, स्त्री संघर्ष, पलायन, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक परिवर्तन तथा मानवीय संवेदनाओं को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। उनका साहित्य केवल मनोरंजन नहीं बल्कि समाज को समझने का माध्यम भी है। इसलिए हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ के अध्ययन के लिए उनके उपन्यास अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ –आलोचनात्मक अध्ययन, पृ–21
2. डॉ. यॉगेंद्र प्रताप सिन्हा – आधुनिक हिंदी निबंध, पृ–36
3. विद्यासागर नौटियाल – सूरज सबका है, पृ–15–16
4. विद्यासगर नौटियाल – देश भक्टोन के कैद में, पृ–33
5. विद्यासागर नौटियाल – सूरज सबका है, पृ–20
6. विद्यासागर नौटियाल – उत्तर बायॉ है, पृ–1

मोबाइल – 9848479101

gouseshrk@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 110-113

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रचार प्रसार में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

अलका यादव, शोधकर्त्री
डॉ. सन्जू, प्राचार्या
श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।

सारांश :

प्रस्तुत शोध पत्र का 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रचार–प्रसार में जनसंचार माध्यमों की भूमिका' के अध्ययन पर आधारित है। शिक्षा नीति में किए गए क्रांतिकारी बदलावों जैसे – स्कूली शिक्षा का नया ढांचा (5+3+3+4), मातृभाषा में शिक्षण तथा कौशल विकास को जन–जन तक सरल रूप में पहुँचाने के लिए मीडिया ने एक सेतु के रूप में कार्य किया है। इस अध्ययन में द्वितीयक आंकड़ों के आधार पर प्रिंट (समाचार पत्र–पत्रिकाएं), इलेक्ट्रॉनिक (दूरदर्शन, आकाशवाणी) और न्यू डिजिटल मीडिया (सोशल मीडिया, यूट्यूब, सरकारी वेब पोर्टल) के योगदान का मूल्यांकन किया गया है।

अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि जहाँ प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने ग्रामीण व दूरदराज के क्षेत्रों में नीतिगत जागरूकता बढ़ाने का काम किया, वहीं डिजिटल माध्यमों ने शहरी युवाओं और शिक्षकों के बीच संवाद को तीव्र किया है। हालांकि, शोध में 'डिजिटल विभाजन' और सोशल मीडिया पर प्रसारित होने वाली भ्रामक जानकारियों को प्रमुख चुनौतियों के रूप में रेखांकित किया गया है। अंत में, यह सुझाव दिया गया है कि नीति के दीर्घकालिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जनसंचार माध्यमों को स्थानीय बोलियों और निरंतर प्रगति–रिपोर्टिंग पर अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए ताकि यह नीति एक जन–आंदोलन का रूप ले सके।

तकनीकी शब्दावली :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, जनसंचार माध्यम, प्रिंट मीडिया, डिजिटल मीडिया, जन–जागरूकता, शिक्षा मंत्रालय।

1. प्रस्तावना :

29 जुलाई 2020 को भारत सरकार द्वारा घोषित 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' देश की 34 वर्ष पुरानी शिक्षा

नीति (1986) को प्रतिस्थापित करती है। इस नीति का मुख्य उद्देश्य भारत को एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाना है। किसी भी लोकतांत्रिक देश में इतनी बड़ी और युगांतरकारी नीति की सफलता केवल उसके दस्तावेजीकरण पर नहीं, बल्कि समाज के अंतिम व्यक्ति तक उसकी सही समझ पहुँचने पर निर्भर करती है। यहीं पर जनसंचार माध्यमों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। जनसंचार माध्यम समाज में नीतिगत साक्षरता लाने का सबसे सशक्त उपकरण हैं।

2. शोध की आवश्यकता :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्कूली शिक्षा की (5+3+3+4) संरचना, मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा, बहु–विषयक दृष्टिकोण एवं 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' (ABC) जैसी जटिल व क्रांतिकारी अवधारणाएँ शामिल हैं। आम जनता, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के अभिभावकों और शिक्षकों के मन में इन बदलावों को लेकर कई भ्रांतियाँ और जिज्ञासाएँ हैं। जनसंचार माध्यम इन जटिलताओं को सरल भाषा में समझाकर नीति के प्रति सकारात्मक माहौल तैयार करने का काम करते हैं। अतः इस विषय पर शोध करना प्रासंगिक है कि मीडिया इस जिम्मेदारी को कितनी प्रभावी ढंग से निभा रहा है।

3. शोध के उद्देश्य :

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख प्रावधानों को जन–जन तक पहुँचाने में मीडिया के विभिन्न रूपों (प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और डिजिटल) के योगदान का अध्ययन करना।
- नीति के प्रचार–प्रसार में पारंपरिक जनसंचार और आधुनिक सोशल मीडिया के तुलनात्मक प्रभाव का अध्ययन करना।
- नीति कार्यान्वयन के मार्ग में जनसंचार माध्यमों के समक्ष आने वाली चुनौतियों और सीमाओं का अध्ययन करना।

4. शोध कार्यप्रणाली :

प्रस्तुत शोध पत्र मुख्य रूप से द्वितीयक डेटा पर आधारित है। इसके लिए भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय, प्रेस सूचना ब्यूरो, विभिन्न प्रतिष्ठित समाचार पत्रों के संपादकीय, अकादमिक जर्नल्स, प्रसार भारती (दूरदर्शन एवं आकाशवाणी) की रिपोर्ट और प्रमुख सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर उपलब्ध सरकारी व गैर–सरकारी अभियानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

5. जनसंचार माध्यमों का वर्गीकरण एवं उनकी भूमिका :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के व्यापक प्रचार–प्रसार में जनसंचार के विभिन्न स्तंभों ने अलग–अलग स्तर पर योगदान दिया है, जिसे नीचे दी गई तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है –

जनसंचार का माध्यम	मुख्य उपकरण	प्रचार का तरीका
प्रिंट–मीडिया	समाचार पत्र पत्रिकाएं,	नीति के तकनीकी पक्षों का विस्तृत विश्लेषण, बुद्धिजीवियों और शिक्षकों के लिए।
इलेक्ट्रॉनिक मीडिया	दूरदर्शन, आकाशवाणी, प्रादेशिक टीवी	टॉक शो, 'पीएम ई–विद्या', 'स्वयं प्रभा' चौनल। ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों के लिए सर्वश्रेष्ठ।
डिजिटल व सोशल मीडिया	यूट्यूब, एक्स (ट्विटर), 'दीक्षा'	इन्फोग्राफिक्स, शॉर्ट वीडियो और वेबिनार। युवाओं और तकनीकी रूप से सक्रिय समाज के लिए।

- **प्रिंट मीडिया की भूमिका :–** समाचार पत्रों और पत्रिकाओं ने नीति की घोषणा के बाद से ही लगातार इसके सकारात्मक और आलोचनात्मक पक्षों पर लेख प्रकाशित किए हैं। क्षेत्रीय भाषाओं के समाचार पत्रों ने ग्रामीण अंचलों में स्थानीय भाषा में नीति के प्रावधानों (जैसे– मातृभाषा में शिक्षा) को समझाकर अभिभावकों के डर को दूर किया है।
- **इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (रेडियो और टेलीविजन) :–** भारत सरकार ने 'पीएम ई–विद्या' कार्यक्रम और 'स्वयं प्रभा' के 34 डीटीएच चैनलों के माध्यम से न केवल नीति का प्रचार किया, बल्कि इसके तहत डिजिटल शिक्षा को सीधे घरों तक पहुँचाया। आकाशवाणी पर परिचर्चाओं के माध्यम से अनपढ़ या कम पढ़े–लिखे आबादी तक यह संदेश पहुँचाया गया कि नई शिक्षा नीति उनके बच्चों के कौशल विकास के लिए कितनी जरूरी है।
- **न्यू मीडिया व डिजिटल माध्यम :–** यूट्यूब पर शिक्षाविदों के व्याख्यान, भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के सोशल मीडिया हैंडल्स द्वारा जारी छोटे इन्फोग्राफिक्स और 'दीक्षा' पोर्टल ने शिक्षकों के प्रशिक्षण और नीति के व्यावहारिक क्रियान्वयन को बेहद सुगम और संवादात्मक बना दिया है।

6. जनसंचार माध्यमों के समक्ष चुनौतियाँ :

- **सूचनाओं की अधिकता और भ्रांतियाँ :–** सोशल मीडिया पर कई बार अधूरी या भ्रामक जानकारियां प्रसारित हुईं, जिससे असमंजस की स्थिति पैदा हुई।
- **डिजिटल विभाजन :–** भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच इंटरनेट कनेक्टिविटी और तकनीकी साक्षरता में भारी अंतर है, जिससे डिजिटल मीडिया का लाभ हर वर्ग तक समान रूप से नहीं पहुँच पाया।
- **व्यावसायिकता बनाम जन–सरोकार :–** मुख्यधारा के कई निजी समाचार चौनलों पर शिक्षा जैसे गंभीर विषयों के बजाय सनसनीखेज खबरों को अधिक समय दिया जाता है, जिससे नीति पर गंभीर बहसें

हाशिए पर चली जाती हैं।

7. निष्कर्ष और सुझाव :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 केवल एक प्रशासनिक दस्तावेज नहीं, बल्कि भारत के भविष्य का खाका है। जनसंचार माध्यमों ने इसके व्यापक प्रचार में एक सेतु की तरह काम किया है, जिसने सरकार की नीति को जनता की मांग में बदलने का प्रयास किया है।

- **स्थानीय बोलियों का प्रयोग :–** जनसंचार माध्यमों को नीति के लाभ समझाने के लिए शुद्ध हिंदी या अंग्रेजी के बजाय स्थानीय बोलियों और लोक–माध्यमों का सहारा लेना चाहिए।
- **फैक्ट–चेकिंग तंत्र :–** शिक्षा मंत्रालय को मीडिया के साथ मिलकर एक समर्पित फैक्ट–चेक सेल बनाना चाहिए ताकि नीति से जुड़ी किसी भी अफवाह का तुरंत खंडन किया जा सके।
- **निरंतरता :–** प्रचार केवल नीति लागू होने के शुरुआती वर्षों तक सीमित न रहे, बल्कि जैसे–जैसे इसके चरण (जैसे 2030 और 2035 के लक्ष्य) नजदीक आएं, मीडिया को इसकी प्रगति रिपोर्ट जनता के सामने पेश करते रहनी चाहिए।

8. संदर्भ ग्रंथ सूची :

- कुलश्रेष्ठ एस. पी. ''शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कस्तूरीरंगन समिति रिपोर्ट, शिक्षा मंत्रालय।
- प्रेस सूचना ब्यूरो रिपोर्ट्स (2020–2026)
- एनईपी 2020 के कार्यान्वयन की प्रगति।
- कुमार, के. (2021), आधुनिक जनसंचार और भारतीय शिक्षा व्यवस्था, सामयिक प्रकाशन।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 114-117

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता : एक समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ. निरंजन कुंभकार

ग्राम–जोजोहातु, पोस्ट–दलभंगा, प्रखण्ड–कुचाई, जिला–सरायेकेला–खरसावाँ, झारखण्ड–833216

सार (Abstract)

भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता एक जटिल और बहुआयामी समस्या रही है, जिसने सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकता और लोकतांत्रिक मूल्यों को गहराई से प्रभावित किया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता के ऐतिहासिक विकास, उसके कारणों, स्वरूपों, प्रभावों तथा समाधान की संभावनाओं का विश्लेषण करना है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सांप्रदायिकता केवल धार्मिक असहिष्णुता का परिणाम नहीं, बल्कि राजनीतिक स्वार्थ, सामाजिक असमानता और ऐतिहासिक परिस्थितियों का संयुक्त उत्पाद है।

मुख्य शब्द : सांप्रदायिकता, भारतीय राजनीति, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक समरसता, लोकतंत्र।

1. प्रस्तावना :

भारत एक बहुधार्मिक, बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक राष्ट्र है, जहाँ विभिन्न धर्मों और समुदायों का सह–अस्तित्व इसकी पहचान रहा है। किंतु इस विविधता के बीच सांप्रदायिकता ने समय–समय पर सामाजिक और राजनीतिक संकट उत्पन्न किए हैं। सांप्रदायिकता का तात्पर्य उस विचारधारा से है, जिसमें व्यक्ति अपने धर्म या समुदाय को सर्वोपरि मानते हुए अन्य समुदायों के प्रति असहिष्णुता और विरोध की भावना रखता है।

भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता का प्रयोग सत्ता प्राप्ति के साधन के रूप में भी किया गया है, जिससे यह एक गंभीर अध्ययन का विषय बन जाता है।

2. सांप्रदायिकता की संकल्पना और स्वरूप :

सांप्रदायिकता एक मानसिकता है, जो धार्मिक पहचान को राजनीतिक और सामाजिक पहचान से जोड़ देती है। इसके मुख्य स्वरूप निम्नलिखित हैं –

- **सांस्कृतिक सांप्रदायिकता :** अपने धर्म की श्रेष्ठता का प्रचार।
- **राजनीतिक सांप्रदायिकता :** धर्म के आधार पर वोट बैंक बनाना।
- **आर्थिक सांप्रदायिकता :** संसाधनों के वितरण में भेदभाव।

3. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता की जड़ें औपनिवेशिक काल में गहराई से पाई जाती हैं।

3.1 ब्रिटिश शासन और "फूट डालो और राज करो" नीति :

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय समाज को विभाजित करने के लिए धर्म के आधार पर भेदभाव को बढ़ावा दिया। 1909 के मार्ले–मिंटो सुधारों में पृथक निर्वाचन प्रणाली लागू की गई, जिसने सांप्रदायिकता को संस्थागत रूप दिया।

3.2 स्वतंत्रता आंदोलन और सांप्रदायिकता :

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी सांप्रदायिक तनाव बढ़ता गया। महात्मा गांधी ने हिंदू–मुस्लिम एकता पर बल दिया, जबकि मोहम्मद अली जिन्ना ने द्विराष्ट्र सिद्धांत का समर्थन किया।

3.3 भारत विभाजन (1947) :

भारत का विभाजन सांप्रदायिकता का सबसे भयावह परिणाम था, जिसमें लाखों लोग विस्थापित और मारे गए।

4. स्वतंत्र भारत में सांप्रदायिकता :

स्वतंत्रता के बाद भारत ने स्वयं को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया, किंतु सांप्रदायिकता समाप्त नहीं हुई।

4.1 राजनीतिक दलों की भूमिका :

कई राजनीतिक दलों ने धार्मिक भावनाओं का उपयोग कर वोट बैंक तैयार किए। इससे सांप्रदायिक ध्रुवीकरण बढ़ा।

4.2 सांप्रदायिक दंगे :

भारत में समय–समय पर अनेक सांप्रदायिक दंगे हुए, जैसे –

- 1984 के सिख विरोधी दंगे।
- 1992 के बाद की घटनाएँ (बाबरी मस्जिद विवाद)
- 2002 के गुजरात दंगे।

ये घटनाएँ दर्शाती हैं कि सांप्रदायिकता केवल विचार नहीं, बल्कि हिंसात्मक रूप भी धारण कर सकती है।

5. सांप्रदायिकता के कारण :

5.1 राजनीतिक स्वार्थ :

राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति के लिए धार्मिक भावनाओं का दुरुपयोग करते हैं।

5.2 सामाजिक असमानता :

गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी जैसी समस्याएँ सांप्रदायिक तनाव को बढ़ाती हैं।

5.3 ऐतिहासिक पूर्वाग्रह :

इतिहास की घटनाओं को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत करना भी सांप्रदायिकता को बढ़ावा देता है।

5.4 मीडिया और अफवाहें :

सोशल मीडिया के दौर में गलत सूचनाएँ तेजी से फैलती हैं, जिससे सांप्रदायिक तनाव बढ़ता है।

6. भारतीय संविधान और धर्मनिरपेक्षता :

भारतीय संविधान ने धर्मनिरपेक्षता को मूल सिद्धांत के रूप में अपनाया है।

- सभी धर्मों को समान सम्मान।
- धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार।
- राज्य का किसी धर्म से कोई संबंध नहीं।

भारतीय संविधान सभा ने इस सिद्धांत को लोकतंत्र की आधारशिला माना।

7. सांप्रदायिकता के प्रभाव :

7.1 सामाजिक प्रभाव :

- समाज में विभाजन और अविश्वास।
- भाईचारे की भावना का ह्रास।

7.2 राजनीतिक प्रभाव :

- लोकतंत्र की गुणवत्ता में गिरावट।
- नीति निर्माण में पक्षपात।

7.3 आर्थिक प्रभाव :

- निवेश और विकास पर नकारात्मक प्रभाव।
- दंगों के कारण संपत्ति का नुकसान।

8. सांप्रदायिकता और शिक्षा :

शिक्षा सांप्रदायिकता को कम करने का प्रभावी माध्यम हो सकती है।

- नैतिक शिक्षा का समावेश।
- विविधता के प्रति सम्मान।
- इतिहास का वस्तुनिष्ठ अध्ययन।

9. समाधान और सुझाव :

9.1 राजनीतिक सुधार :

- धर्म आधारित राजनीति पर नियंत्रण।
- चुनाव आयोग की सख्ती।

9.2 सामाजिक जागरूकता :

- धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा।
- सामुदायिक संवाद।

9.3 शिक्षा और मीडिया की भूमिका :

- जिम्मेदार पत्रकारिता।
- फेक न्यूज पर नियंत्रण।

9.4 कानूनी उपाय :

- सांप्रदायिक हिंसा के खिलाफ कठोर कानून।

- त्वरित न्याय प्रणाली।

10. निष्कर्ष :

भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता एक गंभीर चुनौती है, जो देश की एकता और लोकतंत्र को कमजोर करती है। इसका समाधान केवल कानूनों से नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, शिक्षा और नैतिक मूल्यों के विकास से संभव है।

भारत की शक्ति उसकी विविधता में निहित है, और यदि इस विविधता को एकता में परिवर्तित किया जाए, तो सांप्रदायिकता स्वतः समाप्त हो सकती है।

संदर्भ सूची (References)

1. बिपिन चंद्र : आधुनिक भारत का इतिहास
2. रामचंद्र गुहा – India After Gandhi
3. भारतीय संविधान।
4. एनसीईआरटी : राजनीति विज्ञान की पुस्तकें।
5. विभिन्न शोध पत्र एवं जर्नल लेख।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 118-119

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वर्तमान में राजस्थान में मरूस्थलीकरण की समस्या

हेमा राम जाट
सुपुत्र श्री श्रवण राम
गांव नराधणा, तहसील जायल, जिला नागौर।

प्रस्तावना –

राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है, जिसका लगभग 60 प्रतिशत भाग शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्र में आता है। राज्य का पश्चिमी भाग प्रसिद्ध थार मरुस्थल का हिस्सा है। पिछले कुछ दशकों में जलवायु परिवर्तन, कम वर्षा, भूजल का अत्यधिक दोहन, वनों की कटाई तथा बढ़ती जनसंख्या के कारण मरुस्थलीकरण की समस्या लगातार बढ़ रही है। यह केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं है, बल्कि कृषि, पशुपालन, जल संसाधनों, जैव विविधता और लोगों के जीवन पर भी गंभीर प्रभाव डाल रही है।

मरूस्थलीकरण का अर्थ –

मरुस्थलीकरण (Desertification) वह प्रक्रिया है जिसमें उपजाऊ भूमि धीरे–धीरे अपनी उर्वरता खोकर बंजर या रेगिस्तान जैसी बन जाती है। इस प्रक्रिया में मिट्टी की गुणवत्ता घटती है, वनस्पति कम हो जाती है और भूमि की उत्पादक क्षमता लगातार कम होती जाती है।

राजस्थान में वर्तमान स्थिति –

राजस्थान मरुस्थलीकरण से सबसे अधिक प्रभावित राज्यों में से एक है। पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, चूरू, श्रीगंगानगर, नागौर और जालौर जैसे जिलों में यह समस्या अधिक गंभीर है। अब यह समस्या धीरे–धीरे राज्य के पूर्वी और दक्षिणी भागों तक भी फैल रही है। जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान बढ़ रहा है तथा वर्षा अनियमित होती जा रही है, जिससे भूमि का क्षरण तेज़ी से हो रहा है।

मरूस्थलीकरण के प्रमुख कारण –

1. **कम एवं अनियमित वर्षा :** राजस्थान में वर्षा बहुत कम होती है तथा उसका वितरण असमान है। इससे भूमि में नमी की कमी बनी रहती है।
2. **पवन अपरदन :** तेज हवाएँ उपजाऊ मिट्टी को उड़ाकर ले जाती हैं, जिससे भूमि बंजर होती जाती है।
3. **वनों की कटाई :** ईंधन, खेती और शहरीकरण के कारण पेड़ों की कटाई से मिट्टी का संरक्षण कम हो जाता है।
4. **अत्यधिक चराई :** पशुओं की अधिक संख्या के कारण घास और वनस्पति समाप्त होती है तथा मिट्टी खुली रह जाती है।

5. **भूजल का अत्यधिक दोहन :** लगातार भूजल निकालने से जल स्तर नीचे चला जाता है और भूमि की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

6. **अनुचित कृषि पद्धतियाँ :** एक ही फसल बार–बार बोना, अधिक सिंचाई तथा रासायनिक उर्वरकों का असंतुलित उपयोग भी भूमि को नुकसान पहुँचाता है।

मरूस्थलीकरण के प्रभाव –

मरुस्थलीकरण का सबसे बड़ा प्रभाव कृषि पर पड़ता है। भूमि की उर्वरता कम होने से फसल उत्पादन घटता है। जल स्रोत सूखने लगते हैं और पेयजल संकट बढ़ जाता है। पशुओं के लिए चारा कम हो जाता है। धूल भरी आँधियाँ बढ़ती हैं तथा जैव विविधता को नुकसान पहुँचता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोज़गारी और पलायन जैसी सामाजिक समस्याएँ भी बढ़ती हैं।

सरकार द्वारा किए गए प्रयास –

राजस्थान सरकार और भारत सरकार मरुस्थलीकरण रोकने के लिए कई योजनाएँ चला रही हैं। इनमें वृक्षारोपण, जल संरक्षण, वर्षा जल संचयन, मृदा संरक्षण, ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई को बढ़ावा, चरागाह विकास तथा जन–जागरूकता अभियान प्रमुख हैं। मनरेगा जैसी योजनाओं के माध्यम से तालाब, जोहड़ और जल संरक्षण संरचनाओं का निर्माण भी किया जा रहा है।

मरूस्थलीकरण रोकने के उपाय –

- बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण करना।
- वर्षा जल का संग्रह एवं संरक्षण।
- भूजल का संतुलित उपयोग।
- पवन रोकने के लिए हरित पट्टियों का विकास।
- नियंत्रित चराई को बढ़ावा देना।
- आधुनिक एवं जल–संरक्षण आधारित कृषि पद्धतियाँ अपनाना।
- लोगों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाना।

निष्कर्ष –

मरुस्थलीकरण राजस्थान की सबसे बड़ी पर्यावरणीय चुनौतियों में से एक है। यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए, तो कृषि, जल संसाधनों और मानव जीवन पर इसके गंभीर परिणाम होंगे। सरकार, वैज्ञानिकों और आम नागरिकों के संयुक्त प्रयासों से ही इस समस्या पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकता है। जल संरक्षण, वृक्षारोपण और प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग ही राजस्थान के सतत विकास का आधार बन सकता है।

नाम – हेमा राम जाट
पिता का नाम – श्रवण राम
पता – गांव नराधणा तहसील जायल जिला नागौर।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 120-124

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन भारत में महिला दास प्रथा

आकाश गुप्ता
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रस्तावना :

दासता का इतिहास प्राचीन काल से लेकर आज तक कई संस्कृतियों, राष्ट्रीयताओं, और धर्मों तक फैला हुआ है। हालांकि दासों की सामाजिक,आर्थिक और कानूनी स्थिति समय और स्थानों के अनुरूप समय–समय पर बदलती रही है, और महिला दास प्रथा भी इसका एक विशिष्ट भाग है। मध्यकालीन भारत में महिला दास प्रथा अपनी चरम सीमा पर थी। विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि मध्यकालीन भारतीय शासकों जैसे दिल्ली सल्तनत के सुल्तान, राजपूत राजाओं, विभिन्न क्षेत्रीय रियासतों के दरबारों में तथा हरम में दसियों का उपयोग विभिन्न कार्यों को कार्यान्वित कराने के लिए किया जाता था।

13वीं शताब्दी में चालुक्य राजवंश से संबंधित एक स्त्रोत 'लेखा–पद्धति' के द्वारा हमें मध्यकालीन भारत में महिला दसियों के संदर्भ में विश्वसनीय तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है। इस लेख–पद्धति के 'सवयगमाता–दासी–पत्र–विधि' से एक उद्धरण प्राप्त होता है जिसमें अकाल के कारण एक महिला का दासी के रूप में रूपांतरण का चित्रण किया गया है। जिसे बाद में मल्लेछ द्वारा बेचा जाता है।

इसके अतिरिक्त कई अन्य समकालीन दरबारी कवि, इतिहासकार, तथा यात्रियों द्वारा भी दासियों का उल्लेख अपने काव्य लेखनों तथा यात्रा वृतांतों में किया गया है। उदाहरणार्थ बर्नी ने अपनी पुस्तक 'तारीख–ए–फिरोजशाही', इब्नबतूता ने अपने 'रेहला', अमीर खुसरो ने अपनी पुस्तक 'नुह–सिपर', अल उमरी ने 'मसालिक–उल–अबसार–फी–मुमालिक–उल–अमसार' में इसकी चर्चा की है। दास बनाने की प्रक्रिया, उसके महत्वपूर्ण पहलू, उसकी विशेषताएं, तथा एक निरंतर चलने वाला सामाजिक विभाजन और दासता का शोषणकारी चरित्र भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। और इस व्यवस्था में महिलाओं का अत्यधिक शोषण होता था। समकालीन स्रोतों से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ना केवल अभिजात वर्ग, अपितु साधारण वर्ग में भी दांसों का भरपूर उपयोग किया जाता था। पुरुष तथा महिलाएं दोनों ही इस व्यवस्था का अभिन्न अंग थी। इन दासों का बाजार लगाया जाता था, तथा उनके रूप, उनकी सुंदरता, संरचना, बुद्धिमता, तथा कार्य करने की क्षमता के अनुरूप ही उनका मूल्य तय किया जाता था। और इस में भी महिलाओं का शोषण कई प्रकार से किया जाता था। जैसे कि बरनी द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों के से ज्ञात होता है कि 'एक आम दासी की कीमत 5 से 12 टंका होती थी'। उसी प्रकार इब्नबतूता लिखता है कि 'बंगाल में एक निपुण, सौंदर्य और प्रतिभावान दासी को एक सोने के दिनार से खरीदा जा सकता था'।

आमतौर पर महिला दासियों का उपयोग घरेलू कार्यों को करवाने के लिए जैसे कि भोजन बनाने, पानी भरकर लाने, साफ–सफाई तथा बच्चों के पालन पोषण के लिए किया जाता था। यह दासी के द्वारा किए जाने वाले दैनिक कार्य होते थे। परंतु इनका एक अन्य उपयोग 'शारीरिक उपभोग' की वस्तु के रूप में भी किया जाता था। इसके अतिरिक्त राजाओं के हरम में भी दासिया रानियों के साथ रहती थी। तथा कई दासियों को 'उप–पत्नियों' के रूप में रखा जाता था। और भारत के दक्षिणी हिस्से में 'देवदासी प्रथा' भी प्रचलन में थी। इन दासियों का प्रयोग राजाओं द्वारा अपनी विदेशी कूटनीति को संचालित करने के लिए भी किया जाता था। तथा सुल्तान अपने रईसों का पक्ष प्राप्त करने के लिए भी दासियों को उपहार के रूप में उपयोग करते थे। जमींदार भी राजा को दास उपहार के रूप में प्रस्तुत करते थे। इब्नबतूता ने अपने वृत्तांत में दासों के इस प्रकार के लेनदेन का वर्णन किया है। इब्नबतूता ने 'मोहम्मद तुगलक की मां को एक दासी उपहार स्वरूप भेंट की, जिसके बदले में इब्नबतूता को एक हजार रुपए, सोने के गहने तथा महंगी पोशाके प्राप्त हुई'। इसके अतिरिक्त यह दास प्रथा आधुनिक भारत में भी प्रचलन में बनी रही। तथा इस कुप्रथा का अंत सन 1843 में ब्रिटिश गवर्नर जनरल 'एलनब्रो' ने 1833 के चार्टर अधिनियम द्वारा किया था।

इतिहास लेखन :

बी.जी. तमसकर अपनी पुस्तक 'द लाइफ एंड वर्क ऑफ मलिक अंबर' में मलिक अंबर के बारे में विस्तृत विवरण उपलब्ध करवाते हैं। मलिक अंबर एक इथियोपियाई दास था। जिसका विभिन्न व्यापारियों द्वारा कई स्तरों पर क्रय विक्रय किया गया था। मलिक अंबर का अंतिम मालिक अभंग खान था। जिसके अंतर्गत मलिक अंबर ने अपनी शक्ति को संगठित किया तथा खुद को एक शक्तिशाली सैनिक और योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया। मलिक अंबर द्वारा निजामशाही वंश को एक गौरवान्वित इतिहास प्रदान किया गया था। इस पुस्तक में 'एक दास द्वारा' किसी राज्य के गठन, उसके प्रशासनिक सुदृढ़ीकरण, और सैनिक उपलब्धियों में किए गए योगदान का प्रशंसनीय विवरण दिया गया है। जिससे हमें समकालीन समाज में प्रचलित दासों के सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आदि विभिन्न आयामों के बारे में महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त होते हैं। परंतु इस पुस्तक की कुछ सीमाएं भी हैं, उदाहरण के लिए यह पुस्तक पूर्ण रूप से मलिक अंबर और उनके जीवन क्रियाकलापों पर आधारित तथ्य ही उपलब्ध कराती है, मलिक अंबर के अतिरिक्त उस समय के अन्य दासो, के बारे में हमें सीमांत जानकारियां ही प्राप्त होती हैं। विशेषकर किसी महिला–दास के बारे में कोई भी तथ्य इस पुस्तक से प्राप्त नहीं होता। महिलाओं की और विशेषकर महिला दासों की किसी भी प्रकार की स्थिति के बारे में इस पुस्तक से कोई ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

रिचर्ड. एम. ईटन. अपनी पुस्तक 'स्लेवरी एंड साउथ एशियन हिस्ट्री' में दासता पर अत्यधिक ध्यान केंद्रित करते हैं। इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों द्वारा दासता के विभिन्न परिप्रेक्ष्य को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। इस पुस्तक में दास के विभिन्न रूपों को दर्शाया गया है, दास बनने की विभिन्न प्रक्रियाओं, स्थितियों, दरबार में उनके आगमन तथा दासों के बीच विभिन्नता और महिला दासों के बारे में भी महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध करवाने की कोशिश की गई है। जैसे कि 'दाऊद अली' द्वारा एक अध्याय में चोल कालीन दासों का विवरण उपलब्ध कराया गया है। जिसमें कि वह परियार और पल्लारों के बारे में बताते हैं कि वह एक प्रकार के बंदी थे, तेवतारिया (देवदासी) जो कि घर में श्रम देने के अतिरिक्त मंदिरों में भी अपना श्रम

देती थी।

इसके अतिरिक्त एक अध्याय में 17वीं सदी से लेकर 19वीं सदी के बीच दासता के इतिहास पर उपलब्ध विभिन्न स्रोतों के आधार पर राजपूतों समाजों में प्रचलित दासों की विभिन्न प्रणालियों पर भी चर्चा की गई है। जिसमें समकालीन समाज द्वारा दास बनाने की विभिन्न प्रक्रियाओं का उल्लेख मिलता है, तथा राजपूत हरम में या दरबार में महिला दासियों के विभिन्न प्रकार, और विभिन्न दायित्वों, कार्यों, समाजिक स्थानों, आदि के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए 'जेम टोड' ने 1829 में कहा कि हजारों महिलाओं को भयंकर भुखमरी के कारण पिछले साल भेज दिया गया था। जिसे यह प्रकट होता है कि भूखमरी, अकाल और प्राकृतिक आपदाएं भी दास प्रजनन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। इस पुस्तक में विभिन्न महिला दासों तथा उनके बीच विभेदीकरण के अवशेष मिलते हैं। कहीं अध्यायों के द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है कि किस प्रकार पुरुष दासों तथा महिला दासों दोनों में ही विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक असमानता व्याप्त थी।

इसके अतिरिक्त आधुनिक भारत की एक केस स्टडी द्वारा भी ब्रिटिशर्स के अधीन भारतीय दास व्यवस्था क्या स्वरूप था? विशेषकर महिला दासों को किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना होता था, तथा किस प्रकार के चुनौतियों का सामना आधुनिक समाज में दासियों द्वारा किया जा रहा था आदि, का ज्ञान इस पुस्तक के विभिन्न अध्ययनों से प्राप्त होता है। परंतु इस पुस्तक में भी दक्षिण भारतीय राज्यों तथा समाजों और क्षेत्रों के बारे में दास प्रथा से संबंधित, विशेषकर दक्षिण भारतीय महिला दासियों पर कोई विशेष ध्यान केंद्रित नहीं किया गया है।

शादाब बानो ने अपने लेख 'वूमेन स्लेव्स इन मेडीवल इंडिया' में दासियों से संबंधित विभिन्न आयाम प्रस्तुत किए हैं। विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर शादाब बानो ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार इस दास प्रथा के द्वारा महिलाओं का शारीरिक और मानसिक शोषण किया जा रहा था। तथा अपनी सामाजिक स्थिति के अंतर के कारण कुछ विशेष दासियां आर्थिक लाभ भी प्राप्त कर रही थी। दासियों की आर्थिक स्थिति और समाज में उनके स्थान दोनों का बहुत ही मार्मिक चित्रण इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। इसके लिए उन्होंने काफी ऐतिहासिक स्रोतों का प्रयोग किया है जैसे कि, लेखापद्धति, गुलबदन बेगम के लेख, सियाकनामा, बुकानन का सर्वे, मेलकम रिपोर्ट 1824, आदि। उनके द्वारा बहुत सी केस स्टडी भी दी गई है। परंतु इस लेख में भी दक्षिण भारतीय क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित नहीं किया गया है।

फरहत जहान भी अपनी पुस्तक 'डिपिक्शन ऑफ वूमेन इन द सोर्स ऑफ द दिल्ली सल्तनत (1206–1388)' में विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों के उपयोग द्वारा यह प्रकट करने की कोशिश करते हैं कि दिल्ली सल्तनत में महिला दासों का क्या स्थान था? तथा वह कौन से कारण थे, जिसके द्वारा भरपूर मात्रा में महिला दासो की आपूर्ति भारतीय बाजारों में की जाती थी? दिल्ली सल्तनत से संबंधित विभिन्न समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों द्वारा फरहत जहान ने महिला दासियों के हरम में प्रवेश से लेकर सुल्तानों की छत्रछाया में बेगम बनने तक की प्रक्रिया का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं। उदाहरण के लिए शाह तुर्कान, जोकि इल्तुतमिश की बेगम थी। परंतु उनका प्रारंभिक जीवन हरम में एक दासी के रूप में व्यतीत हुआ था। अपनी पुस्तक में वह महिला दासों के द्वारा दी जा रही विभिन्न सेवाओं के बारे में भी बताते हैं, कि किस प्रकार महिलाएं दासिया बनाई जाती थी?

तथा वह किन प्रकार के कार्यों का निर्वहन करती थी? जैसे उदाहरण स्वरूप, आम दासियां लोगों के घरों में दैनिक कार्य में संलग्न रहती थी। पानी भरकर लाना, खाना पकाना, शिशु की देखभाल करना, यह प्रत्येक दिन दासियों द्वारा किए जाने वाले साधारण कार्य थे। इसके अतिरिक्त 'वेश्यावृत्ति' के लिए दासियों का अत्यधिक उपयोग किया जाता था। हम यह भी समझ सकते हैं के दासियों द्वारा वेश्यावृत्ति करना मध्यकालीन भारतीय समाज की एक विशिष्ट विशेषता बन गई थी। समकालीन स्रोतों में वेश्यावृत्ति से संबंधित विभिन्न तथ्य उभरकर सामने आते हैं। जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि दासियों का अधिकतम प्रयोग केवल और केवल इसे कार्य के लिए किया जा रहा था। जिसमें समाज के विभिन्न तब के शामिल थे। परंतु फरहत जहान ने भी अपनी पुस्तक में राजपूतों और मुस्लिम सुल्तानों के दरबारों को ही स्थान दिया है। अन्य भारतीय स्थानों, क्षेत्रीय रियासतों के संदर्भ में यह पुस्तक भी मौन है।

शिंगल अंकुर अपने लेख 'द देवदासी सिस्टम : टेंपल प्रॉस्टिट्यूशन इन इंडिया' में देवदासी प्रथा की उत्पत्ति और उसके विकास के बारे में बताते हैं। वह बताते हैं कि देवदासी प्रथा का सबसे पहले उद्‌भव दक्षिण भारत में देखने के लिए मिलता है। जहां छठी शताब्दी में के केशारी साम्राज्य की महान रानियों में से एक ने देवताओं के सम्मानित करने के लिए, शास्त्रीय नृत्य में प्रशिक्षित महिलाओं को देवताओं से विवाह संपन्न करने का आदेश जारी किया। मुख्यतः यह प्रथा अपने आरंभिक में काफी सम्मानित थी। इसके द्वारा देवदासीयों को समाज में उचित स्थान की प्राप्ति हुई। परंतु अंकुर शिंगल बताते हैं कि किस प्रकार मुस्लिम और ब्रिटिशर्स के समय इस प्रथा में कुरीति उत्पन्न हुई, तथा देवदासीयों का समय अनुसार और परिस्थितियों के अनुसार सामाजिक स्तर नीचे गिरता गया। और अंत में यह वेश्यावृत्ति का एक पात्र बनकर रह गया। और आज भी भारत के कई बड़े शहरों जैसे मुंबई, पुणे, बेंगलुरु आदि में देवदासी के रूप में विभिन्न निम्न जातीय महिलाओं का अपरहण किया जा रहा है तथा उन्हें वेश्यावृत्ति के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है।

इंद्राणी चटर्जी अपनी पुस्तक 'स्लेव एंड हाउसहोल्ड इन बंगाल (1770–1880)' में दास प्रथा के विभिन्न स्वरूपों को वर्णित किया है। इस पुस्तक में दास प्रथा पर गहराई से एक विस्तृत, व्यापक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रदान किया गया है। यहां पर चटर्जी ने दास प्रथा को विभिन्न आयामों के साथ बांधकर देखने की कोशिश की है। जैसे कि बंगाल की समकालीन परिस्थितियों के अनुसार दास प्रथा में किस प्रकार बदलाव आए? केंद्र में बदलते हुए राजनीतिक समीकरणों के अनुरूप विभिन्न सत्ताधारीयों दासों का किस प्रकार उपयोग किया? दासता का नाते रिश्तेदारों के साथ किस प्रकार का संबंध था? किस प्रकार दासों को श्रमिक वर्ग के उत्थान के लिए, तथा श्रम वर्गीकरण को बनाए रखने के लिए उपयोग किया जा रहा था, इन सभी प्रश्नों का चटर्जी द्वारा बखूबी उत्तर दिया गया है। यहां पर महिला दांसों को भी स्थान दिया है, जिसके द्वारा यह बताया गया है कि महिलाओं को अत्यधिक शोषित वस्तु के रूप में इस्तेमाल किया गया ताकि ब्रिटिशर्स द्वारा अपने लाबो को अधिकतम सीमा तक पहुंचाया जा सके। कृषि तथा विभिन्न उद्योगों में उपयोग करने के लिए दासों के प्रजनन (Slave Reproduction) पर अधिक जोर दिया गया। और महिलाओं को इसके लिए बहुत अधिक इस्तेमाल किया गया। चटर्जी ने दसों के शोषण को दर्शाने के लिए कई अन्य परिप्रेक्ष्यों कभी उपयोग किया है। जैसे कर प्रणाली, विवाह संबंध, घरेलू दासता, कानूनी वैधता आदि। यह है दास प्रथा के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज के रूप में उपलब्ध है। इसका उपयोग आधुनिक बंगाल में दासों के बदलते स्वरूप को समझने के लिए किया

जा सकता है। परंतु दसों पर आधारित इसी प्रकार का कार्य भारत के अन्य क्षेत्रों में भी होने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ :

प्राथमिक स्रोत :

1. लेखा–पद्धति
2. रेहला (इब्नबतूता)
3. तारीख–ए–फिरोजशाही (जियाउद्दीन बरनी)
4. नुह–सिपर (अमीर खुसरो)
5. फूतूह–अस–सलातीन (इसामी)
6. मसालिक–उल–अबसार–फी–मुमालिक–उल–अमसा (अल उमरी)
7. अखबार–उल–अखियार (शेख अब्दुल हक मुहददिस)
8. फवाद–उल–फवाद (अमीर हसन सीजी)
9. सियार–उल–आरिफीन (शेख जमाली)
10. फूतूहात–आदिलशाही (फुजुनी अस्तराबादी)
11. तारीख–ए–फरिश्ता / गुलशन–ए–इब्राहिमी (फरिश्ता मोहम्मद)

द्वितीयक स्रोत :

1. बी. जी. तमसकर, द लाइफ एंड वर्क ऑफ मलिक अंबर (इदराह–ए–अदाबियात–ए–दिल्ली, 1978).
2. रिचर्ड. एम. ईटन, स्लेवरी एंड साउथ एशियन हिस्ट्री (इंडियन यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006).
3. इंद्रानी चटर्जी, स्लेवरी एंड हाउसहोल्ड इन बंगाल 1770–1880 (यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन, 1996).
4. फरहत जहान, डिपिक्शन ऑफ वूमेन इन द सोर्स ऑफ द दिल्ली सल्तनत 1206–1388 (अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, 2012).
5. शिंगल अंकुर, द देवदासी सिस्टमरू टेंपल प्रॉस्टिट्यूशन इन इंडिया (Journal UCLA Women's Law Journal, 2015).
6. शादाब बानो, वूमेन स्लेव्स इन मेडिवल इंडिया (Journal इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 2004).

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 125-130

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बिहार में अगस्त क्रांति और समाजवादी आंदोलन के प्रणेता : रामवृक्ष बेनीपुरी

कल्पना भारती, शोध अध्येता

प्रो. पंकज कुमार राय, शोध निर्देशक एवं आचार्य,

इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

सारांश :

रामवृक्ष बेनीपुरी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी सेनानी, समाजवादी चिंतक, साहित्यकार और पत्रकार थे। बिहार में 1942 की अगस्त क्रांति को जन–आंदोलन का स्वरूप देने में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने अपने लेखन, भाषणों और संगठनात्मक क्षमता से युवाओं, किसानों तथा छात्रों में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। वे समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे और सामाजिक समानता, किसानों के अधिकार तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के पक्षधर रहे। एक राजनीति कर्मी की हैसियत से स्वाधीनता आन्दोलन में अनेक बार जेल गये। उन्होंने लगभग नौ साल जेल में गुजारे। उनकी राजनीति समाजवाद की राजनीति थी। बिहार में कई–कई समान–धर्मा युवकों के लिए 'युवक आश्रम" मिलन–स्थल बना हुआ था ही और 'युवक' का संपादन करते–करते रामवृक्ष समाजवाद और समाजवादी राजनीति की ओर बढ़ चले थे! लेकिन जब रामवृक्ष समान–धर्मा युवकों के साथ पटना कैंप जेल पहुंचे तब बिहार में समाजवाद और उसकी राजनीति की गहरी नींव पड़ गई। पटना कैंप जेल में वे कैडर तैयार हुए, जो आगे चलकर बिहार में समाजवाद के प्रचारक, योद्धा और नायक सिद्ध हुए। देश की आजादी और उसके उत्थान को लेकर बेनीपुरी जी की विचारधारा एकदम स्पष्ट थी। उसे लेकर किसी तरह का समझौता उन्हें गवारा न था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उन्होंने देश के विकास के लिए अपने प्रयासों में किसी तरह की ढील न आने दी।

मुख्य शब्द : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, समाजवादी चिंतक, साहित्यकार, अगस्त क्रांति, जन–आंदोलन।

परिचर्चा :

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म 23 दिसंबर 1899 ई. को बिहार प्रांत के मुजफ्फरपुर जिले के बेनीपुर में एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम फूलवंत सिंह एवं दादा का नाम यदुनंदन सिंह था। बचपन में ही इनके माता–पिता का देहांत हो गया था। मैट्रिक की पढ़ाई के लिए वे मुजफ्फरपुर गये। 1920 के असहयोग आन्दोलन के चलते उन्होंने स्कूली शिक्षा छोड़ दी। बिहार के समाजवादी आंदोलन के एक प्रमुख कर्णधार रामवृक्ष बेनीपुरी थे। उन्हें "कलम का जादूगर" के नाम से भी जाना जाता है। राजनीति से ज्यादा वे

अपनी साहित्यिक कृतियों के लिए जाने जाते हैं। वे बिहार के समाजवादी आंदोलन से शुरू से ही जुड़े रहे। जब 1931 ई. में बिहार सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ तो वे इसके संस्थापकों में से एक थे। वे जयप्रकाश नारायण, गंगाशरण सिंह, किशोरी प्रसन्न सिन्हा एवं बसावन सिन्हा जैसे समाजवादी नेताओं के सम्पर्क में आये। पटना में उन समाजवादी नेताओं की हमेशा जुटान होती थी और उनमें देश के भविष्य को लेकर बड़ा विवाद होता रहता था। रामवृक्ष बेनीपुरी अपनी विद्वत्ता से सबको चकाचौंध करते थे।

रामवृक्ष समाजवाद का नाम (उन दिनों 'साम्यवाद' कहा जाता था) रूस की क्रांति के बाद ही सुनने लगे थे। वह उन दिनों स्कूल में पढ़ रहे थे, और मुख्यतः गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' और माखनलाल चतुर्वेदी की 'प्रभा' में रूस में हो रहे संघर्षों और प्रयोगों का वर्णन पढ़ते थे। उन्हीं दिनों वह कल्पना करने लगे थे कि बड़े होने पर वह अपने देश में भी ऐसी दुनिया की स्थापना के लिए चेष्टा करेंगे। रूस एक नई सभ्यता का प्रतीक बन गया था, लेनिन–ट्राटस्की इस नई दुनिया के मसीहा थे। 1924 ई. में लेनिन की मृत्यु तक स्टालिन का नाम शायद ही कोई जानता था। लेनिन और ट्राटस्की की जोड़ी के साथ विदेश मंत्री की हैसियत से चेचरिन का भी नाम चर्चा में था, जो हर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर समता और स्वाधीनता का ऐसा उद्घोष करता था कि संसार चकित रह जाता था। पटना कैंप जेल में रामवृक्ष सहित करीब चार हजार कैदी थे। मुख्यतः युवक, जो देहातों से आए थे। उनके हृदय और मस्तिष्क में कोई मालिनता नहीं थी। किसी पूर्वधारणा से भी वे जड़े हुए नहीं थे। रामवृक्ष ने चुप–चोरी वहां समाजवाद पर कई पुस्तकें मंगा ली और वह बाजाब्ता अध्ययन केंद्र चलाने लगे। दूसरों को समाजवाद का ज्ञान कराया ही, स्वयं उन्होंने समाजवाद के सिद्धांतों का अध्ययन वहीं किया। वहीं उन्होंने 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' का अनुवाद किया। इस सब काम में उन्हें जेल के कुछ कर्मचारियों ने बहुत मदद की। वस्तुतः जेल अधिकारियों व कर्मचारियों ने मिलकर अध्ययन केंद्र के बनाने में रामवृक्ष की मदद की और वहां राजबंदी विद्यालय चलने लगा, जिसमें लगभग पांच सौ विद्यार्थी बाकायदा अध्ययन करने लगे। उस विद्यालय का आचार्य बने रामवृक्ष बेनीपुरी।

जेल के युवा कैदियों में समाजवादी विचारधारा ने बहुत असर किया। उस विद्यालय के कारण समाजवादी विचारधारा का प्रचार हुआ और जल्द ही (1931 ई. में) 'बिहार सोशलिस्ट पार्टी' की स्थापना हुई। प्रो. अब्दुल बारी इस पार्टी के अध्यक्ष चुने गए और तीन मंत्री बने– फूलन प्रसाद वर्मा, राहुल सांकृत्यायन और गंगाशरण सिंह। फूलन बाबू ने तुरंत वकालत शुरू की थी और पटना के युवकों पर उनका प्रभाव था। राहुल जी पटना में होते, तो 'युवक–आश्रम' में ही और 'युवक' के सारे कामों में हाथ बंटाते थे। गंगाशरण अनन्य सहकर्मी थे ही। जब पार्टी बनी तो कार्यसमिति में अंबिकाकांत सिंह, मणींद्रनाथ राय, शिवकली बोस आदि आए। 1931–32 के उसी दौर में युवक रामवृक्ष ने जो देखा–सुना और पढ़ा, उससे उनको यह अनुभव हो गया कि देश में गरीबों के राज्य की स्थापना की बात तो दूर रही, अंग्रेजी राज को भी तब तक दूर नहीं भगाया जा सकता, जब तक आजादी के आंदोलन में किसान नहीं आते। दूसरी ओर, जेल में ही कुछ सरकारी रिपोर्टें पढ़ीं, तो लगा कि बिहार की उन्नति तब तक हो नहीं सकती, जब तक जमींदारी–प्रथा उठा नहीं दी जाती।

इसलिए जेल से निकलते हैं (1933 ई.) उन्होंने जमींदारी–प्रथा के खिलाफ लेख लिखना शुरू किया। उनका एक लेख 'जमींदारी क्यों उठा दी जाए?' 'प्रताप' में छपा। वह लेख कई अन्य पत्र–पत्रिकाओं में उद्धृत हुआ। उसके बाद 'विश्वमित्र' में उनके कई लेख छपे। उन्होंने 'बिहार के किसान' शीर्षक से एक बड़ा खोजपूर्ण

लेख लिखा। उसे पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' में छापा। उसी समय दरभंगा महाराज की चेष्टा से काश्तकारी कानून संबंधी एक बिल बिहार काउंसिल में पेश हुआ, जिसके कारण किसानों में बड़ी हलचल मची।

'किसान सभा' के सभापति स्वामी सहजानंद सरस्वती ने आग्रह किया कि किसानों की हितरक्षा के लिए उनका 'लोकसंग्रह' फिर निकलने जा रहा है, रामवृक्ष उसके संपादन का जिम्मा लें। तब तक 'बिहार सोशलिस्ट पार्टी' और 'किसान सभा' के बीच समझौता हो चुका था और किसान सभा में पार्टी का बहुमत भी हो चला था। इसलिए रामवृक्ष ने उनके आग्रह को कबूल कर लिया, लेकिन उन्होंने अपना नाम संपादक की जगह पर देना मुनासिब नहीं समझा।

1934 ई. में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। मई में इसको लेकर पटना के अंजुमन इस्लामिया हॉल में देश भर के समाजवादियों की बैठक हुई। जिसमें इसके संचालन में रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने समाजवादी आदर्शों को अपने लेखन के जरिये फैलाना शुरू किया। शुरू में उन्होंने "कर्मवीर" का सम्पादन किया। 'योगी' का भी सम्पादन उन्होंने किया। जयप्रकाश नारायण के कहने पर उन्होंने समाजवादी पत्रिका "जनता" का सम्पादन शुरू किया। यह पत्र समाजवादी आंदोलन का मुख्य पत्र साबित हुआ। अन्य समाजवादी नेताओं की तरह रामवृक्ष बेनीपुरी का भी यह मानना था कि जबतक बिहार से जमींदारी प्रथा का उन्मूलन नहीं हो जाता बिहार में किसानों की स्थिति में फर्क नहीं आ सकता है। किसान सभा के अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने जमींदारी को खत्म करने पर जोर दिया। 1937 ई. में जब पटना में किसानों का विशाल प्रदर्शन हुआ तो उसके नेतृत्व में बेनीपुरी भी प्रमुख थे। इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और हजारीबाग जेल में रख दिया गया। पुनः 1940 ई. में जयप्रकाश नारायण के साथ वह गिरफ्तार कर लिये गये। अगस्त क्रांति के दरम्यान वे भूमिगत हुए और क्रांति का सफल संचालन करते रहे। बाद में पुलिस के द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये।

गांधीजी ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' (9 अगस्त, 1942) प्रारंभ करते समय राष्ट्रीयता के पोषक पत्रों से अपने–अपने अखबार बंद कर देने की प्रार्थना की थी। कुछेक अखबारों ने यह शर्त निबाही, किंतु थोड़े दिनों के बाद ही सबकी कलई खुलने लगी। उसका प्रधान कारण बना, सरकारी विज्ञापन। विज्ञापन के रूप में सरकार हर अखबार को थैलियां पर थैलियां पहुंचाने लगी। उन अखबारों के लिए इस लोभ को संवरण करना कठिन था। बिड़ला ने 'सर्चलाइट' खरीद लिया। बिहार की राष्ट्रीयता का शान समझे जाने वाले 'सर्चलाइट' के संपादक श्री मुरलीमनोहर प्रसाद इधर रामवृक्ष के साथ जेल में नजरबंद हुए और उधर 'सर्चलाइट' में 1942 के विद्रोही देशभक्तों को 'गुंडों' के रूप में चित्रित लंबे–लंबे सचित्र विज्ञापन निकलने लगे। यह विधि–विधान प्रायः सभी पत्रों पर लागू हो गया। सरकारी विज्ञापनों के अलावा कागज के कोटे ने भी अखबारों की नैतिक रीढ़ तोड़ दी। कई अखबार अधिक ग्राहक संख्या बताकर अखबारों के मासिक कागज का बड़ा–बड़ा कोटा अफसरों से करा लेते और बचे हुए कागज की चोर बाजारी करते। जनता चोर बाजारी से परेशान थीय उसकी रक्षा कौन करे–जो स्वयं अपना मुंह काला कर चुका था? वह किस प्रकार दूसरे के कुकर्म की ओर उंगली उठाए! सो, चोरी और सीनाजोरी का नजारा दिखने लगा।

जेलबंद रामवृक्ष बेनीपुरी यह सब देखते–सुनते और मन–ही–मन कुढ़ते। वहीं उनको यह सूचना भी मिली कि जिस प्रेम से वह 'जनता' निकालते थे, उसी प्रेस से छपकर एक ऐसा साप्ताहिक निकल रहा है, जो देशभक्तों को खुलेआम गालियां देता है! 'करो या मरो' आंदोलन के प्रारंभ होते ही हजारीबाग में प्रांत के कोने–कोने से

राजबंदी आकर भर गए, तब रामवृक्ष बेनीपुरी में फिर से जेल से ही पत्रकारिता करने की भावना जगी। 1930 ई. में यही से हस्तलिखित 'कैदी' निकालते थे, अब 1942 ई. में 'तूफान' निकालने लगे। 'तूफान' के अंक 'कैदी' से भी अधिक शानदार निकलने लगे। जेल में न लेखकों की कमी, न कवियों की। सुंदर अक्षर लिखनेवाले भी मिल गए– ओंकार शरद भी, जो पलामू से गिरफ्तार होकर आए थे।

1942 के 9 अगस्त से ही बिहार में जन–ज्वालामुखी फूट गया। देश भर में 'करेंगे या मरेंगे' का नारा गूंजने लगा। हुकूमत ने कांग्रेस के तमाम दिग्गज नेताओं को नारा लगाने तक का मौका दिए बिना पहले ही गिरफ्तार कर लिया था। जेल के अंदर पहुंचे नेताओं और जेल के बाहर के कार्यकर्ताओं में यह निराशा घर करने लगी कि अगस्त आंदोलन विफल होगा। नेतृत्व के अभाव में जनता भ्रम का शिकार होगी। ब्रिटिश हुकूमत को भी लगने लगा कि आंदोलन को दबाने की उसकी रणनीति कामयाब होगी दृ बस कुछ दिन में 'डू और डाई' का गुब्बारा फूट जाएगा। ऐसे समय में अपने आपको हजारीबाग जेल (जो कि बिहार का वह इलाका था, जो अपने घने जंगलों और आदिवासियों के चलते आंदोलन के असर से काफी दूर था) की 17 फीट ऊंची जेल की दीवारों के बीच बंद पाना, समाजवादियों के लिए एक निराशाजनक बात थी। यूं देवली में की गई गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए जेपी पर हुकूमत की पैनी नजर थी, और वह आंदोलन के केंद्र से काफी दूर और शाइटिका बीमारी से ग्रसित थे। इसके बावजूद आंदोलन शुरू होने के तीन महीने में ही डॉ. जयप्रकाश नारायण की जेल से भागने और आंदोलन में भागीदारी लेने की चाहत अपने चरम पहुंच गई।

उनका एक ही तर्क था– "नारा लगाते हुए जेल जाना नहीं, जान हथेली पर रख जेल से निकल भागना 'करेंगे या मरेंगे' की सर्वोत्तम मिसाल होगी!" सो, एक योजना का प्रारूप तैयार किया गया। हजारीबाग जेल में लगभग एक सौ आंदोलनकारी बंदी थे, किंतु इनमें केवल बारह लोगों को ही पलायन की योजना बनाने में शामिल किया गया। छह भागनेवाले और छह उनको भगानेवाले। फरारी की गुप्त योजना को कार्यरूप देने की जिम्मेदारी भगानेवाले छह लोगों को सौंपी गई। उनमें मुख्य भूमिका सौंपी गई रामवृक्ष बेनीपुरी को। उन्होंने दिवाली की रात का पूरा नाटक रचा। वह तो स्वभाव से ही मस्तमौला, हरदिल अजीज और उत्सव–प्रेमी हैं ही। दीवाली जैसे–जैसे नजदीक आने लगी, उसे जेल में धूमधाम से मनाने की तैयारीयों में वह जुट गए। खाने–पीने की चीजों से लेकर दीयों और फुलझड़ियों तक की सूची बनने लगी। दीवाली की रात में मनोरंजन के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम की भी जोरदार तैयारी शुरू हो गई।

9 नवंबर, 1942 ई., दीवाली की रात जेल के भीतर दीवाली के दीये जले, फुलझड़ियां छूटने लगीं, मिठाइयां बंटी अलग–अलग वॉर्डों में घूम–घूमकर लोग उत्सव मनाने लगे। गाने–बजाने का कार्यक्रम शुरू हुआ। बेनीपुरी के लतीफे और ठहाके गूंजने लगे। वॉर्डर और जमादार सभी मस्ती में झूम रहे थे। हंसने–हंसाने और गाने–बजाने का ऐसा समां बंधा कि 1:00 बजे रात तक सभी उत्सव के नशे में डूबे रहे। उधर जेपी अपने पांच साथियों के साथ पूर्व–निर्धारित योजना के अनुसार जेल की दीवार के पास पहुंचे। कोई 17 फीट ऊंची दीवार थी। पहरे पर तैनात संतरी हर आठवें मिनट पर राउंड लगाता हुआ वहां पहुंचता था। अतः 8 मिनट के भीतर ही योजना को कार्यरूप देना था। सभी अंधेरे में दीवार के पास सटकर खड़े हो गए, संतरी ज्यों ही आगे बढ़ा गुलाबचंद (गुलाली सोनार) के कंधे पर योगेंद्र शुक्ल और उनके कंधे पर सूरज नारायण सिंह चढ़कर धोती की रस्सी के सहारे दीवार से बाहर उतर गए। फिर योगेंद्र शुक्ल के कंधे पर चढ़कर जेपी उतरे। बेनीपुरी ने एक

साथी को भेजकर जेपी के कमरे में मच्छरदानी लगवा दी, ताकि देखनेवाले को पता चले कि वह सो रहे हैं। दूसरे भागनेवाले साथियों के कमरों में भी इसी तरह इंतजाम कर दिया गया कि किसी को शक नहीं हो। 2:00 बजे रात में सभी सोने चले गए। दूसरे दिन सवेरे 8:00 बजे कुछ लोग जेपी के कमरे के पास आए। उन दिनों जेल में वे समाजवाद और मार्क्सवाद पर कक्षाएं लेते थे। कैदी साथियों को यह कहकर लौटाया गया कि देर रात तक जागने के कारण जेपी की नींद पूरी नहीं हुई है और तबीयत खराब हो गई है। वे अभी सो रहे हैं, किंतु जेल–अधीक्षक की ओर से 10:00 बजे जेपी को बुलावा आया। नए अधीक्षक ने दो दिन पहले कार्यभार ग्रहण किया था। वह जेपी से कुछ विचार–विमर्श करना चाहते थे। जो आदमी बुलाने गया, उससे कह दिया गया कि अभी वे दूसरे वार्ड में गए हैं। उन्हें ढूंढने में कुछ और समय व्यतीत हुआ। यह खबर फैलने लगी कि जेपी नहीं मिल रहे हैं। एक जमादार ने आकर कहा कि योगेंद्र शुक्ल भी नहीं मिल रहे हैं। सूरज नारायण सिंह के वार्ड के संतरी ने भी कहा कि सूरज बाबू वहां नहीं हैं। जेल की पगली घंटी बजी और सबकी खोज शुरू हुई। जेल का कोना–कोना छान डाला गया। शौचालयों और स्नानघरों में देखा गया, किंतु कहीं कुछ पता नहीं चला। सरकार की तरफ से छह लोगों के भाग जाने की आधिकारिक घोषणा हो गई। साथ ही, यह भी घोषित हुआ कि जयप्रकाश नारायण, योगे शुक्ल, और रामनंदन मिश्र को पकड़वाने वाले को पांच–पांच हजार रुपए तथा अन्य तीन लोगों सूरज नारायण सिंह, गुलाली सोनार और शालिग्राम सिंह के लिए दो–दो हजार रुपए इनाम दिए जाएंगे।

जब जेपी और उनके साथी जेल से भाग निकले, तब जेल अधिकारियों का ध्यान 'तूफान' की ओर गया। उनकी त्योरियां और चढ़ीं। 'तूफान' के अंकों के लिए तलाशियां होने लगीं। फिर अचानक एक दिन रामवृक्ष बेनीपुरी को हजारीबाग जेल से ट्रांसफर कर दिया गया! 'तूफान थम गया'। जेपी के फरार होने के बाद जेल में 26 जनवरी, 1943 ई. को स्वाधीनता दिवस मनाने की तैयारी की गई थी। बोर्ड बनाए गए थे, प्रतिज्ञा–पत्र की कॉपियां तैयार कर सब लोगों को बांट दी गई थीं, लेकिन नए आई.जी. ने तय किया कि स्वाधीनता दिवस नहीं मानने देंगे। 25 जनवरी की रात में कमरे–कमरे की तलाशी शुरू हुई। कुछ झंडे मिले, तो वह खुशी–खुशी चले गए जैसे–तैसे रात कटी, लेकिन भोर में कमरों के दरवाजे नहीं खुले। राजबंदियों को दिनभर कमरों में ही बंद रखा गया, पर 8:00 बजते–बजते आई.जी. साहब का सारा इंतजाम फिजूल गया। 8:00 बजे कमरे–कमरे से मसहरी के डंडों में लगाकर झंडे बाहर लहराए जाने लगे और एक स्वर में गाने लगे– 'झंडा ऊंचा रहे हमारा. ...!' शाम के 5:00 बजे कमरों में ही स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा एक स्वर में दोहराई गई। इनाम में सब लोग रातभर और बंद रहे। भोर में सीखचों से बाहर किए गए, तो सबकी हालत भूखे शेर की थी! सो, आई.जी. साहब अपने कोट के छेद में गुलाब का एक फूल लगाए, शान से मुआइना में आए तो लोग फाटक की ओर दौड़ गए और सरेआम झंडा उठाकर गीत गाने और नारे लगाने लगे। आई.जी. साहब की हेकड़ी भूल गई, लेकिन वह इसे क्षमा कैसे कर सकते थे? उन्होंने रामवृक्ष का डिवीजन तोड़ा और गया जेल भेज दिया। गया जेल में ज्यादातर दामुली कैदी रखे जाते थे। लंबी सजा वाले तमाम राजबंदी वहीं थे। वहीं मजदूर नेता बसावन सिंह थे और पुलिस नेता रामानंद तिवारी भी। वहीं खबर मिली कि जेपी नेपाल चले आए हैं और मित्रों की राय है कि रामवृक्ष बेनीपुरी को चाहे जिस तरह हो सके, जेल से भाग आना चाहिए। भाग जाने का एक प्रोग्राम भी बाहर के साथियों ने बनाकर भेजा। 1945 ई. की जुलाई में रामवृक्ष बेनीपुरी पेरोल पर रिहा किए गए। उधर लड़ाई जारी थी। पत्र–पत्रिकाएं

अपनी स्वाभाविक गति से प्रकाशित हो रही थीं।

आजाद देश के प्रथम चुनाव के समय 1951 ई. में 'जनता' को दैनिक रूप दिया गया। उसके लिए जयप्रकाशजी के साथ रामवृक्ष बेनीपुरी कई बार कलकत्ता गए, बड़ी–बड़ी मुश्किलों से पैसा इकट्ठे किए गए, किंतु आम चुनाव–1952 में पार्टी को ऐसा धक्का लगा कि उसके मलबे के नीचे दैनिक 'जनता' दब गई। पत्रकार बेनीपुरी ने मातमपुर्सी कर आगे की राह टटोली– 'जब कोई पत्र–पत्रिका किसी पार्टी के साथ बिल्कुल नत्थी कर दी जाती है, संपादक पर बंधन डाल दिया जाता है, तब वह पार्टी का बुलेटिन मात्र बनकर रह जाती है, वह चलती–फिरती मूर्ति मात्र बन जाती है, जिसमें जीवन नहीं, जीवनजनित जोश और गर्मी नहीं। ऐसी पत्र–पत्रिका ज्यादा दिनों तक जीवित भी नहीं रह सकती...'।

निष्कर्ष :

जीवन के अंतिम 14 वर्ष (1955 से 1968) में बेनीपुरी ने स्वतंत्र पत्रकार और समाजवादी साहित्यकार होने के 'वरदान' की उम्र खत्म मानकर 'राजनीतिज्ञ' बनने के अभिशाप को चुनौती के रूप में स्वीकार किया। वह चुनावी राजनीति में उतरे और 14 साल की अवधि ऐसा 'वनवास' साबित हुई, जहां से मर्यादा पुरुषोत्तम की तरह लौटना 'रामवृक्ष' के लिए संभव नहीं हुआ। यूं वह जीवन के अंतिम क्षण तक यह सफाई देते हुए अपने आपको मनाते रहते थे कि "न उन दिनों रही और न आज ही किसी पद के लिए मेरे मन में कोई प्रबल अभिलाषा है। लेकिन प्रायः अयोग्य व्यक्तियों को ही नाना प्रकार के प्रपंचों द्वारा उच्च पदों पर पहुंचते देखकर मन में टीस पैदा होती है। यह भी नहीं कह सकता कि मैं उच्च पद पर जाने से अपने को विरक्त पाता हूं। मानव हूं, मानवीय कमजोरियां मुझमें हैं, किंतु सदा कोशिश की है कि वे कमजोरियां इतनी न बढ़े कि मानव ही नहीं रह जाऊं"। लेकिन यह दिखने लगा कि उनके स्वतंत्र 'व्यक्तित्व' में 'राजनीति' और 'साहित्य' का जो सम्यक् संतुलन था, वह बाद के दिनों में कायम नहीं रह सका। उनके व्यक्तित्व में जो प्रबलतर पक्ष था –भावुक और आवेशपूर्ण, वह उनकी राजनीतिक भूमिका को डुलाने लगा। अपनी कांस्टिटुएंसी में वे कुछ उसी भांति इलेक्शन के लिए दौड़–धूप करने लगे जैसे असहयोग आंदोलन में करते थे या जैसे किसी कल्पनासिद्ध, उल्लासपूर्ण कार्य को पूरा करने में। नतीजा यह हुआ कि राजनीति के शतरंजी सूझ–बूझ वाले क्षेत्र में बेनीपुरी का आवेशपूर्ण व्यक्तित्व उछलने लगा। शक्तिपुंज बिखर गया और संतुलन कायम न रह सका। उल्लास का गायक दोनों – राजनीति और साहित्य दृ की बाजी हार गया।

संदर्भ ग्रंथ :

1. हेमंत, हिंदी पत्रकारिता के शिखर–पुरुष रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रभात प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष 2025.
2. कुमार, डॉ. संतोष, समाजवाद के विकास में बिहारी नायकों की भूमिका, जानकी प्रकाशन, पटना, वर्ष 2019.
3. कुमार, अमित, स्वतंत्रता आंदोलन के विस्मृत सेनानी, शिवांक प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2023.
4. कुमार, डॉ. विजय, बिहार विभूति, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय बिहार, पटना, वर्ष 2012.
5. बेनीपुरी, श्री रामवृक्ष, जयप्रकाश नारायण एक जीवनी, किताब घर, नई दिल्ली, वर्ष 2020.
6. बेनीपुरी, श्री रामवृक्ष, स्वाधीनता और समाजवाद, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2001.
7. राय, रामवचन, रामवृक्ष बेनीपुरी (मोनोग्राम), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, वर्ष 1995.
8. चंद्र, बिपिन, भारत में राष्ट्रीय आंदोलन, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि., दिल्ली, वर्ष 2009.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 131-143

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

New Terrorism and Age of the Internet – A case of Kashmir Post 1990

Rajesh Gupta

Research Scholar in the Department of Political Science, University of Delhi.

Abstract :

The concept of "new terrorism," which emerged prominently in academic discourse during the 1990s, posits a revolutionary shift in terrorist activities characterised by religious motivations, unyielding ideological commitments, and heightened lethality through indiscriminate violence. Proponents argue that this paradigm marks a departure from traditional or "old" terrorism, which was often rooted in secular, nationalist, or ideological struggles with more negotiable goals. However, this notion has faced substantial criticism for overstating novelty, as historical comparisons reveal continuities in terrorist tactics, motivations, and organisational structures. Amidst these debates, one critical dimension has been notably underexplored: the pivotal role of the internet in facilitating and amplifying the purported "newness" of terrorism. This oversight diminishes our understanding of how digital technologies have transformed terrorist operations, recruitment, and propagation, particularly in enabling transnational, leaderless networks that operate beyond traditional hierarchies. (Sageman, 2008) The internet has emerged as a multifaceted tool for terrorists, providing technical assistance for bomb-making through online tutorials, disseminating intimidating videos to instil fear, and creating virtual spaces such as chat rooms and video games for radicalisation and coordination. Encrypted Voice over Internet Protocol (VoIP) communications allow secure planning, while manipulated religious texts are propagated to justify actions.

Academic literature has often compartmentalised the intersection of the internet and terrorism under labels like cyberterrorism or cybercrime, focusing narrowly on tactical uses such as hacking or online extortion. Less attention has been paid to the strategic deployment of the internet by new transnational terrorist groups, particularly those religiously motivated and aspiring to deploy weapons of mass destruction (WMD) indiscriminately. Existing studies emphasise how terrorists exploit digital platforms for recruitment, financing, and propaganda, but they fall short in examining overarching

strategies aimed at achieving long-term ideological dominance. This research article addresses these gaps by investigating the internet's role in the success of "new terrorism," with a specific focus on Kashmir. By analysing terrorist strategies online, the study aims to inform and strengthen the Indian government's counter-terrorism efforts, which currently subsume such activities under the broad umbrella of cybercrime, potentially overlooking nuanced digital threats.

Keywords : Religion, New Terrorism, Islam, Internet, Transnationality, Lethality, Kashmir

A debate between "Old" & "New" terrorism to dominate itself in the field of research has underscored the role of the internet that has created the environment for terrorism to take its new "Avatar", which could be classified as New terrorism. The religious character, network organisational structure, indiscriminate & Lethal behaviour, & transnationality have ignored the role of the internet to make all these characteristics successful.

New Terrorism, Religion, and the Kashmir :

The concept of "new terrorism" has emerged as a significant paradigm in contemporary security studies, particularly emphasising the role of religion as a defining characteristic. Hoffman acknowledged this as a part of new terrorism, setting it apart from earlier manifestations. Laqueur extends this argument, noting that while religious terrorism is not confined solely to Islam, it encompasses various forms of religious extremism that employ violence to instil terror in populations. (Kurtulus, 2011). However, this phenomenon is frequently associated with Islamic ideologies, necessitating innovative approaches from policymakers to address its unique challenges. (Crenshaw, 2007). In contrast to "old terrorism," which was predominantly secular, negotiable, and amenable to compromise, new terrorism is characterised by its uncompromising stance, rendering traditional diplomatic resolutions ineffective.

Yet, this dichotomy is not without critique. Rapoport contends that the religious justification for killing non-believers is far from a novel development; it has persisted throughout history. In the contemporary era, this represents a cyclical resurgence of religious terrorism, manifesting as the "fourth wave" in his wave theory of terrorism. Thus, rather than being revolutionary, new terrorism is evolutionary, building upon historical precedents. (Gofas, 2012). Furthermore, Field challenges the notion that religiosity inherently leads to intransigence, pointing out that even secular terrorist organisations exhibit similar traits of lethality and non-negotiability. Examples include the Liberation Tigers of Tamil Eelam (LTTE), the Popular Front for the Liberation of Palestine (PFLP), and the Kurdistan Workers' Party (PKK), which, despite their secular orientations, pursued uncompromising

agendas. (Gofas, 2012). These observations underscore the complexity of attributing terrorism's "newness" solely to religious motivations, suggesting that ideological rigidity transcends religious boundaries.

Kurtulus, in defending the "new terrorism" thesis, critiques opponents for adopting reductionist and simplistic definitions that undermine the concept's validity. He argues that identifying isolated historical cases predating the rise of new terrorism does not invalidate its emergence; from this perspective, innovation is always rooted in the shadows of the past. New terrorism is not "new" in the absolute sense of unprecedented appearance but rather signifies a revival after centuries dominated by secular variants. In the context of Kashmir, for instance, 13 out of 17 active groups exhibit religious outlooks, mirroring patterns observed in Iraq, Palestine, southern Lebanon, and Israel. Before this contemporary wave, religious terrorism was largely embodied by three historical entities: the Zealots-Sicarii, the Assassins, and the Thuggee cult (Kurtulus, 2011). This historical continuity highlights how religious terrorism reemerges in cycles, adapting to modern geopolitical landscapes. However, Kurtulus's framework is not immune to scrutiny. Critics highlight that his statistical evidence, upon which broad generalisations are built, is limited in scope. Moreover, his analysis often fails to distinguish between terrorism, insurgency, guerrilla warfare, and broader political violence, leading to conceptual blurring. The Kashmir conflict serves as a pertinent example, where these categories overlap, complicating precise classifications (Spencer, 2011). However, data on religious terrorism as an organisational phenomenon remains sparse, partly because it operates more as a diffuse ideology than a centralised structure. This ideology manifests globally through self-proclaimed caliphates and inspires regional insurgents and radicalised fundamentalist groups, often intertwining with local conflicts. In Kashmir, the influence of alQaeda and ISIS is not directly measurable in terms of territorial control, but their ideological footprint is evident among supporters like Burhan Wani and Zakir Musa, as well as organisations such as Ansar Ghazwat-ul-Hind. This presence is particularly observable among radicalised young Muslims, who draw inspiration from these transnational narratives (Pandya, 2020).

The escalation of Islamic terrorism in Kashmir since the 1990s further illustrates this trend. Most incidents are linked to groups such as Lashkar-e-Taiba (LeT), Jaish-e-Mohammad (JeM), Harkatul-Mujahideen (HuM), and Hizbul Mujahideen (HM), all of which are explicitly tied to Islamic ideologies. These organisations have been implicated in major terrorist violence in Jammu and Kashmir from 1990 to 2012, with notable spikes in 2001 (SouthAsianTerrorismPotal, 2001). Their operations

are bolstered by support from Pakistan's Inter-Services Intelligence (ISI) and transnational terrorist groups (TTGs), creating a network that amplifies their reach and lethality. (Shukla, 2007). Over the decades, particularly since the 1990s, Islamist ideology has progressively eroded the secular ethos of Kashmiriyat and the region's traditional Sufi influences within the separatist movement. Wahhabism, a more rigid interpretation of Islam, has gained dominance, reshaping the narrative from "azadi baraye Kashmir" (freedom for Kashmir) to "azadi baraye Islam" (freedom for Islam) (Pandya, 2020).

This shift in Kashmir exemplifies the broader implications of the new terrorism's religious dimension. The infusion of religious zeal into what was once a primarily ethno-nationalist struggle has heightened its intransigence, aligning with Hoffman's and Laqueur's characterisations.

New Terrorism, Network Organisation, and the Kashmir :

The discourse on "new terrorism" extends beyond religious motivations to encompass structural transformations, particularly the rise of network-based organisations. Proponents of the new terrorism thesis, such as Simon and Benjamin, along with Arquilla, argue that contemporary terrorist entities increasingly operate through decentralised networks with minimal or no hierarchical structures. This stands in stark contrast to the command-and-control systems characteristic of "old terrorism," where authority was more centralised and vertical (Kurtulus, 2011). In this view, the flattened, fluid networks enable greater adaptability, resilience, and global reach, facilitated by modern technologies that allow loosely connected cells to coordinate without rigid oversight. However, this binary distinction has faced significant criticism too, for oversimplifying historical realities. Critics contend that network elements were not absent in traditional terrorist groups; rather, they coexisted with hierarchical features. For instance, organisations like the Irish Republican Army (IRA) and Fatah demonstrated network-like operations despite apparent hierarchies (Gofas, 2012). Anthony Field provides a clear summary of this perspective: old groups often appeared to adopt hierarchical structures, but these were frequently bypassed in practice, resulting in less organised, network-oriented functioning driven by both strategic imperatives and practical necessities (Gofas, 2012). This suggests that the purported novelty of networks in terrorism may be exaggerated, as operational flexibility has long been a tactical adaptation rather than a revolutionary shift.

Similar arguments emerge from Tucker, who highlights the existence of network traditions in the Middle East as early as the 1940s, underscoring that decentralised models are not exclusive to the contemporary era. These critiques challenge the new terrorism paradigm by emphasising continuity over rupture. Yet, defenders of the thesis, such as Kurtulus, counter that such historical precedents do

not account for the transformative role of information and communication technologies (ICT) in amplifying and evolving these networks. While questions persist about the representativeness of the few examples cited by critics—such as the Middle Eastern Muslim Brotherhood's networks, the Red Army Faction's obsession with vanguard roles in proletarian parties, or anarchist assassinations that often lacked formal organisational ties (with exceptions like Narodnaya Volya in Russia)-contemporary cases reveal network organisations that defy direct comparison to old terrorism (Kurtulus, 2011). The proliferation of ICT has enabled unprecedented connectivity, allowing terrorist actors to form ad hoc alliances, share resources, and execute operations across borders without traditional command structures. Despite these defences, the boundaries remain ambiguous. It is unclear at what point an organisation transitions from hierarchical to network-based, as many arrangements exhibit hybrid characteristics from inception. Moreover, while ICT has undeniably fostered network proliferation across society, this development does not inherently render terrorism "new"; instead, it positions it as an evolutionary progression within broader societal trends. (Spencer, 2011). This evolutionary lens complicates efforts to delineate old from new, prompting calls for more robust criteria to define new terrorism. Developing such criteria is inherently challenging, as terrorist modalities have always fluctuated rather than adhering to a linear historical trajectory. Here, Rapoport's "wave" theory proves instructive: terrorism evolves in distinct waves, each qualitatively different yet potentially sharing "residual elements" from prior ones. Critics of new terrorism often fixate on these residual features—such as sporadic network use in earlier waves—while overlooking the holistic distinctiveness of the current wave. (Kurtulus, 2011). This selective focus undermines the recognition of genuine innovations, like the scale and sophistication of modern networks.

The concept of "leaderless jihad," as articulated by Sageman, exemplifies this network paradigm in action, where ideological alignment replaces formal leadership, enabling autonomous cells to operate independently yet cohesively. (Sageman, 2008). In the Kashmir context, this leaderless or networked system is vividly observable, blending local grievances with transnational influences. Instances of vandalism targeting mosques and houses have been perpetrated by self-proclaimed local affiliates of ISIS, including groups like the Islamic State of Jammu and Kashmir (ISJK) and Ansar Ghazwat-ul-Hind, which have aligned themselves with al-Qaeda and ISIS ideologies. These entities operate without rigid hierarchies, relying instead on diffuse networks for recruitment, propaganda, and attacks. (Pandya, 2020). Furthermore, the rise of individual suicide terrorism among Kashmiri youth highlights the network's personalisation: fidayeen attacks, often carried out by lone actors or

small cells, stem from frustrations over lack of recognition within traditional structures and the allure of an imagined Islamic paradise (Pandya, 2020). This networked evolution in Kashmir reflects broader shifts in new terrorism, where ICT tools—such as social media and encrypted communications—facilitate radicalisation and coordination beyond physical borders. Unlike the more structured separatist movements of the past, contemporary Kashmiri militancy increasingly features decentralised nodes, with groups like ISJK drawing inspiration from global jihadist narratives while adapting to local terrains. This hybridisation challenges traditional counterterrorism strategies, which were designed for hierarchical targets that are amenable to decapitation strikes or negotiations. The persistence of residual elements, as per Rapoport's framework, is evident in Kashmir's history of guerrilla-style operations, yet the current wave's network intensity, amplified by digital connectivity, introduces qualitative differences.

New Terrorism, Indiscriminate and Lethal Attacks, and the Kashmir :

The paradigm of "new terrorism" introduces profound shifts like violent extremism, particularly in the realm of indiscriminate and lethal attacks. As articulated by proponents of this thesis, new terrorism fundamentally alters the dynamics of terrorist operations, inverting the formulation proposed by Jenkins from "a lot of people watching, but a few people dead" to "a lot of people watching and a lot of people dead." This escalation reflects an erosion of self-imposed and technical constraints that previously limited the use of weapons of mass destruction (WMD) by terrorists. Concurrently, advancements in maintaining anonymity have amplified striking power, while religious motivations have proliferated the incidence of suicide bombings, transforming terrorism into a more apocalyptic and unrestrained force (Kurtulus, 2011). These changes signify a departure from the calculated, publicity-oriented violence of old terrorism toward a model that prioritises mass casualties as an end in itself, driven by ideological imperatives that transcend traditional political negotiations. However, like others in the field of academics, this characterisation is also not without controversy. Crenshaw posits that levels of selectivity in targeting vary significantly across groups and temporal contexts, rendering rigid dichotomies between religious-secular divides or past-present frameworks untenable. She further argues that suicide terrorism is not exclusive to religious actors but has been employed by both secular and religious groups, challenging the notion that new terrorists deploy violence in a uniquely "fashioned" or indiscriminate manner. Such assertions, Crenshaw contends, are overly simplistic, failing to account for the nuanced strategic calculations that underpin terrorist actions regardless of era or ideology (Gofas, 2012). This critique underscores the importance of contextual

analysis, suggesting that apparent indiscriminateness may stem from operational choices rather than inherent novelties in the terrorist paradigm. By emphasising variability, Crenshaw invites a more granular examination of terrorist behaviour, one that avoids broad generalisations and instead focuses on the interplay of motivations, resources, and environments.

Defenders of the new terrorism thesis, such as Kurtulus, respond by clarifying that the "new" element lies not in the mere occurrence of indiscriminate violence but in its deliberate and intentional nature, as opposed to the accidental or collateral indiscriminateness observed in earlier terrorist campaigns. Critics, in this view, overlook the strategic intent of jihadist organisations, particularly those influenced by Salafi-jihadist ideologies, which explicitly aim to maximise civilian casualties deemed legitimate targets. Salafi-jihadist literature legitimises this approach through two primary rationales: first, reciprocity, wherein the killing of Muslim civilians by infidels permits retaliatory strikes against non-Muslim civilians; and second, a redefinition of civilians under the doctrine of collective responsibility, whereby entire populations are held accountable for the actions of their governments or societies. Moreover, while a minority of religious organisations may opt for selective killings, the predominant trend in new terrorism favours indiscriminate violence, which in turn seduces actors toward WMD pursuits. Yet, practical impediments persist: terrorists often lack the capability to deploy WMD effectively, much as the United States faced challenges in early nuclear development. A key deterrent is the recognition that conventional weapons can inflict greater harm in targeted scenarios, rendering WMD less appealing for immediate operational goals (Kurtulus, 2011). This nuanced defence highlights how intentionality and ideological justification elevate the lethality of new terrorism beyond historical precedents. Counterarguments persist, too, with scholars like Spencer asserting that what appears indiscriminate is, in reality, selective when viewed through the lens of symbolic targeting. For instance, the 9/11 attacks focused on icons of trade, military, and political power—the World Trade Centre, the Pentagon, and potentially the Capitol or White House—rather than random civilian populations. Jihadists, in this perspective, frame Western societies as collective enemies, implying a strategic discrimination embedded within broader enmity (Spencer, 2011).

However, this interpretation warrants scrutiny. In my analysis, such attacks demonstrate a disregard for innocent civilians, with perpetrators actively incorporating mass civilian deaths into their operational calculus. The indiscriminateness should be evaluated not through the targeting of ethnic groups but via the deliberate killing of non-combatants, which amplifies terror's psychological impact. This distinction reveals a core innovation in new terrorism: the normalisation of civilian-

centric lethality as a tactical and ideological imperative, diverging from the more restrained, politically oriented violence of the past. The Kashmir conflict provides a compelling case study for these dynamics, illustrating how new terrorism's indiscriminate and lethal ethos has permeated a longstanding insurgency. Since the 1990s, the region's militant landscape has evolved dramatically, with targets expanding beyond Indian forces and non-Muslim populations to encompass Kashmiriyat supporters—those advocating for a syncretic, secular Kashmiri identity—as well as regional terrorist organizations like Hizbul Mujahideen (HM), Jaishe-Mohammad (JeM), and Harkat-ul-Mujahideen (HuM), which receive support from Pakistan's Inter-Services Intelligence (ISI). Even adherents of Sufi Islam, traditionally a moderate strain in the valley, have been branded as infidels, justifying indiscriminate violence through narratives propagated by transnational terrorist groups (TTGs). This ideological shift is starkly evident in the post-Burhan Wani era, where suicide attacks have surged, often executed by religiously motivated Kashmiri youth employing improvised explosive devices (IEDs) and vehicle-borne IEDs (VBIEDs) reminiscent of tactics used in Syria and Iraq. These operations reflect a deliberate embrace of lethality, prioritising mass casualties over precision to instil widespread fear and assert dominance (Pandya, 2020). Prominent militant leaders have further entrenched this culture by valorising cruelty as a virtuous act. For example, Zakir Musa, a key figure in the al-Qaedaaffiliated Ansar Ghazwat-ul-Hind, publicly threatened to slit the throats of prominent separatist leaders from the Hurriyat Conference, accusing them of betraying Allah by pursuing secular or nationalist agendas. Such rhetoric not only legitimises indiscriminate violence but also erodes internal cohesion within the separatist movement, redirecting aggression toward perceived ideological deviants. This pattern aligns with Kurtulus's emphasis on intentional civilian targeting, where religious justifications override traditional constraints, fostering an environment conducive to escalated lethality. In Kashmir, the fusion of local grievances with global jihadist ideologies has amplified this trend, transforming what was once a primarily ethno-nationalist struggle into a religiously infused campaign marked by apocalyptic violence.

Despite these observations, it needs to be accepted that empirical data on indiscriminate violence and WMD aspirations in Kashmir remains sparse, highlighting a critical gap that future research must address. While anecdotal evidence from post-1990 incidents suggests a rise in non-selective attacks, systematic studies are needed to quantify shifts in targeting patterns, casualty profiles, and ideological influences.

New Terrorism, Transnationality, and the Kashmir :

Another key distinguishing feature of "new terrorism" lies in its transnational agenda, which contrasts sharply with the predominantly nationalist or separatist objectives of "old terrorism." Proponents of the new terrorism thesis argue that contemporary terrorist movements seek not merely local autonomy or regime change but a fundamental revision of the global status quo, often through the establishment of transnational caliphates or the imposition of universal ideological frameworks. This shift implies a globalisation of terrorist aims, where groups operate across borders, drawing inspiration and resources from a worldwide jihadist network rather than confining their struggle to a single territory. However, empirical data challenge this narrative of increasing transnationality. Goldman's analysis of terrorism from 1968 to 2007 reveals that the phenomenon has become de-globalised rather than globalised. Terrorist groups predominantly attack or operate within their home states rather than extending operations significantly beyond national boundaries (Gofas, 2012). This finding suggests that, despite rhetorical appeals to global causes, most terrorist activity remains territorially rooted, with limited evidence of widespread cross-border operational expansion during the period studied.

In my view, assessing transnationality solely through organisational data—such as the location of attacks or group headquarters—oversimplifies the complexity of contemporary terrorism. Many home-based terrorist organisations adopt the ideologies of transnational terrorist groups (TTGs) and implement them within their local contexts. The result is less a formal branch structure and more an ideological diffusion, where the name of the group may differ, but the core ideology remains aligned with that of global actors like al-Qaeda or ISIS. This ideological spread represents a subtler yet potent form of transnationality, one that transcends physical borders through propaganda, online recruitment, and shared narratives of jihad. The Kashmir conflict vividly illustrates this dynamic. Since the late 2010s, the region has experienced growing influence from TTGs. In 2019, Islamic State (IS) leader Abu Bakr al-Baghdadi declared Kashmir a new wilayat (province) of the so-called caliphate, signalling an explicit intent to incorporate the valley into the group's transnational project. Local entities such as the Islamic State of Jammu and Kashmir (ISJK) and Ansar Ghazwat-ul-Hind have openly affiliated themselves with al-Qaeda and ISIS, advocating for the transformation of Kashmir into an Islamic state modelled on the Syria-Iraq caliphate. These groups have called upon Kashmiri militants to abandon Hizbul Mujahideen (HM) and join their cause, framing the struggle as part of a global jihad rather than a localised separatist movement. The growing popularity of such affiliations is reflected in the

desperation expressed by HM leaders amid competition from these ideologically transnational outfits (Pandya, 2020). This development underscores how transnationality in new terrorism often manifests ideologically rather than operationally. While Kashmir's militancy remains largely home-based in terms of attacks and recruitment, the infusion of TTG ideologies has shifted narratives toward universalist goals, eroding the region's traditional ethno-nationalist character. The ideological alignment with global jihadist movements, even without extensive cross-border operations, amplifies the threat's resilience and appeal, particularly among disillusioned youth.

New Terrorism, the Internet, and the Kashmir :

The advent of the internet has profoundly transformed the landscape of "new terrorism," providing terrorist actors with unprecedented tools for amplification and operational efficiency, yet this aspect been ignored in the debate of "Old" vs "New" terrorism. The fact that the Internet became publicly accessible in the 1990s coincided with the rise of contemporary jihadist movements. Unlike the localised and resource-constrained methods of "old terrorism," new terrorism leverages the internet's attributes—easy access, minimal regulation, vast audience reach, anonymity, and an inexpensive, rapid-flow multimedia system—to expand its influence globally. By the 2000s, virtually all terrorist organisations had successfully established an online presence, utilising the medium in multifaceted ways. Weimann identifies eight primary applications: spreading cyberfear to instil psychological terror; disseminating propaganda to shape narratives; manipulating religious sources to legitimise actions; conducting data mining for intelligence gathering; fundraising through digital appeals; recruitment and mobilisation of sympathisers; and establishing decentralised networks that enhance resilience against counterterrorism efforts. This makes the internet an ideal instrument for new terrorism, enabling fluid, borderless operations that traditional media could not match (Weimann, 1994). However, despite these advantages, the effective exploitation of the internet by terrorists is not without hurdles. Engaging in sophisticated online activities demands technical skills, deliberate intent, and practical experience, particularly when utilising available resources like bomb-making manuals. Many terrorist groups lack these competencies, limiting their cyber capabilities to rudimentary levels. Moreover, post-2014 regulatory enhancements on digital platforms—driven by international efforts to curb extremism—have imposed stricter oversight, content moderation, and data-sharing protocols, significantly constraining terrorist actions. As a result, terrorists often resort to fabricating claims of involvement in incidents that are, in reality, the work of lone individuals or mere cybercrimes, thereby exaggerating their reach and impact. This phenomenon of "lying about

terrorism" underscores the gap between aspirational online rhetoric and actual operational capacity, revealing the internet as a double-edged sword that amplifies visibility but exposes vulnerabilities to surveillance and disruption (Magri & Marone, 2019). Still, there is no doubt that beyond "Lying about terrorism", the digital empowerment has created of what has been termed "the open university for jihad studies," a virtual repository aligned with the jihadi-salafi ideological family. This online ecosystem systematically justifies extreme tactics, such as fidayeen (suicide) attacks, by drawing on selective interpretations of Islamic theology and history, using platforms like Telegram, IS maintained a channel dubbed "The Caliphate Library," which housed 908 PDFs. This digital archive not only preserves and propagates extremist ideology but also democratizes access to radical knowledge, allowing anyone with an internet connection to engage in self-radicalisation without formal affiliation.

The internet's role extends further into fostering the individualisation of propaganda and attacks, a hallmark of new terrorism's decentralised ethos. Rather than relying on centralised production, a few individuals—often self-appointed ideologues—generate content infused with their personal interpretations and biases. This shift is partly necessitated by the security imperatives of terrorist leaders, who avoid direct involvement to evade capture, thereby delegating dissemination to autonomous actors. Such individualisation erodes traditional hierarchical command-and-control structures, giving rise to fluid networks characterised as "leaderless jihad." In this model, ideological alignment and digital connectivity replace formal orders, enabling loosely affiliated cells or lone wolves to operate independently while advancing shared objectives (Sageman, 2008). The result is a resilient, adaptive form of terrorism that is harder to dismantle, as it thrives on viral, user-generated content rather than top-down directives.

These dynamics have a pronounced impact in the Kashmir context, where the internet has accelerated the radicalisation of vulnerable populations. Frustrated and depressed Muslims in the region, grappling with socioeconomic disenfranchisement and political alienation, are increasingly drawn toward religious fundamentalism through online exposure. Digital platforms serve as conduits for sleeper cell terrorism, where individuals incubate extremist views in isolation before activating. The internet propagates the religious beliefs underpinning new terrorism, facilitating the brainwashing of youth into embracing suicide terrorism as a path to martyrdom. By making terrorism leaderless, it disseminates radical materials that individuals consume to self-radicalise, subsequently spreading them within their communities. Aspiring terrorists no longer require physical membership in organisations, attendance at training camps, or direct mentorship; all necessary resources—from

ideological indoctrination to tactical know-how—are accessible via a keyboard, lowering barriers to entry and amplifying the threat of spontaneous violence (Pandya, 2020). In Kashmir, this trend is exemplified by the cyber operations of groups like Lashkar-eTaiba (LeT) through its affiliate Jamaat-ud-Dawah (JuD). LeT's cyber unit actively spreads propaganda, disseminates information for cyberterrorism, and releases interactive content such as the video game 'Age of Jihad,' which gamifies extremist narratives to appeal to younger audiences. Additionally, these actors employ advanced digital tools, including Voice over Internet Protocol (VoIP) for secure communications, Global Positioning System (GPS) for operational planning, and social media monitoring to surveil civilians and identify potential recruits or targets. LeT has adapted these strategies from precedents set by al-Qaeda and ISIS, incorporating sophisticated social media tactics and online narratives to maintain relevance in a digital age (EFSAS, 2020). This emulation underscores how transnational terrorist groups (TTGs) in Kashmir leverage the internet to hybridise local insurgencies with global jihadist ideologies, creating a feedback loop of radicalisation.

Conclusion :

The discourse on "new terrorism" reveals a complex interplay of continuity and change, with the Kashmir conflict serving as a vivid microcosm of these dynamics. While critics like Rapoport, Crenshaw, Field, and others rightly highlight historical precedents—cyclical resurgences of religious terrorism, pre-existing network elements, indiscriminate tendencies in secular groups, and territorially bounded operations—the "new terrorism" thesis, as robustly defended by scholars such as Kurtulus, Hoffman, Laqueur, and Simon and Benjamin, identifies qualitative shifts amplified in the contemporary era. In Kashmir, the transformation is unmistakable. The conflict has evolved from a predominantly ethno-nationalist struggle rooted in Kashmiriyat and secular separatist ideals to one increasingly infused with rigid religious ideology, particularly Wahhabiinfluenced Salafi-jihadism. Groups like Lashkar-e-Taiba (LeT), Jaish-e-Mohammad (JeM), Harkat-ul-Mujahideen (HuM), and Hizbul Mujahideen (HM), often backed by Pakistan's ISI and transnational terrorist groups (TTGs), have dominated since the 1990s, eroding Sufi moderation and reorienting the narrative from "azadi baraye Kashmir" to "azadi baraye Islam." This religious dimension has fostered greater intransigence, rendering compromise elusive and aligning with characterisations of new terrorism's uncompromising stance. In the process of making terrorism with its "New" characteristics, the Internet played a significant role, empirically evident in its peak during the public-orientedness of the Internet in the 1990s.

This article has tried to explain this aspect, which has been long ignored within the debate of

"old" vs "new" terrorism.

References :

- Crenshaw, M. (2007). "The Debate Over New and Old Terrorism". Center For International Security and Cooperation, Standford University.
- EFSAS. (2020, June). *Social Media Strategies and Online Narratives of Terrorist Organization; Case Study of Al-Queda, ISIS, Taliban, Lashkar-E-tiba*. Retrieved from Efsas.org: Social Media Strategies and Online Narratives of Terrorist Organizations; Case studies of Al-Qaeda, ISIS, Taliban and Lashkare-Taiba :: EFSAS https://share.google/Vz8TWM5YNO1eMuB4l
- Gofas, A. (2012). Old vs New Terrorism: What's in a Name. *Interational Relations*, 17-32.
- Kurtulus, E. N. (2011). The New Terrorism and Its Critics. *Studies in Conflict & Terrorism*, 476-500.
- Magri, P., & Marone, F. (2019). *Digital Jihad: Online Communication and Violent Extremism.* Milano: Ledizioni Ledi Pulishing.
- Pandya, A. (2020). The Threat of Transnational Terrorist Group in Kashmir. *Terrorism Research Initiative*.
- Sageman, M. (2008). *Leaderless Jihad: Terror Networks in the Twenty-first Century.* Pennsylvania: University of Pennsylvania Press.
- Shukla, P. (2007). Jammu and Kashmir (1947-present). In A. Rabasa, *Money in The Bank* (pp. 49-59). Santa Monica: RAND cooperation.
- SouthAsianTerrorismPotal. (2001). *Major Incidents of Terrorist Violence in Jammu and Kashmir: 20121990*. Retrieved from SATP.com: https://www.satp.org/satporgtp/countries/india/states/jandk/data_sheets/majorincidents.htm
- Spencer, A. (2011). Sick of New Terrorism Debate? A Response to Our Critics. *Critical Studies on Terrorism*, 459-467.
- Weimann, G. (1994). *How Modern Terrorism Uses the Internet.* Washington DC: United States Institute of Peace.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 144-163

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

India–Israel Relations in the Post-Abraham Accords Era: Balancing Regional Power, Israel–Iran Tensions, and India's Multi-Alignment Diplomacy

Mr. Hari Shanker Singh

Ph.D. Scholar, department of Political Science, University of Delhi.

Abstract :

With regards to the regional power dynamics in West Asia, the bilateral relations of this region have to be reconsidered as a result of the Abraham Accords of 2020 which significantly changed the regional power dynamics. This paper explores the transformative trajectory of India-Israel relations in this new geopolitical milieu, especially in view of the growing Israel-Iran confrontations and India's ability to continue its multi-alignment diplomacy. It aims to conduct a qualitative multi-method research approach using a diplomatic event analysis, strategic partnership mapping, and comparative case study approach for the time window 2020-2026. A three-tier coding protocol for actor, domain, and valence of alignment is applied to official joint statements, press releases, records of defense procurements, and open source intelligence reports. The study shows that India-Israel relations have taken a new dimension, as reflected in the 2023 five-year roadmap of defense cooperation, the on-going purchases of Barak-8 and Spike military systems and the Garuda Shakti military exercises. At the same time, India also continued its energy trade and connectivity tie-ups with Iran, and bilateral economic cooperation with Gulf countries through the India-UAE Comprehensive Economic Partnership Agreement and the I2U2 multilateral initiative. Perhaps one of the most important implications is the tacit acceptance of India's balancing policy, as Iran strategically "indicated safe passage" for Indian ships in the Strait of Hormuz. The novelty of this research stems from its joint treatment of three interrelated issues: Abraham Accords, India-Israel relations, and Israel-Iran tensions, which have to date been neglected from existing scholarship. Overall, it is evident that India has abandoned the traditional non-alignment stance and assumed an active role of a bridge builder, with its multi-alignment approach allowing it to maintain parallel ties with Israel and Iran, and the Gulf countries, without

compromising on key national interests. This study joins the bigger discussion on middle power diplomacy within challenging regional contexts.

Keywords : Abraham Accords, Multi-Alignment Diplomacy, Bilateral Economic Co-operation, India-Israel Relations, Israel-Iran Tensions, Bridge Builder

1. Introduction :

Since the signing of the Abraham Accords in 2020, the geopolitical fabric of West Asia has experienced a significant and impactful shift in its traditional alliances and paradigms of conflict, especially with regard to relations with Israel. The normalization treaties between several Arab states and Israel were not only bilateral deals, but rather established a new strategic axis that transformed the regional power dynamic, exacerbated existing conflicts, and forced other states with conflicting interests to rethink their approach to diplomacy. This strategic shift has posed both for the first time opportunities and dilemmas for India, the country's ties with Israel, Iran and the Gulf monarchies have been historically strong but surrounded by various degrees of compartmentalisation. The main puzzle to explain is, how can India have succeeded in doing so, and how has it managed to strike a balance between the three sets of Three's of seemingly conflicting sets of relationships – enhancing military and technology ties with Israel, energy security and connectivity projects with Iran, and strengthening economic and diplomatic ties with the Arab Gulf States?

The Abraham Accords have resulted in a new geopolitical landscape in West Asia that has blurred the traditional Arab-Israeli fault line, with a new matrix of alignments emerging around the Israel-Iran dynamic. The Accords allowed Israel to open up diplomatic and economic relations with the UAE, Bahrain, Morocco, and Sudan, and a new regional architecture had been created with Israel being linked with a group of Sunni Arab countries with a common front against Iran and its proxy networks. Perhaps this restructuring is especially significant for India, as it had sought a policy of issue-based bilateralism, meaning that it could both cooperate with Israel on defense and counterterrorism and buy oil from Iran and have millions of Indian workers in the Gulf states. The escalation of the Israel-Iran conflict, including major military exercises like Operation Roaring Lion in June 2025 and Operation Epic Fury in February 2026, is further complicating India's diplomatic considerations as it brings military engagement to the table.

The study examines three mutually related domains about which little has been written, and done separately – the structural effects of the Abraham Accords on the power configurations in the region of West Asia, the development of the strategic partnership between India and Israel, and the escalatory dynamics of the Israel-Iran conflict – to offer an integrated analysis. Although scholars have explored these in isolation, a synthetic approach towards these aspects, fostering a connection

between these through the prism of India's multi-alignment diplomacy is not well developed. These findings foundationalise our research into a broader theoretical debate on middle-power diplomacy in contested regional settings, providing empirical evidence on the potential for states to maintain parallel relations with conflicting powers, and in so doing engage in deliberate balancing strategies. We propose two main hypotheses. Not only do we argue that the Abraham Accords have shifted the character of India-Israel diplomatic relations, but also that the relations have been changed in a specific way.First, beyond simply being a transformative shift, we suggest that the character of India-Israel diplomatic ties has been changed in a particular way: the ties with Israel are now inseparable from the broader power dynamics in West Asia. Second, we hypothesize that the growing tensions between Israel and Iran have pushed up India's multi-alignment diplomacy to a more complex level, with three distinct strands: defense and technology ties with Israel, energy and connectivity with Iran, and greater economic ties with Gulf countries. A qualitative multi-method research design for the period of 2020 – 2026 is used to explore these hypotheses, combining the diplomatic event analysis, strategic partnership mapping and comparative case study approaches.

The following section (2) presents a review of the theoretical and empirical literature on the nature of regional power transition, middle-power diplomacy, and the unique nature of India's West Asian diplomatic relations, respectively. Section 3 places the Abraham Accords in the context of the wider geopolitical reconfiguration of West Asia and explores its consequences for the power dynamics in the region. Our research design and analytical approach are described in Section 4, including the coding procedure and the data sources. In Section 5 we offer our empirical analysis in three areas: strategic deepening between India and Israel; balancing between India and Iran in the Gulf; and, the impact of the confrontation between Israel and Iran on India's diplomatic calculations. In section 6, our findings are discussed, and some strategic implications and theoretical contributions are provided. Section 7 presents some conclusions and future research prospects.

2. Literature Review :

Since the signing of the Abraham Accords in 2020, the geopolitical fabric of West Asia has experienced a significant and impactful shift in its traditional alliances and paradigms of conflict, especially with regard to relations with Israel. The normalization treaties between several Arab states and Israel were not only bilateral deals, but rather established a new strategic axis that transformed the regional power dynamic, exacerbated existing conflicts, and forced other states with conflicting interests to rethink their approach to diplomacy. This strategic shift has posed both for the first time opportunities and dilemmas for India, the country's ties with Israel, Iran and the Gulf monarchies have been historically strong but surrounded by various degrees of compartmentalisation. The main

puzzle to explain is, how can India have succeeded in doing so, and how has it managed to strike a balance between the three sets of Three's of seemingly conflicting sets of relationships – enhancing military and technology ties with Israel, energy security and connectivity projects with Iran, and strengthening economic and diplomatic ties with the Arab Gulf States?

The Abraham Accords have resulted in a new geopolitical landscape in West Asia that has blurred the traditional Arab-Israeli fault line, with a new matrix of alignments emerging around the Israel-Iran dynamic. The Accords allowed Israel to open up diplomatic and economic relations with the UAE, Bahrain, Morocco, and Sudan, and a new regional architecture had been created with Israel being linked with a group of Sunni Arab countries with a common front against Iran and its proxy networks. Perhaps this restructuring is especially significant for India, as it had sought a policy of issue-based bilateralism, meaning that it could both cooperate with Israel on defense and counterterrorism and buy oil from Iran and have millions of Indian workers in the Gulf states. The escalation of the Israel-Iran conflict, including major military exercises like Operation Roaring Lion in June 2025 and Operation Epic Fury in February 2026, is further complicating India's diplomatic considerations as it brings military engagement to the table.

The study examines three mutually related domains about which little has been written, and done separately – the structural effects of the Abraham Accords on the power configurations in the region of West Asia, the development of the strategic partnership between India and Israel, and the escalatory dynamics of the Israel-Iran conflict – to offer an integrated analysis. Although scholars have explored these in isolation, a synthetic approach towards these aspects, fostering a connection between these through the prism of India's multi-alignment diplomacy is not well developed. These findings foundationalise our research into a broader theoretical debate on middle-power diplomacy in contested regional settings, providing empirical evidence on the potential for states to maintain parallel relations with conflicting powers, and in so doing engage in deliberate balancing strategies. We propose two main hypotheses. Not only do we argue that the Abraham Accords have shifted the character of India-Israel diplomatic relations, but also that the relations have been changed in a specific way. First, beyond simply being a transformative shift, we suggest that the character of India-Israel diplomatic ties has been changed in a particular way: the ties with Israel are now inseparable from the broader power dynamics in West Asia. Second, we hypothesize that the growing tensions between Israel and Iran have pushed up India's multi-alignment diplomacy to a more complex level, with three distinct strands: defense and technology ties with Israel, energy and connectivity with Iran, and greater economic ties with Gulf countries. A qualitative multi-method research design for the period of 2020 – 2026 is used to explore these hypotheses, combining the diplomatic event analysis, strategic

partnership mapping and comparative case study approaches.

The following section (2) presents a review of the theoretical and empirical literature on the nature of regional power transition, middle-power diplomacy, and the unique nature of India's West Asian diplomatic relations, respectively. Section 3 places the Abraham Accords in the context of the wider geopolitical reconfiguration of West Asia and explores its consequences for the power dynamics in the region. Our research design and analytical approach are described in Section 4, including the coding procedure and the data sources. In Section 5 we offer our empirical analysis in three areas: strategic deepening between India and Israel; balancing between India and Iran in the Gulf; and, the impact of the confrontation between Israel and Iran on India's diplomatic calculations. In section 6, our findings are discussed, and some strategic implications and theoretical contributions are provided. Section 7 presents some conclusions and future research prospects.

3. Geopolitical Context of West Asia: The Abraham Accords and Regional Power Realignment :

When the Abraham Accords were signed in 2020, it marked a turning point in the geopolitics of West Asia, challenging the traditional conflict dynamics and alliance structures. These deals, brokered mainly by the United States, between Israel and the U.A.E., Bahrain, Sudan and Morocco were essentially a 40-year defanged of the Arab League's consensus that linked diplomatic recognition of Israel with advancement of the Palestinian cause toward a sovereign state. The separation of normalization from the Palestinian issue represented a paradigm shift from the previous paradigm and paved the way for a new regional bloc, including Israel and several Sunni Arab countries, against a common perceived foe: Iran and its growing network of proxy forces throughout the region.

The Security Council has agreed to the Israeli-led creation of a Gulf military force to counter Iran's regional activities, which has become a major issue for both the threat perception of the Gulf monarchies and Israel's strategic calculations. The Security Council's approval of a Gulf military force to operate in conjunction with Israel to counter Iranian regional ambitions has become a central concern to both of the Gulf monarchies' threat perceptions and Israel's strategic calculations. Tel Aviv and the Gulf capitals had long considered Iran's nuclear program, its ballistic missile efforts and support for non-State actors like Hezbollah and Iraqi and Yemeni militias to be existential threats. The Accords gave the diplomatic structure to make these common security concerns more concrete, including the exchange of intelligence and joint military exercises and technology transfers. In addition, the deals created opportunities for economic cooperation in areas like renewable energy, water resources, agriculture, and tourism, with the potential of creating a larger network of interests around the new strategic partnership.

The regional power shift sparked by the Abraham Accords had a number of knock-on consequences in the broader West Asian geopolitical chessboard. First, it added to the Israel-Iran rivalry by turning a bilateral conflict into a regional one, and the existence of two rival camps: one led by Israel and the Gulf states and another by Iran and the "Axis of Resistance." The U.S. withdrawal, from the Joint Comprehensive Plan of Action (JCPOA) in 2018 and the lack of diplomacy for reinvigorating the nuclear accord further contributed to this polarization, allowing Iran's nuclear program to proceed without restraint as it raised the likelihood of military confrontations. Secondly, the Accords also redefined the driving force of regional politics, shifting away from the centre stage of the Israeli-Palestinian conflict, and consequently lessening the leverage that the Palestinian cause had previously given regional actors like Iran and Turkey. Third, the new alignment allowed external actors, such as India, China, Russia, and the European Union, to realign their regional commitments in view of the new regional power dynamics.

The new geopolitical reality after the Abraham Accords offered India new opportunities and challenges; qualitatively different from the previous period. But on the other hand, the normalization of Israel relations with major Gulf states eliminated a major diplomatic hurdle that had limited India's capacity to enhance its ties with Israel, without risking the wrath of its Arab partners. India now has the freedom to look at collaborating with Israel in the fields of defence, technology and intelligence without worrying about the UAE or Saudi Arabia's negative response. Conversely, India was also caught in a bind due to the growing rivalry between Israel and Iran, as it would have to continue its strategic partnership with Israel while at the same time continuing its energy trade and connectivity projects with Iran. Hence, the Abraham Accords were not an unmixed blessing for India's diplomatic calculations; in addition to complicating bilateral relations, they also added a new level of polarization in the regional framework.

The ongoing escalation between Israel and Iran further brought instability into the region. Between 2024 and 2026, Israel experienced a series of escalating military incidents with Iran, such as Israeli attacks on Iranian nuclear and military facilities, Iranian "proxy" attacks on Israelis assets and interests, and proxy warfare in Syria and Iraq, and Yemen. Such moves signaled the shift of the Israel-Iran competition from an undeclared, proxy war into a more open military confrontation, which has direct implications for the stability of the region. This escalation now rendered India's multi-alignment diplomacy for the region as not being about balancing competing interests but about managing direct security threats, such as Indian nationals who were present in the region, security of energy supply lines, and critical infrastructure projects such as the Chabahar port project.

4. Research Design and Analytical Framework :

The current study adopts a multi-method research strategy with a qualitative approach to systematically explore India's strategic multi-alignment diplomacy in West Asia in the wake of the Abraham Accords. We adopt a methodological approach that combines three dimensions of analysis – diplomatic event analysis, strategic partnership mapping and regional power restructuring analysis – under a common coding structure which allows for systematic comparison of India's engagements with Israel, Iran and the Gulf states. The research design was consciously designed to reflect the changes of bilateral relations and regional power structures from 2020 to 2026.

4.1 Diplomatic Event Analysis :

The first analytical dimension is a systematic reconstruction and interpretation of key diplomatic events between India and the three main players in the region – Israel, Iran and the Gulf States (with special focus on the UAE and KSA). A chronological log was created by collecting official joint statements, press releases, summaries of bilateral visits, and official diplomatic statements from the government portals and confirmed in media archives. Date, participants, objectives, and concrete results (Agreements signed or initiatives announced) were reported for each event. The events were then coded as to their main 'balancing signal' — the 'diplomatic message' that India's action expressed on its alignment posture was assumed to be its main 'balancing signal. The categories of these balancing signals were in three areas: defense cooperation (arms procurement, joint military exercises, and intelligence sharing), energy partnership (oil and gas trade, renewable energy projects, and technology transfer), and connectivity initiatives (infrastructure projects, transportation corridors, and port development). This classification made it possible to map the geographical distribution of diplomatic involvement India has under each bilateral relationship across various sectors and thus identified the trends in the Indian balancing strategy.

4.2 Strategic Partnership Mapping :

In the second analytical dimension, India's bilateral cooperation in terms of its depth and breadth is evaluated for every regional actor using five predetermined variables: number and level of high-level visits, number and scope of Memoranda of Understanding or agreements, volume and nature of defense purchases, level of military exercises, and Indian position on Israel-Iran tensions. We gave each of the variables a qualitative score, which was based on the observable evidence of the collected data, allowing for a systematic comparison of the three relationship clusters. Seniority of visiting officials and frequency of interaction were counted to award high-level visits. In assessing defense procurement, the strategic importance of the systems acquired and value of the contracts were considered. Military exercises were assessed based on size, frequency and level of

interoperability. India's official position on the Israel-Iran quarrel ranged from vociferously pro-Israelian to deliberately ambiguous and studied neutrality. This mapping exercise created a comparative profile of intensity of engagement that India has with each of these actors and provided an empirical foundation for assessing the coherence and success of India's multi-aligned approach.

4.3 Regional Power Restructuring Analysis :

Speaking of Iran, the third analytical dimension involves the dynamic of Israel-Iran tension as a significant factor that could impact the regional power dynamics and India's diplomatic calculations. We created a timeline of some of the most notable instances of Israel-Iran confrontation, relying on open-source intelligence reports, official government sources, and credible media reports, covering the years 2020–2026. The events were classified as either direct or proxy, covering airstrikes on nuclear or military facilities, cyberattacks on critical infrastructure and naval incidents. These events were documented on an annual basis to see if there were a pattern of escalation or de-escalation. In addition, we noted any explicit or implicit messages to India from either side about India's role in the conflict, for instance Iran's guarantees for safe passage of Indian ships in the Strait of Hormuz or Israel's requests for diplomatic support.

4.4 Qualitative Coding Protocol :

The data collected, comprising of diplomatic events, partnership attributes and tension incidents, were standardized and subjected to qualitative coding in a three-tier system. The first tier resolved the main protagonists of each event/observation to distinguish between India's relations with Israel, Iran and the Gulf states and where more than one actor was involved in an event. The second tier was a coding of the domain of engagement, subdivided into defense, energy, diplomacy, technology, trade and connectivity. On the third tier, alignment valence (deepening cooperation/support, neutral (balanced) engagement, and distancing/criticism) was given to each of the coded units, depending on whether Indian action or statement aligned positively, neutrally or negatively with the actor of interest. By using this coding scheme, it was possible to systematically measure India's balancing behavior in response to the changing regional pressures, especially during times of Israel-Iran tensions. The coding process was done by two different researchers, and a 20 per cent sample of the total events was taken for inter-coder reliability to ensure consistency in classification.

This study's combination of these three dimensions of analysis in a single methodological approach permits it to transcend the descriptive level of the Indian diplomacy with West Asia to a properly empirical analysis of the functioning of the multi-alignment policies. Our research design frames diplomatic activities in either sense of partnership and in partnership attributes in the context of regional power restructuring in order to understand the dynamic interaction between India's strategic

choices and the structural constraints generated by the post-Abraham Accords geopolitical environment.

5. Empirical Analysis and Key Observations :

Drawing on the analytical framework provided in the previous section, the empirical analysis explores the nature of structural transformation in India's relation with Israel, the changing regional power dynamics, and the mechanics of India's multi-alignment diplomacy in the next five years (2020–2026). The observations are grouped into three interlinked themes that in sum indicate how India has adapted its strategic stance to adjust to the post-Abraham Accords geopolitical environment.

5.1 Post-Abraham Accords India-Israel Bilateral Cooperation Framework :

In the years since the Abraham Accords, the bilateral relations between India and Israel have seen a shift in its foundational nature such that it has gone beyond its traditional security-focused nature, to become a more holistic and integral relationship. Through our three tiers of coding protocol, analysis of these diplomatic events, defense procurement records, cooperation agreements shows a consistent pattern – more and more in multiple areas of engagement. Table 1 presents a structured overview of the key areas of cooperation identified during 2020-2026, to enable a systematic comparison of the key attributes characterizing this transformed relationship.

Table 1. India-Israel bilateral cooperation attributes post-Abraham Accords

Attribute	Details
High-Level Visits	Israeli Knesset Speaker Amir Ohana's official visit to India in December 2023; sustained ministerial-level interactions
MoU/Agreements	Signing of a new five-year defense cooperation roadmap in 2023 covering joint production, cybersecurity, and graded missiles
Defense Procurement	Continued acquisition of Barak-8 surface-to-air missile systems, Spike anti-tank guided missiles, and Hermes drones
Military Exercises	Regular conduct of 'Garuda Shakti' joint military exercises emphasizing counter-terrorism capabilities
Statements on Iran	Absence of explicit joint statements on Iran, but growing consensus on shared counter-terrorism concerns
Trade/Investment	Expansion beyond defense equipment to include diamond trading, health-tech collaboration (e.g., NexCAR19 CAR T-cell therapy), and technology transfer

Table 1 gives data which show in an ever-growing and diversifying manner the bilateral relations, in diplomatic, military and economic fields. Structured long-term planning processes were put in place, and the high-level political involvement, including the visit of the Knesset Speaker Amir Ohana in December 2023, set the ground for them. This was most evident when the 2023 comprehensive defense cooperation treaty for the next five years included a specific description of joint production, cybersecurity measures, and missile development programs of various grades. This framework represents a qualitative shift over from the prior 'ad hoc' procurement model and a focus on co-operation with production.

Defense procurements during this period indicate continued reliance on Israeli-origin systems to obtain critical defence capabilities. Cooperation, particularly at the battlefield level, was also referred to as with the purchase of Spike missiles and Hermes drones, the latter to be used with the Barak-8 surface to air missile system, a joint development project which has been a keystone of Indian naval air defence system. These purchases were accompanied by the 'Garuda Shakti' series of joint military drills that grew to emphasize more on counter-terrorism operations, where both the countries saw overlapping strategic interests. The growth was also in these other areas as "health technology" partnerships such as NexCAR19 CAR T-cell therapy expanded the partnership beyond its security space (see Table 1).

The other nuanced element of this cooperation is with respect to the handling of diplomatic signaling towards Iran. It shows there are no direct reference to Iran in the statements made together, pointing towards a cautious approach to "calibrated ambiguity" that may not over shadow India's strategic ties with Tehran. Now, however, as there has been a growing view that terrorism is a common problem, India unwittingly became part of the regional axis comprising Israel that considers Iran's proxy networks as a spoiler. Such a diplomatic stance helped India to strengthen and expand its strategic partnership with Israel, while at the same time unwilling to anger Iran, a factor which helped India to retain its flexibility needed in its multi-aligned approach.

The I2U2 multilateral framework, which includes functional cooperation amongst India, Israel, UAE and USA, was also a signpost for this structure. This establishment created a new face of Indian diplomatic relations, who, in fact, fitted well with India's increased involvement with Israel and the Gulf region in a multilateral platform under the auspices of the U.S. The I2U2 mechanism gave India an institutional platform to have multi-directional partnerships, which are difficult to coordinate bilaterally without the I2U2 mechanism, prior to the signing of the Abraham Accords. India could establish joint projects with Israel and UAE in the fields of water management, food security and space technology, in this way putting its bilateral relations with Israel in the context of a network of

partnerships with its Gulf neighbours.

5.2 Regional Power Restructuring Dynamics :

The Abraham Accords brought about a fundamental reordering of the power containment landscape throughout West Asia, both at the bilateral and strategic levels. The empirical evidence gathered in the course of our regional power restructuring analysis shows a patchwork of at times contradictory phenomena: the sharpening of conflict between Israel and Iran co-existed with novel forms of diplomatic realignment and the formation of new multilateral structures. For purposes of summarising the principal shifts in the strategic positioning of the key actors in the region, Figure 2 provides a structured overview of these changes in the period of 2020-2026 with a focus on policy posture, military engagement and diplomatic orientation.

Key Actor	Strategic Dynamics & Key Events Post-Abraham Accords
Israel	• Shift to preemptive 'Begin Doctrine'. • Normalization with Arab nations via Abraham Accords. • Expansion of conflict with Iran (2025-2026): - 'Operation Roaring Lion' (June 2025) & 'Operation Epic Fury' (Feb 2026). - Joint US-Israel strikes on Iranian nuclear facilities.
Iran	• Nuclear program escalation: - 60% enriched uranium stockpile (~440 kg). • Activation of proxy networks. • Direct retaliatory actions against US bases in Qatar and Iraq. • Diplomatic signal to India: Assurance of safe passage for Indian ships through Strait of Hormuz.
Abraham Accord Nations (UAE, Bahrain, Morocco, Sudan)	• Deepening normalization: - Opening embassies, direct flights. - Enhanced collaboration in trade, security, and technology. • Strategic challenge: Balancing reliance on US/Israel against Iran while managing regional stability.
Saudi Arabia	• Hedging strategy: - Normalization with Iran via China mediation (March 2023). - Maintains security ties with US-led bloc. • Economic leverage: Influencing oil prices via OPEC+ to impact Iran's budget.
United States	• Policy shift on Iran: - JCPOA revival attempts (2021-2022) → Collapse of nuclear talks (2024-2026). • Military posture: Maintained significant military presence in West Asia to support allies and deter Iran.

Figure 2. Regional power restructuring dynamics post-Abraham Accords

What was most important, however, was Israel's momentous shift toward a "preemptive" security policy which was clearly reflected in the Begin Doctrine and which was expressed in two major military strikes, as illustrated in Figure 2. In June 2025, Operation Roaring Lion was a joint USA/ Israel strike on Iranian nuclear facilities and in February 2026, Operation Epic Fury targeted Iranian missile facilities, marking unprecedented direct military confrontation between the two states. Israel's argument, which has been put forward in a number of official statements, was based on the estimate that Tehran is approaching around 440 kilograms of 60 percent enriched uranium, which is almost within striking distance of weapons-grade levels and which meant that it was time to stop being patient. This doctrinal transformation also put the entire calculation of risk on every regional player on a new footing because it demonstrated the resolute willingness of Israel to initiate a invasion of Iranian

territory on a large-scale basis with the unquestioned approval of the U.S. and therefore raise the stakes in the game.

Iran responded to this escalation in two ways: military and diplomatic. On the military side, Iran mobilized its proxy networks to retaliate against U.S. bases in Qatar and Iraq and also continued to develop its own nuclear and missile prowess in case of additional attacks. However, the key finding that came out of our event tracking with respect to Iran has to do with their own diplomatic signaling towards India. Ambassador Mohammad Fathali's "our friend, Indian ships will pass safely through the Strait of Hormuz. No attack, energy supply intact" is a careful and strategic assurance, which takes into account the India's balancing act. The guarantee is indicative of Iran's clear confrontation of Israel and the United States as well as the importance for it to keep good working relations with New Delhi and a willingness to make concrete assurances on the security of Indians. Importance of the Strait of Hormuz for India's energy security is also significant in this regard as approximately 80 per cent of India's crude oil imports are transiting through the narrow strait.

The Abraham Accord countries (the UAE, Bahrain, Morocco and Sudan) further the process of normalization by implementing institutional agreements such as opening embassies, establishing direct flights, and developing areas of cooperation in trade, tourism, security and technology. But as Figure 2 shows, those states were stuck with a strategic conundrum: because they depended on the U.S. and Israel for checking Iran, they also had to deal with the fallout of unlimited Israeli military force, especially in terms of the potential to cause regional instability that undermined their own own efforts at economic diversification and foreign investment. However, a majority of regional players adopted a wait-and-see approach on the Israeli-Iranian escalation which gave them the option to move against Iran without getting directly involved in the conflict—a form of hedging bet with both sides than equipping with any one side.

Saudi Arabia's positioning at this juncture carries lessons in understanding the intricacies of the regional order in the aftermath of the Accords. Animosities and polarization efforts aside, the Kingdom was engaged in a big hedging game in March 2023, as relations were normalised with Iran via China. Meanwhile, Saudi Arabia played the role of the leader in OPEC+ to influence oil prices and thus restrain Iran's budget, as well as create security ties with the bloc led by the United States. This "double" approach (normalisation with Iran and not without the America-Israel methods of the strategic axis) reflects the complex positions of middle powers in the region to manage between various pressures. India's own multi-alignment policy was substantiated by Saudi Arabia's hedging policy, and it also gave the chance to India to move in the same direction as the hostile powers – here, Saudi Arabia, which felt that such kind of policy was viable and wise.

The power restructuring also was complicated by the changing role of the United States in the region. Diplomacy failed to revive the JCPOA in the period between 2021 and 2022, and by 2024, nuclear negotiations completely ended in failure leading Washington to a "perpetual military deterrent posture". The continued presence of the IDF in West Asia, including naval presence, rotation of air force units and joint air force exercises with local partners are all part of this policy change today to prevent the Iranians from changing the tide and to aid Israel's preemptive strikes. The U.S. policy also, however, generated tensions with U.S. Gulf allies, which were concerned about the necessity to maintain productive economic and diplomatic relations with Iran while seeking security from the U.S. This created an atmosphere of increased strategic ambiguity in which military force was concurrently matched with diplomatic ambiguity and allies and enemies were rendered increasingly indistinct.

This dynamic of power had significance beyond these regional implications, and it is reflected in the map in Figure Three, which shows the trajectory of the Israel-Iran confrontation on multiple fronts.

Aspect	Details
Power Balance	Iran's influence decreasing; Israel-UAE-Saudi axis strengthening.
New Formations	I2U2 (India, Israel, UAE, USA); Normalization alliances; Gulf-Israel security framework.
Proxy War	Houthi attacks on Saudi/UAE; Hezbollah activity; Israeli strikes on Iran-linked assets.
Palestine Issue	Palestinian Authority sidelined; Normalization despite continued occupation; India's evolving stance.
External Great Powers	US military drawdown; China's Belt and Road; Russia in Syria; India's balancing role.

Figure 3. Israel-Iran tension escalation events and regional power restructuring

Figure 3 shows that post-Abraham Accords saw a basic process of recalibration in which the influence of Iran was lessened while an Israel-UAE-Saudi alliance emerged. This power shift went hand-in-hand with new diplomatic entities such as the I2U2 mechanism and other security partnerships with the Gulf states, institutionalizing the new alignment structures. The proxy war aspect has become more pronounced as the Houthis attacked Saudi and UAE targets, Hezbollah activities in Israel's

north and Israeli strikes in Syria and Iraq on Iranian-backed forces have been on the rise and more direct. In particular, as seen in Figure 3, the Palestinian issue was gradually phased out, so much so that by the time of the continuation of the normalization process, the Palestinian Authority was no longer of great importance – even in the face of an ongoing occupation situation, India wanted to keep the process going. The outside presence of great powers was also another factor to complicate the situation, as the U.S. military withdrawal from Iraq and Afghanistan created an imbalance that China wanted to fill in with Belt and Road investments, Russia continued to deploy its military in Syria and India was seen as a strategic balancing player, able to engage all the parties in one go.

The regional power dynamics, which were getting reshaped, were having far-reaching implications for India's diplomacy. As the Israel-Iran showdown gets tougher, India found itself increasingly in a tight spot, with its expanding military cooperation with Israel and its need to continue its energy security and connectivity agenda with Iran. Iran's explicit commitment to India that it would allow Indian ships safe passage through the Strait of Hormuz, as reported in our event analysis, was an important diplomatic feat for India, as it demonstrated its balancing efforts were known and were being taken into consideration even by the one party most directly vulnerable to its partnership with the other camp. But as part of the larger trend of polarization in the region, India's strategic options for maintaining the balance were diminishing, and soon, there would be a point where India would have to make a decisive choice between the two parties in an increasingly polarized world.

5.3 India's Multi-Alignment Diplomacy and Balancing Strategy

The multi-alignment diplomacy of India operates on the intersecting regional dynamics which is a calibrated mechanism to provide parallel engagement with three sets of mutually opposed clusters of countries—Israel, Iran and Gulf states—by providing for sectoral compartmentalisation and issue-wise cooperation. The empirical findings in our diplomatic event analysis indicate that the overall approach to this strategy was one of planned strategic deepening, away from the military arena to other avenues of the bilateral relationship with Israel, and thus away from the traditional area of bilateral relations.

Date	Event Description	Balancing Signal
Sep 2020	Israel's Startup Nation Central and India's iCREATE signed a bilateral prog cooperation	Tech/Innovation Alignment
Dec 21, 2020	India and Israel signed an agreement on cooperation in health and medic	Health Strategic Partnership
May 2023	India and Israel signed an MoU on Industrial Research and Development (ecosystem	Industrial R&D Alignment

rael's

Figure 4. India-Israel diplomatic events and balancing signals 2020-2023

A summary of historically confirmed Indo-Israeli events from 2020 to 2023 shows a noticeable

trend of messages promoting Israel's presence in civilian fields as well as a deliberate tone deafness about Iran, as seen in Figure 4. Indeed, the September 2020 bilateral program between Startup Nation Central and Indian iCREATE marked a "Tech/Innovation Alignment" that coincided with the Abraham Accords and was seemingly India's conscious effort to define India/Israel relations as a technological one rather than military one. This was followed by the cooperation agreement in the field of health and medicine signed in December 2020 under the rubric of a "Health Strategic Partnership," at a time when the world was preoccupied with the response to the pandemic, which allowed India to further develop its relations with Israel under the guise of global health cooperation. This trend was continued under the MoU on Industrial Research and Development Cooperation signed in May 2023, indicating ongoing cooperation on non-defense initiatives amidst rising regional tension. All three events are examples of India's consistent look at developing functional cooperation with Israel in the areas of technology, healthcare and industrial research, and creating positive interactions that go beyond India's conventional military focus and diversify the bilateral relationship.

The overall multi-alignment story can't be fully traced from the India-Israel dyad alone, however. There is a need for concurrent mapping of India's relations with Iran and the Gulf countries in parallel time periods and areas. Based on the qualitative evidence of our event analysis, we propose that Indian diplomacy could be divided into three axes and differentiated sectoral discussion points for each of them. At one end are the ties between Israel and its key partners that include defense purchases, technology cooperation and intelligence sharing, but which are not dressed up in anti-Iran rhetoric. The Iran axis is to have its hub in energy trade, especially crude imports, the port of Chabahar as India's strategic hub into Central Asia and Afghanistan, and through diplomatic contacts the relationship will remain transactional. The Gulf axis is about oil imports, remittances from NRA, bilateral and multilateral trade pacts such as I2U2 (which ultimately involves Israel too), and institutional arrangements that at the same time incorporate Israel as well (and provide a multilateral envelope for what might otherwise be bilateral paradoxes).

The key enablers that allow this balancing to occur are a part of India's structural conditions and strategic assets. Gulf diaspora remittances of about $50 million a year (just for the UAE and Saudi Arabia) give India a lot of leverage to push the Gulf states to accept India's parallel involvement with Iran. In contrast, India is not yet dependent on Israel for any other system so that it cannot continue a credible trajectory of modernization of its defense system while pursuing other suppliers, as it does in the case of Israel for systems such as Barak-8 and Spike. The significance of the Chabahar port to trade with Afghanistan and Iranian access to Central Asia are a good justification for why Israel and the Gulf states would not be able to publicly challenge its relationship with Iran's government

even if it were to fail. All such domestic drivers combine to enable India to exercise strategic agency without being caught into any one trap; no single partner is able to entirely replace the other.

It is with this sense of 'strategy' that India is articulating its diplomatic stance officially and gives legitimacy to its parallel engagements. Ministry of External Affairs, the Prime Minister's Office and the National Security Advisor have used phrases like "strategic multi-alignment" publicly and have clearly signaled the "de-hyphenation" of the issues impacting Israel-Palestine from India's overall Israel relations. This rhetorical structure recognizes both the multiple facets of India's West Asian attitude, and the necessity of not viewing them through the lens of the conflicts among them, but of dealing with each one individually, and on its own terms. The de-hyphenation stance is all the more important because it is a conscious denial of the idea that the engagement with Israel has to be at the cost of India's traditional engagement with Palestine and permits India to be symbolically with Palestine while engaging in substantive cooperation with Israel.

Iran's strategic signals as our event tracking shows confirmed the efficacy of this balancing strategy. Ambassador Fathali's promise that the Indian vessels would be "safe" in the Strait of Hormuz was not just a diplomatic courtesy; it also was a tacit acceptance of India's triangulation strategy. In doing so, Iran indicated that it was not counting India as part of the conflict, thereby confirming India's stance as a neutral, if not a friendly, player in the region even when it has been advancing its defence cooperation with Tehran's key regional rival, Israel. This acceptance is important for the viability of India's multi-alignment approach because it signifies that the approach of balancing was not one that produced enough negative externalities for any one actor that they would feel compelled to retaliate. Likewise, the Gulf states have continued to engage India with the CEPA and I2U2 frameworks, despite India's parallel ties with Iran, as the economic and diplomatic benefits of the India relationship have outweighed alignment on ideological purity against Iran. The space that India's balancing strategy has created for itself is further highlighted by the fact that Israel has not recorded any intervention in an attempt to push India away from Iran.

The empirical evidence, however, also shows some intrinsic weaknesses and risks in this. Because comprehensive UN voting records in the available data were unavailable, it wasn't possible to fully compute the strategic balancing score, which would systematically compare the proportion of times that India voted with Israel, Iran, and Gulf states on comparable resolutions. This gap in data impacts the accuracy with which it can be measured how well India's parallel engagements are balanced or if they tilt in favour of one actor over time. Qualitative evidence indicated a nuanced situation in which India increased its defense and tech cooperation with Israel considerably and energy trade with Iran has been limited due to U.S. sanctions, whereas its Gulf cooperation has grown within institutional

frameworks. While the depth of these relationships is still asymmetrical, the security aspect of India-Israel cooperation is more so, which begs the question: how sustainable is a balancing policy that sees a growing tilt towards one side of the regional divide? This balancing act is complicated by the escalation of Israel-Iran military confrontations, described in the previous subsection, as it introduces additional direct security risks that can only be addressed by non-sectoral measures. The safe passage guarantee from Iran was of a diplomacy nature, but it could be vulnerable in the case of the broader regional war which could undermine the Strait of Hormuz's status as a neutral waterway.

6. Strategic Implications and Theoretical Contributions :

The findings of this study's empirical analysis have important theoretical and practical implications for comprehending middle-power diplomacy in contestational regional contexts. On the theoretical level, our results question the passive-receptive idea of non-alignment and suggest a multi-alignment strategy, rather than a 'no-alignment' one, and this approach we describe as a 'constructive multi-alignment'. This suggests that states such as India might simultaneously be able to sustain close strategic relationships with "mutually adversarial actors" without having to settle for zero-sum trade-offs, by making sure that cooperation takes place on separate functional segments and by building the structural dependence that would prevent one actor from allowing another to pursue parallel cooperation with an adversary. The I2U2, the formalized cooperation between India, Israel, UAE and the United States, provides a concrete example of how cooperation in multilateral architectures can provide a diplomatic space for middle powers to deal with antagonistic aspects of cooperation relations that are not sustainable in only bilateral settings. The concept of "managed balancing" proposes a new dimension to realist approaches to alliance politics, in that a state can purposefully design the quantity and nature of their alliances to avoid a dominant relationship, while simultaneously creating deterrence against withdrawal of cooperation from any single partner that might otherwise be able to affect their strategic portfolio.

The policy insights of this research are especially applicable for foreign policy practitioners in middle powers in the context of increasingly polarized regional settings. Based on our analysis, there are three operational requirements for effective multi-alignment diplomacy: First, the creation of asymmetric dependency relations between the various partners where one gets more from the relationship than the other from tolerating other states' participation; second, the promotion of credible alternatives in every domain of cooperation to prevent any one partner from becoming a monopoly provider of critical capabilities; and third, the establishment of a consistent doctrinal framework that justifies his or her participation in both engagements through notions like "sectoral de-hyphenization" or "issue-specific cooperation." The study provides empirical proof that the

balancing strategy Indian policymakers have followed has been recognised and accommodated by Iran, as is evident in the explicit safe passage guarantees for Indian ships in the Strait of Hormuz, and argues that complementing the existing institutional mechanisms, such as I2U2 and the India-UAE CEPA, with similar multilateral guarantees, can further keep Indian multi-alignment posture stable, by providing a multilateral container to accommodate bilateral contradictions. Second-order implications include other middle powers in disputed spaces, including Turkey's management of NATO-Russia dynamics, Indonesia's management of its dependence upon China and USA, or Brazil's simultaneous embrace of both Western and BRICS partners and its strategic approach to bordering on these nations, and the Indian model of sectoral compartmentalisation and cultivation of asymmetric dependency may have strategic components that are applicable to other middle powers.

However, there are also methodological limitations of this study that limit the generalizability and accuracy of our results. The emphasis on open-source intelligence material and government press releases means that there is the risk of selection bias, since these documents may not fully represent the substance of India's contentious relationship with Israel, Iran, and Gulf countries, but instead are limited to public statements. The full 2020–2026 period in our database did not include vote records from the United Nations General Assembly, meaning we were not able to calculate a "balancing score" for India that would quantify the extent to which India was aligning with each set of partners across various categories of issues as well. In addition, the three-part classification of the valence of alignment (positive, negative, neutral) adopted in our coding protocol may be an overly simple representation of the more complex gradations of diplomatic signaling in actual statecraft, where not talking about problems on the grounds that they are "neutral" can have significant strategic implications. Finally, there is a subjective dimension to determining whether a particular event is more or less indicative of a "balancing signal" when it comes to diplomatic events—the same joint statement on counter-terrorism, for example, could be seen as an indication of greater commitment to Israel or more generic and thus less likely to offend Iran. The limitations indicate that the results of this study should be considered indicative trends and future studies should aim to account for classified documents, elite interviews with those responsible for foreign policy and quantitative content analysis of diplomatic documentation to achieve triangulation and congruence with the conclusions drawn from open sources of data.

Based on these limitations, several suggestions for future research are the following: Comparative case studies are needed to explore how other middle powers—those similarly situated terrestrially, like Turkey, Indonesia or South Africa—have faced similar issues in multiple alignment in their respective regions. Future research should examine if the sectoral compartmentalization

used in India's West Asia diplomacy is replicable in other geopolitically contentious zones or if it hinges on particular structural conditions, for instance, diaspora leverage, energy dependency relationship and/or dependency asymmetry between two bilateral countries, which may be unique to India. Also, there is a lack of research on the micro-dynamics of multilateral diplomacy in the context of I2U2, especially how the tensions between collective action and bilateral interests are negotiated within the grouping and how it affects the development of I2U2 over time. But beyond 2026, it will be important to prepare for the possibility of a further escalation in the Israel-Iran faceoff, where India may have to prove its multi-alignment strategy by upholding its commitment to safe passage of the Strait of Hormuz, even in the event of a broader regional conflict, where Iran may be unable to exempt Indian shipping from its military operations. Finally, future research should incorporate systematically the domestic political economy factors (such as Indian diaspora in the Gulf states, Indian defense contractors dependent on Israeli technology, Indian energy security calculations that drive its engagement with Iran, etc.) to develop a broader model of how domestic structural factors facilitate or make it more difficult to pursue a multi-alignment diplomacy.

7. Conclusion :

This paper has explored the reconfiguration of the Indian-Israeli ties in the post-Abraham Accords geopolitical setting and how India continues to maintain its multi-alignment foreign relations in the backdrop of the ever-increasing Israel-Iran conflict. The main point, as the Arab-Israeli conflict has evolved since the founding of the State of Israel, is that the Abraham Accords have spurred the strengthening of the relationship between India and Israel in their defense, technology, and diplomacy sectors but India has been able to continue parallel relations with Iran and the Gulf states by employing a parallel sectoral compartmentalization and cultivating asymmetric dependency. The straight-of-the-dollar assurances of safe passage for Indian shipping operations through the Strait of Hormuz are strong indication that the balancing is tacitly accepted by the very actor most alarmed by India's growing engagement with its chief regional opponent. The theoretical significance is that the middle powers can have robust cooperative relations with politically opposite partners, as the multi-alignment between two parties can be implemented in a constructive manner, by dividing functional areas of cooperation and establishing a multilateral format to resolve bilateral paradoxes.

While India's example may yield lessons for other middle powers in contested regional settings, its applicability must be qualified by the fact that India is structurally privileged with large numbers of Gulf diaspora, remittances and significant security and military dependence, geographical connectivity initiatives, none of which can be inherent in other states. Future studies should build on this analysis with comparative case studies on other middle powers states that are using similar balancing

approaches, the systematic collection of United Nations voting patterns to empirically estimate the extent of alignment on a range of issue areas, and the micro-dynamics of diplomatic negotiations within multi-lateral or multi-security structures like I2U2. India's multi-alignment stance is still on the table in the event of further escalation in the Israel-Iran conflict, especially if regional war undermines the assurances currently underpinning the multiple commitments it has. Longitudinal tracking beyond 2026 will be key to measuring the durability of a multi-aligning constructivist path and to identify whether this is possibly a temporary equilibrium depending on geopolitical circumstances that may not continue.

References

[1] HJA Sevilla (2024) The Abraham Accords and peace in the Middle East: Regional reception and implications. *Jurnal CMES*.

[2] H Rigi (2026) From Anti-Colonialism to Strategic Realignment: India's Evolving Foreign Policy vis-à-vis Israel. *Middle East Critique*.

[3] Y Bulut (2026) From Palestine Ally to Zionist Partner: India-Israel Relations, 2014-2025. *Middle East Policy*.

[4] I Hossain (2026) … VS. SOVEREIGNTY: REINTERPRETING INTERNATIONAL LAW IN THE STRAIT OF HORMUZ AND ITS IMPLICATIONS FOR INDIA-IRAN RELATIONS. *The Social Science Review A Multidisciplinary Journal*.

[5] M Hassam & A Chaudhary (2026) Geopolitics as a Foreign Policy Determinant between India and Iran. *The Research Frontline-Journal*.

[6] S Katyaini & B Daher (2026) India and the Gulf: A New Strategy for Water, Energy, Food, and Ecosystem Security. *Policy Pathways for Food and Water Security in the Middle East and North Africa*.

[7] C Reus-Smit (1997) The constitutional structure of international society and the nature of fundamental institutions. *International Organization*.

[8] R Mishra (2023) From non-alignment to multi-alignment: assessing India's foreign policy shift. *The Round Table*.

Email Id: hssingh.phd2025@polscience.du.ac.in/abpr90@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 164-168

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

एक जिला एक उत्पाद (ओडीओपी) योजना के अंतर्गत आलू आधारित विकास : मध्य प्रदेश के इंदौर जिले का अध्ययन

राजा डावर

शोधार्थी, समाज विज्ञान संकाय, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर।

डॉ. बी एल पाटीदार

प्राध्यापक, भूगोल विभाग, शा. महाविद्यालय उमरन, धार, म.प्र.।

सारांश :

एक जिला एक उत्पाद (ओडीओपी) योजना भारत सरकार की एक बेहद महत्वपूर्ण पहल है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रत्येक जिले की विशिष्ट उत्पादक क्षमता को उजागर करके स्थानीय आर्थिक विकास, मूल्य संवर्धन और रोजगार सृजन को बढ़ावा देना है। मध्य प्रदेश में इंदौर जिले को आलू ओडीओपी उत्पाद के रूप में चुना गया है, क्योंकि यह राज्य के प्रमुख आलू उत्पादक क्षेत्रों में से एक माना जाता है और यहाँ आलू प्रसंस्करण उद्योग के लिए पर्याप्त संभावनाएँ उपलब्ध हैं। इस अध्ययन में इंदौर जिले में आलू आधारित विकास को बढ़ावा देने में ओडीओपी योजना की भूमिका और मध्य प्रदेश में आलू उत्पादन की प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। यह स्पष्ट है कि राज्य में आलू उत्पादन और उत्पादकता में लगातार वृद्धि हुई है, जिसके कारण इंदौर जिले में प्रसंस्करण उद्योग, रोजगार सृजन और ग्रामीण आर्थिक विकास की संभावनाएँ मजबूत हुई हैं।

कुंजी शब्द : ओडीओपी, आलू, इंदौर जिला, मूल्य संवर्धन, कृषि विकास, मध्य प्रदेश।

1. परिचय :

भारत सरकार द्वारा शुरू की गई 'एक जिला एक उत्पाद' (ओडीओपी) योजना का उद्देश्य प्रत्येक जिले की विशिष्ट उत्पादक क्षमता को पहचानना और उसे आर्थिक विकास का आधार बनाना है। यह योजना स्थानीय संसाधनों, कौशल और कृषि उत्पादों के माध्यम से मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण, विपणन और रोजगार सृजन को प्रोत्साहित करती है (खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय, 2023)। मध्य प्रदेश में इंदौर जिले के लिए आलू को ओडीओपी उत्पाद के रूप में चुना गया है, क्योंकि यह जिला राज्य के प्रमुख आलू उत्पादक क्षेत्रों में से एक है। मध्य प्रदेश में आलू उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है। कृषि एवं किसान कल्याण विभाग (2024) के अनुसार, वर्ष 2019–20 में राज्य का कुल आलू उत्पादन 3457.30 हजार टन था, जो वर्ष 2023–24 में बढ़कर 3949.00 हजार टन हो गया। इसी दौरान आलू की उत्पादकता 22.90 टन प्रति हेक्टेयर से बढ़कर 25.39 टन प्रति

हेक्टेयर हो गई। यह वृद्धि आधुनिक कृषि तकनीकों, उन्नत बीजों और बेहतर प्रबंधन पद्धतियों के उपयोग को दर्शाती है। इंदौर जिला आलू उत्पादन और प्रसंस्करण दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यहाँ उत्पादित आलू का उपयोग चिप्स, वेफर्स, फ्रेंच फ्राइज, स्टार्च और अन्य प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण के लिए किया जाता है। इससे किसानों को कच्चा उत्पाद बेचने के बजाय मूल्य संवर्धित बाजारों से जुड़ने का सुनहरा अवसर मिलता है। ओडीओपी योजना के तहत आलू आधारित सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योगों को भी प्रोत्साहन मिला है, जिससे स्थानीय स्तर पर रोजगार और उद्यमिता के अवसर बढ़े हैं (मध्य प्रदेश शासन, 2024)।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय (2023) के अनुसार, ओडीओपी योजना स्थानीय उत्पादों के उत्पादन, प्रसंस्करण और विपणन को एकीकृत कर क्षेत्रीय आर्थिक विकास को गति प्रदान करती है। चतुर्वेदी, राजपूत, राठौर और सिंह (2024) के अध्ययन में पाया गया है कि इंदौर जिले में आलू उत्पादन की उच्च सघनता और प्रसंस्करण की संभावनाएँ इसे राज्य के प्रमुख कृषि–आधारित औद्योगिक केंद्रों में एक महत्वपूर्ण स्थान दिलाती हैं। वहीं, कृषि एवं किसान कल्याण विभाग (2024) के आँकड़े यह दर्शाते हैं कि राज्य में आलू उत्पादन और उत्पादकता दोनों में वृद्धि हुई है, जिससे आलू आधारित उद्योगों के विस्तार की संभावनाएँ और अधिक मजबूत हुई हैं।

2. अध्ययन के उद्देश्य :

- इंदौर जिले में आलू आधारित आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में 'एक जिला एक उत्पाद' योजना की भूमिका का अध्ययन करना।
- आलू उत्पादन और उत्पादकता के प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए मूल्य संवर्धन और रोजगार सृजन पर उसके प्रभाव का मूल्यांकन करना।

3. कार्यविधि :

यह अध्ययन पूरी तरह से द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। इस अध्ययन के लिए खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय, कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, मध्य प्रदेश उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग तथा विभिन्न सरकारी प्रकाशनों से आँकड़े संकलित किए गए हैं। आँकड़ों के विश्लेषण में वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग किया गया है।

मध्य प्रदेश में आलू उत्पादन की प्रवृत्ति :

सारणी 1 में वर्ष 2019–20 से 2023–24 तक मध्य प्रदेश में आलू के क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता के आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। सारणी 1 में वर्ष 2019–20 से 2023–24 तक मध्य प्रदेश में आलू के क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता के आँकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि अध्ययन की अवधि के दौरान मध्य प्रदेश में आलू उत्पादन में समग्र वृद्धि हुई है। वर्ष 2019–20 में आलू का उत्पादन 3457.30 हजार टन था, जो वर्ष 2023–24 में बढ़कर 3949.00 हजार टन हो गया। हालाँकि वर्ष 2023–24 में क्षेत्रफल में कमी दर्शाई गई, फिर भी उत्पादकता बढ़कर 25.39 टन प्रति हेक्टेयर हो गई, जो अध्ययन की अवधि का सर्वोच्च स्तर है। यह स्पष्ट है कि उन्नत बीजों, आधुनिक कृषि तकनीकों और बेहतर प्रबंधन विधियों के कारण उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई है (कृषि एवं किसान कल्याण विभाग, 2024)।

सारणी 1 : मध्य प्रदेश में आलू का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता

वर्ष	क्षेत्रफल (हजार हेक्टेयर)	उत्पादन (हजार टन)	उत्पादकता (टन प्रति हेक्टेयर)
2019–20	151.00	3457.30	22.90
2020–21	156.39	3566.94	22.81
2021–22	158.43	3587.90	22.65
2022–23	172.21	3954.91	22.97
2023–24	155.56	3949.00	25.39

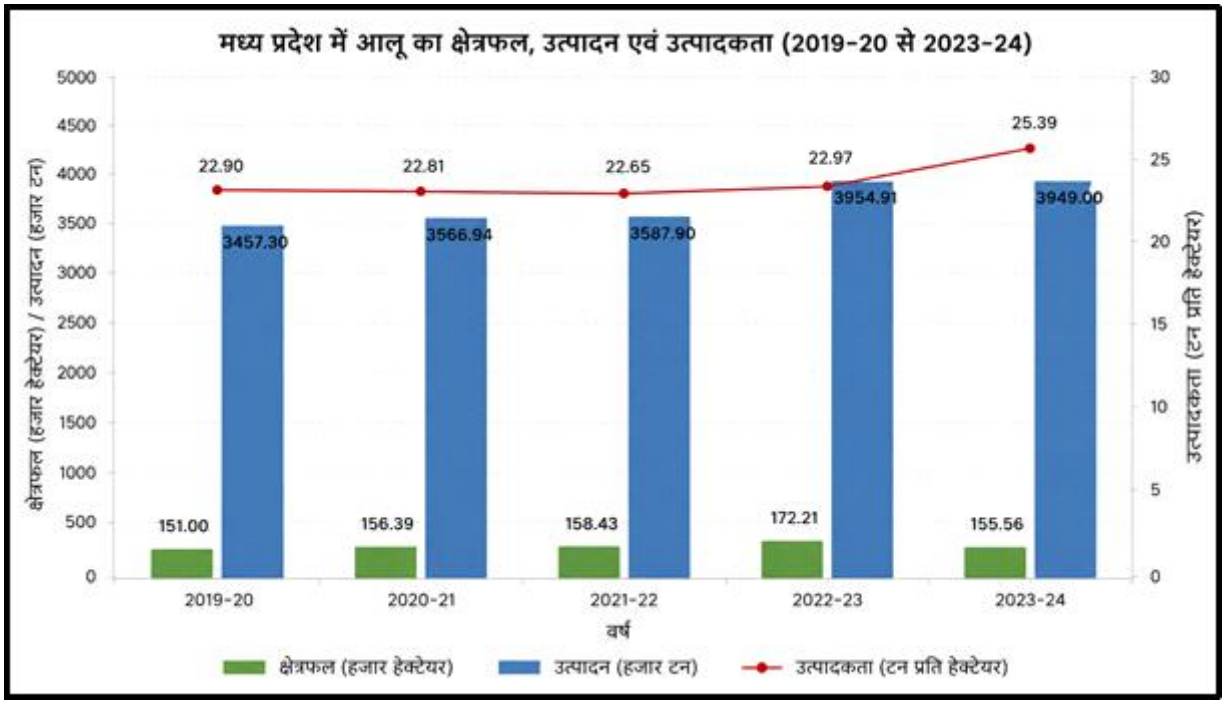
स्रोत : हॉर्टिकल्चर स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लांस, 2024

आलू उत्पादन की वृद्धि दर का आकलन करने हेतु चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (Compound Annual Growth Rate&CAGR) का उपयोग किया गया। यह किसी निश्चित अवधि में उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि को मापने की एक प्रचलित सांख्यिकीय विधि है।

चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर :

सीएजीआर = [(अंतिम मान ÷ प्रारंभिक मान)' (1 ÷ वर्षों की संख्या), - 1

- अंतिम मान = अध्ययन अवधि के अंतिम वर्ष का उत्पादन।
- प्रारंभिक मान = अध्ययन अवधि के प्रथम वर्ष का उत्पादन।
- वर्षों की संख्या = अध्ययन अवधि के कुल वर्ष।



स्रोत– शोधार्थी द्वारा हॉर्टिकल्चर स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लांस, 2024 आंकड़ों से निर्मित।

वर्ष 2019–20 में आलू उत्पादन 3457.30 हजार टन तथा वर्ष 2023–24 में 3949.00 हजार टन दर्ज किया गया। उक्त आँकड़ों के आधार पर गणना करने पर आलू उत्पादन की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर लगभग

3.38 प्रतिशत प्राप्त हुई। यह परिणाम दर्शाता है कि अध्ययन की अवधि के दौरान मध्य प्रदेश में आलू उत्पादन में निरंतर वृद्धि हुई है। उत्पादन वृद्धि की यह प्रवृत्ति इंदौर जिले में आलू आधारित प्रसंस्करण उद्योगों और 'एक जिला एक उत्पाद' योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती है।

4. इंदौर जिले में आलू का ओडीओपी उत्पाद के रूप में महत्व :

इंदौर जिला मध्य प्रदेश के प्रमुख आलू उत्पादक जिलों में से एक है। जिले में बड़े पैमाने पर आलू उत्पादन होने के कारण यह प्रसंस्करण उद्योगों के लिए कच्चे माल का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। राज्य में आलू उत्पादन में इंदौर का उल्लेखनीय योगदान है, जिसके कारण इसे ओडीओपी योजना के अंतर्गत आलू आधारित जिले के रूप में चयनित किया गया। ओडीओपी योजना के अंतर्गत आलू को चयनित किए जाने का आधार इसकी उच्च उत्पादन क्षमता, व्यापक बाजार मांग तथा मूल्य संवर्धन की संभावनाएँ हैं (खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय, 2023)। आलू एक ऐसी फसल है जिसका उपयोग केवल सब्जी के रूप में ही नहीं, बल्कि अनेक प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादों के निर्माण में भी किया जाता है। आलू आधारित प्रसंस्करण उद्योगों में चिप्स, वेफर्स, फ्रेंच फ्राइज, आलू फ्लेक्स, स्टार्च तथा अन्य खाद्य उत्पादों का निर्माण किया जाता है। इन उत्पादों की घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय बाजारों में निरंतर मांग बनी रहती है। परिणामस्वरूप आलू उत्पादन को उद्योगों से जोड़कर किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त करने की संभावना बढ़ जाती है।

इंदौर जिले की विकसित परिवहन व्यवस्था, निकटवर्ती शहरी बाजार तथा कृषि आधारित औद्योगिक वातावरण भी आलू आधारित उद्योगों के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करते हैं। ओडीओपी योजना के माध्यम से प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना, तकनीकी सहायता तथा विपणन सुविधाओं को प्रोत्साहन मिलने से जिले में कृषि एवं उद्योग के मध्य समन्वय मजबूत हुआ है। इससे किसानों, उद्यमियों तथा स्थानीय युवाओं के लिए नए आर्थिक अवसर उत्पन्न हुए हैं।

5. ओडीओपी योजना का आर्थिक महत्व :

ओडीओपी योजना इंदौर जिले में आर्थिक विकास को बहुआयामी रूप से प्रोत्साहित करती है। सर्वप्रथम, यह कृषि उत्पादों के मूल्य संवर्धन को बढ़ावा देती है। सामान्यतः किसान कच्चे आलू को बाजार में बेचते हैं, जिससे उन्हें सीमित लाभ प्राप्त होता है। किंतु जब उसी आलू का उपयोग चिप्स, फ्रेंच फ्राइज, स्टार्च अथवा अन्य प्रसंस्कृत उत्पादों के निर्माण में किया जाता है, तो उसके आर्थिक मूल्य में कई गुना वृद्धि हो जाती है। इससे किसानों की आय में अप्रत्यक्ष रूप से वृद्धि होती है तथा कृषि को अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है। यह योजना प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आलू उत्पादन, भंडारण, परिवहन, प्रसंस्करण, पैकेजिंग तथा विपणन से संबंधित गतिविधियों में बड़ी संख्या में रोजगार अवसर उत्पन्न होते हैं। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं तथा महिलाओं के लिए स्वरोजगार और लघु उद्यम स्थापित करने की संभावनाएँ बढ़ती हैं।ओडीओपी योजना किसानों और उद्योगों के मध्य बेहतर बाजार संपर्क स्थापित करती है। प्रसंस्करण इकाइयों की बढ़ती मांग किसानों को अपेक्षाकृत स्थिर बाजार उपलब्ध कराती है, जिससे मूल्य अस्थिरता का प्रभाव कम होता है। इसके अतिरिक्त यह योजना स्थानीय स्तर पर निवेश को आकर्षित करती है तथा कृषि आधारित औद्योगिक विकास को गति प्रदान करती है। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था अधिक सशक्त और विविधीकृत बनती है।

6. चुनौतियाँ :

यद्यपि इंदौर जिले में आलू आधारित विकास की पर्याप्त संभावनाएँ हैं, फिर भी कुछ चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इनमें शीत भंडारण सुविधाओं की सीमित उपलब्धता, उत्पादन लागत में वृद्धि, बाजार मूल्यों में उतार–चढ़ाव तथा आधुनिक प्रसंस्करण तकनीकों तक सीमित पहुँच प्रमुख हैं। आलू एक शीघ्र नष्ट होने वाली कृषि उपज है, इसलिए पर्याप्त भंडारण सुविधाओं का अभाव किसानों को फसल कटाई के तुरंत बाद कम कीमतों पर उत्पाद बेचने के लिए विवश कर सकता है।

इसके अतिरिक्त उर्वरकों, बीजों, सिंचाई तथा श्रम लागत में लगातार वृद्धि से उत्पादन लागत बढ़ रही है, जिससे किसानों के लाभांश पर प्रभाव पड़ता है। छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए आधुनिक तकनीकों तथा प्रसंस्करण सुविधाओं तक पहुँच अभी भी सीमित है। कई क्षेत्रों में किसानों को बाजार संबंधी सूचनाओं तथा मूल्य संवर्धन के अवसरों की पर्याप्त जानकारी भी उपलब्ध नहीं हो पाती।

अतः आवश्यक है कि शीत भंडारण क्षमता का विस्तार किया जाए, किसानों को तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान किया जाए तथा प्रसंस्करण उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए। इन उपायों के माध्यम से ओडीओपी योजना के लाभों को अधिक प्रभावी ढंग से किसानों एवं स्थानीय समुदाय तक पहुँचाया जा सकता है।

7. निष्कर्ष :

एक जिला एक उत्पाद' योजना स्थानीय संसाधनों पर आधारित आर्थिक विकास का एक प्रभावी मॉडल प्रस्तुत करती है। इंदौर जिले में आलू को ओडीओपी उत्पाद के रूप में चयनित करना जिले की कृषि क्षमता और उत्पादन विशेषीकरण को दर्शाता है। अध्ययन से स्पष्ट है कि मध्य प्रदेश में आलू उत्पादन और उत्पादकता दोनों में वृद्धि हुई है और वर्ष 2019–20 से 2023–24 के बीच आलू उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दर लगभग 3.38 प्रतिशत रही है। यह प्रवृत्ति आलू आधारित प्रसंस्करण उद्योगों के विकास के लिए अनुकूल आधार प्रदान करती है। इसलिए, उचित अवसंरचना, भंडारण सुविधाओं और प्रसंस्करण इकाइयों के विस्तार के माध्यम से इंदौर जिले को आलू आधारित औद्योगिक केंद्र के रूप में विकसित किया जा सकता है।

संदर्भ :

- कृषि एवं किसान कल्याण विभाग। (2024)। हॉर्टिकल्चर स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लांस 2024। भारत सरकार।
- खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय। (2023)। एक जिला एक उत्पाद (ओडीओपी) योजना दिशा–निर्देश। भारत सरकार।
- मध्य प्रदेश शासन। (2024)। उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण सांख्यिकी। उद्यानिकी एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग, भोपाल।
- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान। (2024)। भारत में आलू उत्पादन एवं प्रौद्योगिकी विकास। शिमला।
- नीति आयोग। (2022)। भारत में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र : अवसर एवं चुनौतियाँ। भारत सरकार।
- कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय। (2024)। एग्रीकल्चरल स्टेटिस्टिक्स एट ए ग्लांस। भारत सरकार।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 169-175

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इतिहास में हिन्दी के साहित्यिक साक्ष्यों की भूमिका (1900–1950)

डॉ. दीपक कुमार, शोध निर्देशक एवं असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग, एस. एस. वी. कॉलेज हापुड़, उत्तर प्रदेश।
मयंक वसु, शोधार्थी,
इतिहास विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

शोध सार :

प्रस्तुत शोध–पत्र 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (1900–1950) में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सामाजिक–आर्थिक इतिहास का अनुशीलन करने के लिए समकालीन हिन्दी साहित्य को एक 'वैकल्पिक अभिलेखागार' के रूप में स्थापित करता है। यह अध्ययन प्रमाणित करता है कि जहाँ औपनिवेशिक गजेटियर, जनगणना और सांख्यिकीय रिपोर्टें मानवीय त्रासदी और हाशिए के समाज के संघर्षों को दर्ज करने में विफल रहीं, वहीं स्थानीय साहित्यकारों ने इस 'ऐतिहासिक शून्यता' को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ भरा है। प्रस्तुत शोध में ब्रज और खड़ी बोली परिक्षेत्र के चार प्रतिनिधि रचनाकारों की कृतियों का तत्कालीन ऐतिहासिक व राजकीय अभिलेखों (सेंसस रिपोर्ट, सेटलमेंट रिपोर्ट और खुफिया फाइलों) के साथ तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है : नाथूराम शर्मा 'शंकर' (अलीगढ़) : इनके काव्य ('गर्भरंडा रहस्य' और 'शंकर सर्वस्व') के माध्यम से बाल–विधवाओं के संस्थागत यौन–शोषण और अकाल के दौर में कृषकों पर ब्रिटिश लगान व साहूकारी दमन को रेखांकित किया गया है। होमवती देवी (मेरठ) : इनकी कहानियों ('स्वाभिमानिनी' और 'गोटे की टोपी') के आधार पर पितृसत्तात्मक समाज में विधवाओं की असुरक्षा, मुद्रास्फीति के कारण निम्न–मध्यम वर्ग की सफेदपोश कंगाली और दहेज–अर्थव्यवस्था का विश्लेषण किया गया है। कमला चौधरी (मेरठ) : इनकी रचनाओं ('स्मृति', 'यात्रा' और 'सुरिया') में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन (विशेषकर 1930) में महिलाओं की भागीदारी तथा गन्ना–अर्थव्यवस्था में ग्रामीण ऋणग्रस्तता के साक्ष्य तलाशे गए हैं। विष्णु प्रभाकर (सहारनपुर/मुजफ्फरनगर) : इनके एकांकियों ('बीमार' और 'सड़क') के जरिए 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में राज्य–प्रायोजित पुलिसिया बर्बरता, पितृसत्तात्मक घुटन और नव–पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूरों के अमानवीय श्रम–शोषण को उद्घाटित किया गया है। यह शोध स्थापित करता है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश का हिन्दी साहित्य मात्र कोरी भावुकता नहीं, बल्कि सामंती लूट, महाजनी शोषण और औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध जनवादी यथार्थ का एक सहायक ऐतिहासिक दस्तावेज है।

बीज शब्द : पश्चिमी उत्तर प्रदेश, सामाजिक–आर्थिक इतिहास, समकालीन हिन्दी साहित्य, कृषक विपन्नता, जनवादी यथार्थ।

इतिहास केवल अतीत के राजनैतिक घटनाक्रमों और सत्ता–परिवर्तनों का अस्थिपंजर नहीं है, बल्कि वह उस कालखंड में श्वास ले रहे जनमानस की अनुभूतियों, संघर्षों और सामाजिक गति की का जीवंत दस्तावेज है। आधुनिक इतिहास–लेखन में यह स्वीकार किया जाने लगा है कि औपनिवेशिक काल के दौरान तैयार किए गए राजकीय अभिलेख जनगणना रिपोर्ट और डिस्ट्रिक्ट गजेटियर प्रायः सत्ता के दृष्टिकोण को ही प्रतिबिंबित करते हैं। इनमें सांख्यिकीय आंकड़े तो उपलब्ध हैं, किन्तु उन आंकड़ों के पीछे छिपी मानवीय पीड़ा, सामाजिक संक्रमण और हाशिए के समाज का मौन अक्सर उपेक्षित रह जाता है। इस ऐतिहासिक शून्यता को भरने के लिए 'देसी भाषा के अभिलेखागार' विशेषकर हिन्दी साहित्य का पुनरावलोकन एक अनिवार्य और अकादमिक आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध का केंद्र 'पश्चिमी उत्तर प्रदेश' है– एक ऐसा विशिष्ट भौगोलिक और सांस्कृतिक परिक्षेत्र जो उत्तर में शिवालिक की तलहटियों (सहारनपुर) से लेकर दक्षिण में ब्रज के सांस्कृतिक मंडल (आगरा–मथुरा) और पूर्व में रोहिलखंड (बरेली–मुरादाबाद) तक विस्तृत है। गंगा–यमुना के उपजाऊ दोआब में स्थित यह क्षेत्र 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में केवल कृषि उत्पादन का हृदय–स्थल नहीं था, बल्कि यह आर्य समाज के नवजागरण, कृषक आंदोलनों और औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध उभरती प्रखर राष्ट्रवादी चेतना की एक सक्रिय प्रयोगशाला भी था। वर्ष 1900 से 1950 तक का कालखंड भारतीय इतिहास का सबसे निर्णायक संक्रमण काल माना जाता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के संदर्भ में, यह वह दौर था जब समाज की सामंती संरचना और पारंपरिक संयुक्त परिवार टूट रहे थे, नई 'व्यापारिक कृषि अर्थव्यवस्था' जन्म ले रही थी, और आधुनिक शिक्षा व रेलमार्गों के विस्तार ने एक नए प्रबुद्ध मध्यम वर्ग को जन्म दिया था। इसी काल में इस क्षेत्र की महिलाएं परदा प्रथा की बेड़ियों को तोड़कर राष्ट्रीय आंदोलनों में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही थीं। इस कालखंड के सामाजिक–आर्थिक यथार्थ को समझने के लिए पश्चिमी उत्तर प्रदेश का समकालीन हिन्दी साहित्य सबसे प्रामाणिक 'प्राथमिक स्रोत' बनकर उभरता है। जहाँ एक ओर मुख्यधारा के इतिहास में क्षेत्रीय आवाजों को सीमित स्थान मिला, वहीं इस क्षेत्र के रचनाकारों– जैसे मेरठ की होमवती देवी व कमला चौधरी, अलीगढ़ के नाथूराम शर्मा 'शंकर', मुजफ्फरनगर के विष्णु प्रभाकर – ने अपनी कहानियों, नाटकों, उपन्यासों और स्थानीय पर्चों में तत्कालीन यथार्थ को पूरी नग्नता के साथ उकेरा। इस साहित्य में छुआछूत की पीड़ा, 'गर्भरंडा रहस्य' जैसी कृतियों में विधवाओं का शोषण, और आर्य समाज के अछूतोद्धार संघर्ष का जो सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है, वह सरकारी फाइलों में सर्वथा अलभ्य है। स्थानीय साहित्यकारों और किसान सभाओं द्वारा खड़ी बोली और ब्रज में लिखे गए ट्रैक्ट्स लगान की कठोरता, नहरी पानी के विवाद (आबियाना), महाजनी शोषण और 1940 के दशक के अकालों में ग्रामीण ऋणग्रस्तता का अत्यंत तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत करते हैं। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का पश्चिमी उत्तर प्रदेश एक गहरे सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रमण का गवाह बन रहा था। औपनिवेशिक काल के सरकारी दस्तावेज इस संक्रमण के सांख्यिकीय आंकड़े तो प्रस्तुत करते हैं, किन्तु उन आंकड़ों के पीछे छिपी मानवीय त्रासदी, जातीय उत्पीड़न और स्त्रियों की सामाजिक घुटन का वास्तविक स्वर समकालीन हिन्दी साहित्य

में ही मुखरित होता है। प्रस्तुत अध्याय में ब्रज और खड़ी बोली परिक्षेत्र के चार प्रतिनिधि रचनाकारों 'नाथूराम शर्मा 'शंकर', होमवती देवी, कमला चौधरी, विष्णु प्रभाकर' के साहित्यिक साक्ष्यों का तत्कालीन ऐतिहासिक अभिलेखों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

1. नाथूराम शर्मा 'शंकर' (अलीगढ़)

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ब्रज परिक्षेत्र में बाल–विवाह की कुरीति अपने चरम पर थी। अलीगढ़ के आर्यसमाजी कवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने अपने प्रबंध काव्य 'गर्भरंडा रहस्य' के माध्यम से तत्कालीन समाज में धर्म की आड़ में होने वाले यौन और आर्थिक शोषण का ऐतिहासिक पर्दाफाश किया। यह कृति उन बाल–विधवाओं की त्रासदी का प्रामाणिक दस्तावेज है, जिन्हें श्पुण्यश के नाम पर मथुरा–वृंदावन के तीर्थों में छोड़ दिया जाता था। 'शंकर' जी ने अपनी इस रचना में तत्कालीन समाज के स्वयंभू धर्म–रक्षकों और पुरुषों के पाखंड पर सीधा प्रहार किया है। वे समाज के दोहरे मापदंडों को उजागर करते हुए लिखते हैं– 'आप अनेक विवाह, बुढ़ापे तक करते हैं। धार धार सिर मौर, नई बरनी वरते हैं। पर विधवा आजन्म, दूसरा वर न वरेगी।' उनका साहित्य स्पष्ट रूप से यह दर्ज करता है कि किस प्रकार तीर्थों के आश्रमों में असहाय विधवाओं का शारीरिक शोषण होता था और समाज की नजरों से बचने के लिए भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराधों को अंजाम दिया जाता था। इस त्रासद यथार्थ को वे इस प्रकार दर्ज करते हैं– 'जारों के गर्भ धारती हैं। जनती हैं और मारती हैं।' यह काव्य एक सामाजिक सुधारवादी का आक्रोश है, जो रूढ़िवादी धार्मिक संस्थाओं को बेनकाब करते हुए कहता है– 'लूट रहे रच दम्भ, पुरोहित, पण्डित, पण्डे।' 'शंकर' जी का यह साहित्यिक विद्रोह कोई कोरी भावुकता नहीं थी। 'सेंसस ऑफ इंडिया, 1921 यूनाइटेड प्रोविंस रिपोर्ट' के आंकड़े इसकी कठोर पुष्टि करते हैं, जिसके अनुसार संयुक्त प्रांत में 15 वर्ष से कम आयु की बाल–विधवाओं की संख्या लाखों में थी। इसके अतिरिक्त, 'मथुरा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (1911)' में ब्रिटिश अधिकारियों ने स्पष्ट दर्ज किया है कि उच्च जातियों में विधवा पुनर्विवाह वर्जित था, जिसके कारण तीर्थ स्थानों पर निराश्रित महिलाओं की संख्या चिंताजनक रूप से बढ़ रही थी। 'गर्भरंडा रहस्य' इन्हीं जनसांख्यिकीय आंकड़ों का जीता–जागता मानवीय यथार्थ है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कृषक यथार्थ और आर्थिक दमन का सबसे मारक दस्तावेजीकरण अलीगढ़ के नाथूराम शर्मा 'शंकर' के काव्य में मिलता है। 20वीं सदी के आरंभिक दशकों में उन्होंने अपनी कविताओं 'शंकर सर्वस्व' के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक कठोर 'आर्थिक ऑडिट' प्रस्तुत किया। उनका साहित्य ब्रिटिश सरकार के भारी लगान और स्थानीय सूदखोरों–जमींदारों के क्रूर गठजोड़ पर सीधा प्रहार करता है। इन कविताओं में दर्ज है कि कैसे कपास उगाने वाला अन्नदाता अकाल के समय अपनी झोपड़ी, बर्तन और बैलों तक की नीलामी देखने को विवश था। इस काव्यात्मक विमर्श की ऐतिहासिक पुष्टि तत्कालीन 'अलीगढ़ डिस्ट्रिक्ट सेटलमेंट रिपोर्ट' (1900–1910) से होती है। ये औपनिवेशिक दस्तावेज प्रमाणित करते हैं कि 'नकदी फसलों' (कपास) के बाजारीकरण ने किसानों को साहूकारों के चंगुल में पूरी तरह फँसा दिया था। 1905 और 1907 के अकालों के बावजूद ब्रिटिश सरकार द्वारा लगान वसूली में कोई रियायत न देने से यह संकट अपने चरम पर पहुँच गया था। इस दोहरे शोषण का ही परिणाम था कि किसानों की पुश्तैनी जमीनें तेजी से छिनकर गैर–कृषक महाजन वर्ग के हाथों में चली गईं। 'शंकर' का साहित्य महज

समाज सुधार का काव्य नहीं, बल्कि तत्कालीन कृषि संकट की ऐतिहासिक गवाही है।

2. होमवती देवी (मेरठ)

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के नगरीय और कस्बाई समाज में स्त्री के आंतरिक यथार्थ और वैधव्य की पीड़ा का प्रामाणिक दस्तावेजीकरण मेरठ की कथाकार होमवती देवी के साहित्य में प्राप्त होता है। उनकी कहानी 'स्वाभिमानिनी' पितृसत्तात्मक समाज की उस क्रूरता का ऐतिहासिक साक्ष्य है जहाँ एक युवा और बेसहारा विधवा को पग–पग पर लांछन सहने पड़ते थे। लेखिका ने नायिका श्चपलाश के माध्यम से समाज के उस खोखलेपन को उकेरा है जहाँ बिना पुरुष के संरक्षण वाली स्त्री के लिए सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करना भी दूभर था। नायिका का यह संवाद तत्कालीन सामाजिक असुरक्षा का सीधा प्रमाण है– 'कुएँ–घाट पर मुझे जैसी–जैसी सुननी पड़ती है, बस भगवान ही जानते हैं... तेली–तम्बोली तक जो मुँह में आया कह डालते हैं।' होमवती देवी का यह साहित्यिक चित्रण तत्कालीन जनसांख्यिकीय सच्चाई का सीधा अक्स है। 'सेंसस ऑफ इंडिया, 1921 और 1931 (यूनाइटेड प्रोविंस रिपोर्ट)' के आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि 1918 की इन्फ्लूएंजा महामारी और प्लेग के कारण पश्चिमी उत्तर प्रदेश में युवा विधवाओं की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई थी (कहानी में भी नायिका का पति 'मोहन' प्लेग में ही मारा जाता है)। इसके साथ ही 'मेरठ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर' में यह स्पष्ट दर्ज है कि उच्च जातियों में विधवा पुनर्विवाह वर्जित था, जिसके कारण समाज में निराश्रित महिलाओं की एक बड़ी आबादी संघर्ष कर रही थी, जिन्हें समाज संरक्षण देने के बजाय उन पर कठोर नैतिक पहरेदारी करता था। 1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी और 1940 के दशक की युद्धकालीन महंगाई ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कस्बों और शहरों में रहने वाले वेतनभोगी वर्ग को अंदर से खोखला कर दिया था। होमवती देवी का साहित्य इसी सफेदपोश कंगाली का विशुद्ध आर्थिक प्रलेख है। उनकी कहानी 'गोटे की टोपी' एक निम्न–मध्यमवर्गीय परिवार की उस आर्थिक घुटन को चित्रित करती है, जहाँ एक साधारण सी मांग भी पूरे घर के बजट को ढहा देती है। यह एक कम उम्र की विधवा (नायिका 'मंजरी') के दर्द, संघर्ष और उसके बच्चे (प्रवाल) की इच्छाओं पर आधारित कहानी है निश्चित आय वाले इस वर्ग की क्रय–शक्ति पूरी तरह ध्वस्त हो चुकी थी। होमवती देवी का साहित्य यह भी स्पष्ट करता है कि अर्थव्यवस्था का असर सीधे विवाह संस्था पर पड़ा। नव–पूंजीवादी व्यवस्था में 'दहेज' एक आर्थिक सौदा बन गया था, जिसने मध्यम वर्ग को आजीवन कर्जदार बना दिया। उनका साहित्य साबित करता है कि अर्थव्यवस्था केवल बाजार तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह घरों की चारदीवारी के भीतर स्त्रियों और परिवारों का शोषण कर रही थी।

3. कमला चौधरी (मेरठ)

कमला चौधरी स्वयं स्वाधीनता आन्दोलन की एक सक्रिय कार्यकत्री थीं। इसलिए उनके साहित्य में 1930–40 के दशक के राजनीतिक आन्दोलनों, जेल–यात्राओं और गाँधीवादी विचारधारा का आँखों–देखा इतिहास मिलता है। 'यात्रा' संग्रह की कहानी 'स्मृति' में राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान घर–घर में जो राजनीतिक बंदी बनाए जा रहे थे, उसका अत्यंत मार्मिक और राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत चित्र इस प्रकार है : 'आज विजयादशमी है और इसी पक्षी की तरह भैया जेल में बन्दी है..! एक वही नहीं, कितनी ही बहनों के भाई, कितनी

ही माताओं के लाल और उन सभी के हृदय में कैद है ऐसी वेदना का संघर्षण!' इसके अतिरिक्त, 'यात्रा' कहानी अपने आप में महात्मा गाँधी के नेतृत्व और 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का एक प्रतीकात्मक इतिहास है। देश की जनता (यात्री) जब अंग्रेजी दमन (समुद्री तूफान) से घबरा जाती है, तो गाँधी रूपी 'वृद्ध नाविक' का यह संवाद तत्कालीन भारतीय जनमानस में भरे गए राजनैतिक आत्मविश्वास का ऐतिहासिक प्रमाण है : 'पथ अज्ञात नहीं है। हाँ अकूत समुद्र पार करना है मुझे फिर आलोक का दिग्दर्शन हो रहा है।' कमला चौधरी का यह साहित्य ऐतिहासिक रूप से अत्यंत प्रामाणिक है। 1930 के 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' की ब्रिटिश पुलिस रिपोर्टों और तत्कालीन कांग्रेस कमेटी के दस्तावेजों में यह साफ तौर पर दर्ज है कि मेरठ और हापुड़ क्षेत्र में विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना करने वाली महिलाओं की संख्या अप्रत्याशित रूप से अधिक थी। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि था, किन्तु ब्रिटिश लगान नीतियों और स्थानीय सूदखोरों ने इस व्यवस्था को पूरी तरह से शोषक बना दिया था। मेरठ की रचनाकार कमला चौधरी का साहित्य इसी जमीनी आर्थिक लूट का दस्तावेज है। उनकी कहानी 'सुरिया' में किसानों के घर की भुखमरी, दो वक्त की रोटी का संघर्ष और कर्ज के दुष्चक्र का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण मिलता है। यह साहित्य प्रमाणित करता है कि गन्ने और खांड की अर्थव्यवस्था ने किस प्रकार मिल–मालिकों और महाजनों को समृद्ध किया, जबकि खेतों में काम करने वाला वास्तविक उत्पादक कर्ज में डूबकर अपनी जमीनें नीलाम करवाने पर मजबूर था। कमला चौधरी की कहानियों में वर्णित यह आर्थिक विपन्नता उन औपनिवेशिक रिकॉर्ड्स की पुष्टि करती है, जिनमें दर्ज है कि मुकदमों और भारी ब्याज दरों के कारण किसानों की संपत्तियां तेजी से महाजनों के हाथों में जा रही थीं।

4. विष्णु प्रभाकर (सहारनपुर/मुजफ्फरनगर)

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सहारनपुर मण्डल से संबंध रखने वाले विष्णु प्रभाकर का आरंभिक एकांकी–साहित्य केवल समाज–सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि यह औपनिवेशिक सत्ता के मनोवैज्ञानिक अंर्तद्वंद्व और पितृसत्तात्मक ढांचे की क्रूरता का विशुद्ध प्रलेख है। उनके द्वारा संपादित 'एकाङ्की–विहार' में संकलित 'बीमार' एकांकी 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान पुलिस तंत्र के अपराध–बोध का सहायक ऐतिहासिक साक्ष्य है। तत्कालीन ब्रिटिश वफादार पुलिस अधिकारी की मानसिकता को वे इन शब्दों में दर्ज करते हैं– 'देश के शासक जब अपने अस्तित्व को लेकर युद्ध में फंसे हुए थे तो ये विद्रोही उसकी पीठ में छुरा भोंकने को आतुर हो उठे। उन्होंने एक स्थान पर नहीं, समूचे देश में एक साथ सिर उठाया...'। इसी संग्रह का उनका दूसरा एकांकी 'सड़क' 20वीं सदी के मध्य में स्त्री की मनोवैज्ञानिक घुटन और उस पर थोपे गए 'कर्तव्य' की बेड़ियों का अत्यंत तीखा समाजशास्त्रीय विश्लेषण है। पितृसत्तात्मक समाज द्वारा पारंपरिक चौपाइयों के माध्यम से स्त्री के दमन को वे इस प्रकार रेखांकित करते हैं– 'सड़क गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी। स्त्री की तरह सड़क भी पीटने पर ही ठीक रहती है।' यह संवाद तत्कालीन समाज में स्त्री की इच्छाओं की निर्मम हत्या का अकाट्य प्रमाण है जहाँ– 'उसी तरह औरत के सीने में अनगिनत तमन्नाओं और हसरतों की ख्वाबगाह है। उस पर समाजी डर और बन्धन के दुर्मुंट चोट करते हैं और फिर कर्तव्य का स्टीम–रोलर सबको पीसकर समतल कर देता है।' ऐतिहासिक स्रोतों से तुलना विष्णु प्रभाकर के ये साहित्यिक साक्ष्य तत्कालीन 'सीआईडी

खुफिया रिपोर्टों' की पुष्टि करते हैं, जिनमें मुजफ्फरनगर और सहारनपुर में 1942 के अगस्त आंदोलन के दौरान पुलिस फायरिंग और निहत्थे प्रदर्शनकारियों की शहादत का जिक्र है ('बीमार' में थानेदार रामरतन द्वारा भीड़ पर अंधाधुंध गोलियां चलाने का प्रसंग इसी यथार्थ का बिंब है)। दूसरी ओर, 'सड़क' का स्त्री–विमर्श उस दौर की 'ऑल इंडिया विमेंस कांफ्रेंस' की उन रिपोर्टों का समर्थन करता है, जो स्पष्ट करती हैं कि मध्यवर्गीय समाज में 'पारिवारिक कर्तव्य' के नाम पर स्त्रियों का निरंतर मानसिक और भावनात्मक शोषण किया जा रहा था। अतः विष्णु प्रभाकर का साहित्य तत्कालीन पश्चिमी उत्तर प्रदेश के राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ का एक सहायक ऐतिहासिक स्रोत है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के शहरीकरण ने एक नए सर्वहारा मजदूर वर्ग को जन्म दिया था, जिसका अमानवीय शोषण इस नई पूंजीवादी व्यवस्था का आधार था। मुजफ्फरनगर/सहारनपुर के रचनाकार विष्णु प्रभाकर के एकांकी इस श्रम–शोषण और उसे संरक्षण देने वाली राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर सीधा प्रहार करते हैं। उनके एकांकी 'सड़क' में एक रिक्शा खींचने वाले मजदूर का बिंब है : 'अपने फेफड़ों पर अपनी जिन्दगी के साथ सवारियों का बोझा डाले कैसे सिर झुकाये, नंगे पैर दौड़ा चला जा रहा है।' यह नंगे पैर दौड़ता मजदूर उस पूरी व्यवस्था का प्रतीक है जहाँ पूंजी के आगे श्रम की कोई कीमत नहीं थी। जब इस आर्थिक दमन के विरुद्ध शोषित वर्ग ने राजनीतिक आजादी की मांग की, तो ब्रिटिश राज्य ने अपनी अर्थव्यवस्था बचाने के लिए हिंसा का सहारा लिया। उनके एकांकी 'बीमार' में पूर्व थानेदार रामरतन का यह संवाद– 'मैंने उन विद्रोहियों को मारा था... बागियों को सदा गोली मारी जाती है। इस बात का ऐतिहासिक साक्ष्य है कि औपनिवेशिक लगान और व्यापार तंत्र को बनाए रखने के लिए पुलिसिया बर्बरता को एक टूल की तरह इस्तेमाल किया जा रहा था।

संदर्भ सूची :

1. चौधरी, कमला. यात्रा (कहानी संग्रह – 'स्मृति' एवं 'यात्रा' कहानी सहित)। दिल्ली/मेरठ, 1947।
2. चौधरी, कमला. सुरिया (कहानी)। 1930–40 के दशक की पत्रिकाओं में प्रकाशित।
3. देवी, होमवती. धरोहर (कथा संग्रह)। मेरठ, 1946।
4. देवी, होमवती. स्वप्न भंग (कथा संग्रह – 'गोटे की टोपी', 'स्वाभिमानिनी' एवं 'अपना घर' कहानी सहित)। मेरठ, 1948।
5. प्रभाकर, विष्णु. एकाङ्की–विहार (विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित/संपादित एकांकी संग्रह, 'बीमार' और 'सड़क' एकांकी सहित)। दिल्ली/सहारनपुर, 1940–50 के दशक के मध्य।
6. शर्मा 'शंकर', नाथूराम. गर्भरंडा रहस्य (प्रबंध काव्य)। कानपुर/अलीगढ़, 1928।
7. शर्मा 'शंकर', नाथूराम. शंकर सर्वस्व (काव्य संग्रह)। लखनऊ, 1951।
8. नेविल, एच. आर. सहारनपुर : ए गजेटियर. वॉल्यूम II, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ द यूनाइटेड प्रोविंस ऑफ आगरा एंड अवध, गवर्नमेंट प्रेस, 1909.
9. ब्रॉकमेन, डी. एल. मथुरा : ए गजेटियर. वॉल्यूम VIII, गवर्नमेंट प्रेस, 1911.
10. सेंसस कमिश्नर, भारत सरकार. सेंसस ऑफ इंडिया : यूनाइटेड प्रोविंस रिपोर्ट. 1921 एवं 1931.

11. राजस्व विभाग, संयुक्त प्रांत. अलीगढ़ डिस्ट्रिक्ट सेटलमेंट रिपोर्ट. 1900–1910.
12. गृह एवं राजनीतिक विभाग. सी.आई.डी. खुफिया रिपोर्ट और पुलिस अभिलेख (1930 का सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन संबंधी रिपोर्टें).
13. नागरिक आपूर्ति विभाग. युद्धकालीन राशनिंग और मूल्य वृद्धि रिपोर्ट (1940–1945). मेरठ म्यूनिसिपल बोर्ड रिकॉर्ड्स।
14. नेविल, एच. आर. मेरठ : ए गजेटियर (वॉल्यूम IV, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ द यूनाइटेड प्रोविंस ऑफ आगरा एंड अवध)। इलाहाबाद : गवर्नमेंट प्रेस, 1904।
15. नेविल, एच. आर. मुजफ्फरनगर : ए गजेटियर (वॉल्यूम III, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ द यूनाइटेड प्रोविंस ऑफ आगरा एंड अवध)। इलाहाबाद : गवर्नमेंट प्रेस, 1903।
16. यादव, के. सी., और के. एस. आर्य. आर्य समाज एंड द फ्रीडम मूवमेंट : वॉल्यूम 1, 1875–1918. मनोहर पब्लिशर्स, 1988.
17. अमीन, शाहिद. शुगरकेन एंड शुगर इन गोरखपुर। नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984।
18. व्हिटकोम्ब, एलिजाबेथ. अग्रेरियन कंडीशंस इन नॉर्दर्न इंडिया। नई दिल्ली : थॉमसन प्रेस, 1971।
19. रॉय, तीर्थंकर. द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया 1857–1947। नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000।

ईमेल : vasumayank77@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 176-182

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A Study of Locus of Control Among Degree College Students in Haryana

Dr. Rajendra Jakhar

Asstt. Professor in Education,

J.K.Memorial College of Education, Birhi Kalan, Ch. Dadri (Haryana)

ABSTRACT :

As the Environment around the people changes, people can either attribute success and failure to two things: People have control over, or focus outside peoples influence. Which orientation people have a bearing on their long-term Success. Locus of control describes the degree to which individuals perceive that outcome results from their own behaviour, Or from forces that are external to themselves. This produces a continuum with external control at one end and internal control at the other end.

This concept was developed by Julian Rotter in the 1960s. He originally named this concept Locus of Control of Reinforcement. Rotter actually bridged the gap between behavioural and cognitive psychology. He believed that behaviour was greatly guided by the use of reinforcements. These rewards in turn shaped the way people interpreted the result of their own actions.

Studies related to the locus of control are the following:

Patak C.C 1974, Lingdoh K.H.1976, Mishra Singh 1983, Christian U. 1985, Saradha Rani 1986, Khama R.K.1986, Sema R.K.1987, Deena Eligibeth 1996, Chistian J.A 1997, Singh Aulak SP 1997, Asha Joshi, B.Raja kumari 2004, 2005, James Neel, 2005, Conducted studies on locus control on Indian student. This is the field in psychology where much research is going on. But it is yet to attract the attention of investigators in J.K.Area.

Keywords : Locus of Control, Degree Students, Powerful Others, Chance Control, Individual Control.

INTRODUCTION :

Locus of control refers to an individual's perception of main cause of events in life. More simply, do you believe that your destiny is controlled by yourself or by external forces such as fate or other people?

NEED, NATURE AND SCOPE OF THE STUDY :

Students are influenced not only by their intelligence and knowledge but also by their attitudes and social perspectives. Their success doesn't depend entirely on there own capacities but also depend on how well they perceive the situation. Interactions and their attitudes are influenced by the peer group and friends mostly also by the teachers and relatives.

Locus of control is learned and acquired. The most important factor that has been known to be associated is material socialization. At this point one may naturally raise the question as to whether any particular type of Locus of control is good and more contributory to adaptive behaviour.

LOCUS OF CONTROLAND SOCIAL BEHAVIOUR :

Hence we must be in a position to appreciate the mediating role if Locus of control on an individual's behaviour, including social perception and behaviour. As already explained Locus of control definitely influences one's reaction to success, it depends on the sources to which success or failure is attributed. An example probably will make this clear. Suppose one has passed his examination securing the first rank it should be one of the following.

- His success is the result of the work he has put in internal Locus of Control.
- The credit goes to his teachers for having done their job very well and to source his parents, who were a source of constant help and encouragement.This indicates external Locus of control/ (powerful other).
- It is due to God's grace, his favourable star position etc/ external unknown others.

Krishna (1985) used for data collection the rating scale. In the self disclosure questionnaire Sharada Rani (1986) used TAT and the Mandler Surason Test anxiety questionnaire. Sangwam (1987) used the Cattle Motivation analysis test and the Bhargava Achievement motive test, Lyngdoh, K.H. (1976) used the mahtas TAT pictures for measuring Ach, the Binary's TATA pictures for measurement for fear of failure.

NEED :

Degree Students many a time are in dilemma whether to go by one's own wish or by the suggestion of others or relating everything to the time. Students often feel that they have little control over their lives and what happens to them is destined. They believe that luck or chance plays an important role in the happenings in their lives. Few students think that whatever happens in their life is of their own doing. The investigator intends to study whether their circle of influence/locus of control is in themselves or in others or the unknown.

STATEMENT OF THE PROBLEM :

Locus of control of Degree college students in Haryana.

OBJECTIVES OF THE STUDY :

- To find out the locus of control of degree students and classify them.
- To find out the influence of following variables on locus of control of degree students Gender, Residence, Medium of instruction, Type of college, Economic Status and Religion.

SELECTION OF VARIABLES :

The following variables are selected for the present study. They are Gender, Residence and Medium of instruction, Type of College, Economic Status and Religion.

METHOD OF STUDY :

Normative survey method is applied.

SAMPLE AND SAMPLING PROCEDURE :

The sample of the present study consisted of 200 degree students belonging to Bhiwani District. The sample included boys and girls of Government and Private Colleges.

TOOLS USED IN THE STUDY :

The researcher used the standardized tool of three dimensional Locus of control. Prepared by Sanjay Vohra.

The questionnaire has 24 items covering three sub areas. They are :

- Individual control
- Powerful others
- Chance control

RELIABILITY OF THE QUESTIONNAIRE :

- According to the mannua, the reliability has been calculated by split - half method. Here the scale was divided into two parts containing 4 statements each for P- Powerful others; C- Chance Control; and I- Individual Control. The split - half reliability of the scale with $N = 380$, was found to be 0.72 for P, 0.79 for C and 0.65 for I, using Spearman - Brown. Further split off even method, reliability co-efficient was found to be 0.69 for P, 0.72 for C and 0.66 for I.

VALIDITY :

Apart from the high reliability and predictive validity, the present scale was also validated against the Rotter's Locus of control scale i.e., the concurrent validity was also established. A tests concurrent validity indicates the extent of its agreement with other present criteria measuring similar or psychological operations or traits. The present scale was validates by correlating it with Rotter's the Scale one after another with very little time interval in between scores of both the scales were than correlated with each other and the correlation co-efficient was found to be 0.54.

LIMITATIONS OF THE STUDY :

The study investigates the Locus of Control of Students in Government and Private colleges in Bhiwani district,Haryana. It does not measure the levels of Locus of Control of students of Residential and Non Residential Colleges.

DATA FINDINGS :

Table 1: Locus Control Scores of Range $N=200$

	Low	**Moderate**	**High**
F	38	116	46
%f	19	58	23
Fe	16	68	16

- **Hypothesis :** Normal Distribution hypothesis. Expected values at 0.010 level is 9.210: Values at 0.01 level degree of freedom $= 2$ is 10.18
- **Findings :** Hypothesis rejected.

Table 1 shows the classifications of the sample according to low, moderate and high scores irrespective of the type of locus control. As locus control is psychological term. The data distribution was compared with normal distribution. It was assumed that the locus control scores will be distributed normally. Chi-square test was applied. The data shows that this Hypothesis of normal distribution was rejected as obtained chi-square value is significant at 0.01 Level. Hence, it is concluded that a significantly high percentage of the sample is showing high locus control scores.

Table 2 : Locus of Control of Degree College Students Discrimination with the Classification of Sample

	Powerful others	**Chance control**	**Individual control**
FO	94	80	26
%f0	47	40	13
Fe	33.3	33.4	33.3

- **Hypothesis:** Equal Probability hypothesis. Values at 0.01 level is 9.21, Chi square values al 0.01 level is 36.02.
- **Findings:** Hypothesis rejected.

Table 2 shows classification of locus control scores. As a type of control is expected to be equally distributed the equal probability. Hypothesis was chosen for analyzing the data.

The finding is the hypothesis is rejected and the distribution of the sample according to the three categories is not equal. Hence, the equal probability hypothesis is rejected, it can be seen that the two types of locus control, namely the powerful others and control are higher than the expected values. In fact nearly 50% of the sample has chosen powerful others as a locus control only. 13% of the sample chose individual control as locus guiding their predicated behaviour.

Table 3 : Locus of Control of Degree College Students

Variables	Category	N	Mean	S-D	S Ed	M.d	t.Value
1. Sex	Male	118	78.4	8.8	1.26	1.5	1.2
	Female	82	79.9	8.8			
2. Residence	Urban	107	84.4	11.7	1.61	0.6	0.37
	Rural	93	83.8	11.1			
3. Medium	Hindi	98	79.8	7.8	0.8	0	0
	English	102	79.8	9.1			
4. Economic Status	Poor	92	79.6	8.5	1.19	0.3	2.52
	Middle	108	79.9	8.4			
5. Type of College	Govt.	98	80.7	7.5	1.18	2.1	1.8
	Pvt.	102	78.6	9.2			

6. Religion	Non-Hindu	168	80.3	8.4	1.54	4.4	2.86
	Hindu	32	75.9	7.9			

The table shows the analysis of variables chosen for this study.

The finding is that the variables sex, residence, medium of learning, economic status and type of college do not seem to be associated with a locus control. The variables religion appears to be influencing the locus control. It is surprising that Non-Hindus appear to be having higher average on locus control than Hindus.

DISCUSSION :

Locus of control is a recent entry into the research work of educational institutions in A.P. locus control is tending towards higher range among Degree College students. Surprisingly, the belief in powerful others and chance control appears to be dominating the individual control locus. It is interesting that only religion is a variable associated.

The investigator is of the opinion that, this is a fertile area for further research. There is a need to study the locus control among X class students and studying their vertical growth is necessary. Comparison of the locus control of students of professional colleges (medical, engineering etc) with degree students will be useful. The investigator feels that studies on locus control among student community will yield useful information.

CONCLUSION :

Success is not determined by a single factor. It is influenced by a cluster of factors like the potential of the student, attitude, opportunities motivation, aspiration, exposure, teacher, destiny, etc. The students should be made aware of science and technology in the fast changing and growing world of competitions. They should shun this attitude whatever comes in their way is a matter of luck chance. First of all students should be helped to boost up their self-esteem and belief on their capabilities. The students should develop skills and knowledge of the self-care and social interactions. Education should help them in reflective and critical thinking. They should be in a position to establish cause and effect relationship. Especially the teaching community should sensitize the students about critical thinking, problem solving, decision-making, self-dependency, open mindedness and scientific thinking.

REFERENCES

- Anderson, C. A., Jennings, D.L., Arnoult, L.H. (1988). "Validity and utility of the attributional style construct at a moderate level of specificity". *Journal of Personality and Social Psychology* 55: 979-90. doi:10.1037/0022-3514.55.6.979.
- Duttweiler, P.C. (1984). "The Internal Control Index: A Newly Developed Measure of Locus of Control". *Educational and Psychological Measurement* 44: 209-21. doi:10.1177/0013164484442004.
- Furnham, A., Steele, H. (1993). "Measures of Locus of Control: A critique of children's, health and work-related locus of control questionnaires". *British Journal of Psychology* 84: 443-79. PMID 8298858.
- Lefcourt, H.M. (1976). *Locus of Control: Current Trends in Theory and Research*. NJ: Lawrence Erlbaum Associates. ISBN 0-470-154044-0.
- Norman, P., Bennett, P. (1995). "3. Health Locus of Control". In Conner, M., Norman, P.. *Predicting Health Behaviour*. Buckingham: Open University Press. pp. 62-94.
- Nowicki, S., Strickland, B. (1973). "A locus of control scale for children". *Journal of Consulting and Clinical Psychology* 42: 148-55. doi:10.1037/h0033978.
- Rotter, J.B. (1990). "Internal versus external control of reinforcement: A case history of a variable". *American Psychologist* 45: 489-93. doi: 10.1037/0003-066X.45.4.489. Retrieved 10 December.

Mobile No. 7375915563,

Email: drrajendrajakhar007@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 183-189

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Spiritual Quest and Self-Realisation in Raja Rao and Hermann Hesse : A Comparative Study

Dr. Rekha Rani

Assistant Professor, English, SBS College of Law, Rohtak (Haryana)

Abstract :

This paper examines how the search for spiritual meaning and the arrival at self-knowledge take shape across the fiction of Raja Rao and Hermann Hesse, two novelists writing from opposite ends of the same East-West conversation. Rao, an Indian writer working within the Advaita Vedanta tradition, and Hesse, a German novelist drawn toward Eastern thought from the outside, both build their major protagonists around an inward journey that begins in restlessness and ends in a quiet dissolving of the ego. Ramaswamy in The Serpent and the Rope and Moorthy in Kanthapura carry Rao's own philosophical commitments; Siddhartha and Harry Haller carry Hesse's long fascination with Buddhist and Hindu ideas filtered through a European sensibility. Reading these writers together shows that the vocabulary of the quest differs (maya and moksha on one side, individuation and the path within on the other) but the underlying shape of the search does not. Both novelists treat awakening as something lived through experience rather than handed down as doctrine, and both use marriage, exile, and failure as the pressure that eventually cracks open the self. The paper looks in turn at the guru figure who refuses to simply hand over the answer, at marriage and desire as the testing ground for the self, and at how each writer's native language shapes what can be said about an experience both insist lies beyond words. It argues that this shared architecture, arrived at from two unrelated traditions, says something about why spiritual fiction travels so easily between cultures: the destination looks different depending on where a reader starts, but the road itself is oddly familiar.

Keywords

Spiritual quest, self-realisation, Advaita Vedanta, East-West literature, comparative study, Raja Rao, Hermann Hesse, identity, mysticism, existential fiction

Introduction :

Literature has long served as one of the few spaces where a writer can put the private, often

unspeakable business of spiritual searching into a shape that a stranger can follow. Novels about faith or doubt tend to date badly, but novels about the search for a self, one that grows uneasy, breaks, and reassembles into something quieter, keep finding new readers regardless of the religious language they are dressed in. Raja Rao and Hermann Hesse belong to this smaller company of writers. Neither was interested in religion as an institution. Both were interested in what happens to a person who takes the question of who am I seriously enough to let it dismantle a marriage, a career, or a settled idea of home.

Raja Rao (1908-2006) is usually placed alongside Mulk Raj Anand and R. K. Narayan as one of the founding figures of Indian writing in English, though his temperament set him apart from both. Where Narayan wrote gentle social comedy and Anand wrote of caste and labour, Rao wrote philosophy disguised as narrative. His first novel, Kanthapura (Rao, 1938), folded the Gandhian independence movement into the rhythm of a South Indian village tale, told in a voice borrowed from oral Puranic storytelling. Its heroine and its village both move through the same arc: a settled world is disturbed by Gandhi's call to satyagraha, suffering follows, and out of that suffering comes a form of collective awakening that Rao frames as much in spiritual as in political terms. Rao's second and most demanding novel, The Serpent and the Rope (Rao, 1960), turns the same concern inward. Its narrator, Ramaswamy, a Brahmin scholar married to a Frenchwoman named Madeleine, spends the book unable to settle into either his European academic life or his inherited Vedantic one, until the collapse of his marriage forces him toward the guru he had been circling all along. The title itself comes from a classical Advaita image: a coiled rope glimpsed in dim light is mistaken for a snake, and the fear it produces disappears the instant a lamp reveals the truth. Rao uses that image as the spine of the whole novel, since Ramaswamy's entire crisis is a matter of mistaking appearance for reality until something in him is finally lit up.

Hermann Hesse (1877-1962) arrived at similar material by a very different road. Raised in a German pietist household and later drawn to Jungian psychoanalysis, Hesse discovered Indian and Chinese thought largely through translation and through a visit to Ceylon and Indonesia in 1911, a trip that left him disappointed with the surface of the East but permanently curious about its philosophy. Siddhartha (Hesse, 1951) follows a young Brahmin who leaves his father's house to join wandering ascetics, then abandons asceticism for a life of trade and pleasure with the courtesan Kamala, and finally gives all of it up to sit by a river and listen. Steppenwolf (Hesse, 1929), written five years later out of Hesse's own depression and marital breakdown, tells a harder and more fractured version of the same story: Harry Haller, a middle-aged intellectual convinced he is half man and half wolf, is led through a series of increasingly strange encounters until he learns, painfully, that the self is not two

things or even ten things but a crowd of possibilities he has refused to let live. Neither book resolves cleanly. Siddhartha ends on the riverbank in a kind of wordless acceptance; Steppenwolf ends with Harry laughing at his own seriousness, still unfinished, still on the way.

Placing Rao and Hesse side by side is not a matter of proving influence, since there is little evidence either read the other closely. It is a matter of noticing how similarly shaped their questions turn out to be, despite starting from unrelated traditions. Both novelists build their central figures as stand-ins for their own biography. Rao's own guru, Sri Atmananda of Trivandrum, whom he met in 1943, sits behind Ramaswamy's long, unfinished search for a teacher the way Hesse's years of Jungian analysis sit behind Harry Haller's visits to the strange Magic Theatre.

Kanthapura deserves a word on its own before the discussion moves to the two novels that carry most of this paper's weight. Rao's debut is often read purely as a political novel, an account of how Gandhian non-violence reached a single South Indian village, but its narrator, an old village woman named Achakka, tells the story in the register of a Puranic legend rather than of a historical chronicle, and its central figure, the young reformer Moorthy, is shaped by Rao as much as a seeker as a political organiser. Moorthy's turn toward satyagraha is presented less as an ideological conversion than as a personal awakening that happens to take a political shape, and the suffering the village endures under colonial reprisal is framed, again and again, as a purification the community passes through rather than a simple cost of resistance. Read this way, Kanthapura is already doing in miniature what The Serpent and the Rope does at greater length: using an outward struggle to stage an inward one, and treating collective upheaval as inseparable from the private business of self-realisation.

Scholarship on Hesse's Siddhartha is large and mostly agrees on its central claim, though not always on how to name it. Several readers place the novel's turning point with Vasudeva, the ferryman who takes Siddhartha in after his failed life as a merchant. As one recent commentary puts it, Vasudeva offers no doctrine, only the discipline of listening, and teaches Siddhartha to hear the river as a single voice in which joy and grief run together (Book-Loom, 2026). A study guide from Penguin Random House makes a related point about structure: Siddhartha rejects, in turn, Brahminical scholarship, ascetic self-denial, romantic love, and mercantile success, arriving at Vasudeva only after every other teacher has been tried and found wanting (Penguin Random House, n.d.). Scholars writing on the novel's psychological dimension have also drawn on Jungian and Dabrowskian frameworks to argue that Siddhartha's mystical experiences represent successful personality integration rather than the disintegration that a purely clinical reading might suggest.

Scholarship on The Serpent and the Rope is smaller in volume but similarly consistent in its emphasis on non-duality. Garg (2023) reads the novel's recurring wave-and-sea image, drawn from

Rao's own guru, as a compact statement of Advaita metaphysics: the individual self and the larger consciousness it seems to be separate from are, at bottom, the same substance wearing two different appearances. Haney (n.d.) situates the novel within Rao's larger body of work, arguing that each of Rao's three major novels maps onto a different traditional path to realisation, Kanthapura onto the path of action, The Serpent and the Rope onto the path of knowledge, and The Cat and Shakespeare onto the path of devotion. What is largely missing from the existing literature, on either side, is a sustained comparison between the two writers. Hesse is typically read inside a German or a Buddhist studies frame; Rao is typically read inside an Indian English or Vedantic frame. This paper tries to bring the two frames into the same room, working from close reading of the primary texts, Rao's Kanthapura (1938) and The Serpent and the Rope (1960), and Hesse's Siddhartha (1922) and Steppenwolf (1927), rather than from any claim of direct influence between the two writers. Secondary scholarship on each writer is used throughout to check these observations against existing critical consensus. Rao's The Cat and Shakespeare and Hesse's Demian and The Glass Bead Game fall outside this paper's scope, though they would reward the same kind of comparison in future work.

Both writers give their protagonists a teacher who cannot, or will not, simply hand over the answer, and in both cases this refusal turns out to be the actual lesson. Vasudeva's whole method with Siddhartha is negative: he does not lecture, correct, or even offer much conversation. His single stated skill is listening, learned from decades beside the river, and when Siddhartha asks to be taught that same skill, Vasudeva tells him plainly that it cannot be taught by a person, only by the river itself (Hesse, 1951). The furthest Vasudeva goes toward doctrine is to describe listening with a still heart and without judgment, and even this is offered as something Siddhartha has already begun to learn on his own rather than as new information (LitCharts, 2024). The lesson, in other words, is that there is no lesson to transmit, only attention to be practised.

Rao gives Ramaswamy a structurally similar absence. Ramaswamy spends nearly the whole of The Serpent and the Rope circling the idea of a guru without ever quite reaching one, and the novel's real philosophical work happens in that circling rather than in any final scene of instruction. Rao's own biography sits directly behind this pattern: he met his guru, Sri Atmananda of Trivandrum, only in 1943, after years of exactly the kind of restless searching he gives Ramaswamy (EBSCO, n.d.). In both novels, then, the teacher's function is not to supply a doctrine but to model a way of attending to experience that the student has to learn by living rather than by being told. Kamaswami, the merchant who instructs Siddhartha in business, and the various Brahmin scholars Ramaswamy studies under in his early life serve as useful negative cases: both are teachers who do have something explicit to transmit, and both leave their students further from rather than closer to self-knowledge. The

comparison suggests that both writers regarded verbal instruction, as such, with a kind of suspicion, treating it as one of the last obstacles a seeker has to set aside rather than a vehicle that could carry someone across.

Both writers also use a failing romantic bond as the mechanism that forces the protagonist's hand, rather than treating marriage or desire as incidental subject matter. Ramaswamy's marriage to Madeleine dissolves as she retreats into an ascetic Catholicism of her own, leaving him with no one left to perform his old life for and no excuse left to avoid the guru he has been circling. Siddhartha's years with the courtesan Kamala end when she dies of a snakebite while travelling to see the Buddha, leaving Siddhartha to raise their shared son alone, an experience that teaches him more about attachment and helplessness than any of his earlier asceticism managed to (SparkNotes, n.d.). In both cases the marriage or the romantic bond is not a subplot running alongside the spiritual one; it is the actual furnace the self-realisation is forged in.

The two novels also treat desire itself with a similar two-step structure: indulgence first, then disillusion, then a third stage that is neither indulgence nor renunciation but something calmer than both. Siddhartha does not defeat desire by refusing it, as the samanas had taught him to; he defeats it by living through wealth, gambling, and sensual pleasure until the emptiness of that life becomes plain to him from the inside. Sharma and Aggarwal (2025) make a related point in their reading of the novel's relevance to contemporary professional life, noting that Siddhartha's disillusionment exposes the futility of material comfort in producing lasting inner peace, a description that applies just as well to Ramaswamy's restlessness inside his comfortable European academic career. Rao's protagonist never indulges quite as dramatically as Hesse's, but the underlying pattern, worldly success experienced fully enough to be seen through rather than simply rejected on principle, is the same in both books.

The two traditions give the quest different vocabulary, and that difference is worth pausing on rather than smoothing over. Rao writes within Advaita Vedanta, so his terms are maya, illusion, moksha, liberation, and jnana yoga, the path of knowledge; his prose, especially in The Serpent and the Rope, borrows Sanskrit cadences and philosophical argument directly, at times reading closer to a treatise than to a conventional novel. Hesse, writing for a German audience with no lived experience of these ideas, has to translate them into something closer to parable. Siddhartha's river, which speaks in a thousand voices at once and eventually says only Om, does the same philosophical work as Rao's rope and serpent, but it arrives at that meaning through folk-tale simplicity rather than through direct citation of Vedantic or Buddhist texts (American Literature, n.d.).

Both writers, despite this difference in register, arrive at the same paradox: the experience each protagonist is moving toward is repeatedly described as something language cannot actually

hold. Vasudeva is explicitly called no friend of words, and his most important teaching to Siddhartha, that all ten thousand voices of the river resolve into a single sacred syllable, is a sound rather than a sentence (American Literature, n.d.). Rao's Ramaswamy, for his part, keeps returning to the rope-and-serpent image precisely because it is a picture rather than an argument, something seen all at once rather than reasoned toward step by step. The comparison suggests that both writers understood the limitation of the novel form itself as they were pushing against it: fiction can only gesture at an experience its own protagonists insist is beyond articulation, and both Rao and Hesse seem to have accepted this limit rather than fought it, choosing image and parable over direct philosophical statement wherever the two options came into conflict.

Steppenwolf complicates this picture in a useful way, since it gives Hesse's version of the guru figure a much stranger form than Vasudeva does. Harry Haller is not led toward self-knowledge by a patient teacher beside a river but by Hermine, a young woman he meets in a dance hall, and eventually by the hallucinatory Magic Theatre, a space that presents itself less as a place of instruction than as a hall of mirrors in which Harry is forced to watch his own possible selves acted out. The theatre's rule, painted over its door, that entry is not for everybody, marks it as a threshold rather than a classroom, and what Harry receives inside is not doctrine but a series of forced confrontations with parts of himself he has spent the whole novel denying, his capacity for cruelty, his hunger for pleasure, his fear of ordinary happiness. Where Vasudeva teaches through stillness, Hermine and the Magic Theatre teach through disorientation, but the underlying claim is the same: nobody can simply tell Harry who he is, he has to be walked, half against his will, into finding out.

Reading Rao and Hesse together is useful precisely because their differences are so visible. Rao writes from inside the tradition he draws on; Hesse writes toward a tradition he can only approach from outside, through books, translation, and a disappointing trip abroad. And yet both arrive at a nearly identical structural insight: that self-realisation is not a thing to be taught but a thing to be lived through, usually against the protagonist's own wishes, and usually by means of loss rather than gain. Neither Ramaswamy nor Siddhartha finds peace through study alone. Each has to be broken open by a relationship, a death, or a failure before the philosophical ideas he already knows intellectually become something he actually inhabits. The guru figures in both novels teach by refusing to teach in the conventional sense; the marriages and romances in both novels function as the pressure that makes the refusal necessary rather than simply painful; and the language of both novels keeps admitting, in its own way, that it cannot fully say what it is describing.

None of this proves that Rao and Hesse were doing the same thing. Rao was writing a partly autobiographical defence of Advaita Vedanta for an English-reading audience that included both Indian

and Western readers; Hesse was writing a European novelist's imagined East, filtered through Jungian psychology and a personal crisis that had little to do with Hindu philosophy as such. But the fact that two such different projects land on the same shape, a teacher who withholds doctrine, a marriage that has to fail before growth can begin, and a language that keeps confessing its own limits, suggests that this shape may belong less to either tradition specifically and more to what serious fiction about inner searching tends to require, regardless of which vocabulary it happens to borrow. That, more than any specific parallel between Ramaswamy and Siddhartha, is the case this introduction has tried to set out, and the chapters that follow take up each of these threads in turn.

References :

- American Literature. (n.d.). The ferryman : Siddhartha by Hermann Hesse. americanliterature.com/author/hermann-hesse/book/siddhartha/the-ferryman
- Book-Loom. (2026). Siddhartha by Hermann Hesse: Summary, characters, key moments & review. book-loom.com
- EBSCO. (n.d.). Raja Rao [Biography]. Research Starters. ebsco.com/research-starters/biography/raja-rao
- Garg, A. (2023). Exploring the dichotomy of the self and the non-self: A Vedantic study of Raja Rao's The Serpent and the Rope. ResearchGate.
- Haney, W. S. (n.d.). Raja Rao. Research Starters, EBSCO.
- Hesse, H. (1951). Siddhartha (H. Rosner, Trans.). New Directions. (Original work published 1922)
- Hesse, H. (1929). Steppenwolf (B. Creighton, Trans.). Henry Holt. (Original work published 1927)
- LitCharts. (2024). Siddhartha part two, chapter 9—The ferryman: Summary & analysis. litcharts.com/lit/siddhartha/part-two-chapter-9-the-ferryman
- Penguin Random House. (n.d.). Siddhartha by Hermann Hesse: Reading guide. penguinrandomhouse.com
- Rao, R. (1938). Kanthapura. Oxford University Press.
- Rao, R. (1960). The serpent and the rope. John Day.
- Sharma, D., & Aggarwal, M. G. (2025). Materialism vs. self-realization: Hermann Hesse's Siddhartha and the ethos of Silicon Valley. International Journal of Contemporary Research in Multidisciplinary, 4(Suppl. 2).
- SparkNotes. (n.d.). Vasudeva character analysis in Siddhartha. sparknotes.com/lit/siddhartha/character/vasudeva
- Wikipedia. (2026). The serpent and the rope. Wikimedia Foundation. en.wikipedia.org/wiki/The_Serpent_and_the_Rope

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 190-195

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Strengthening Climate Action through the India–Japan Joint Crediting Mechanism: An Analysis of the June 2026 Rules of Implementation

Jai Shri Prajapat
Research Scholar, MSBU, Bharatpur.
Dr. Arvind Verma
Professor, MSJ Govt. College, Bharatpur.

Abstract :

The adoption of the Rules of Implementation for the India–Japan Joint Crediting Mechanism (JCM) in June 2026 represents a significant milestone in bilateral climate cooperation under Article 6.2 of the Paris Agreement. The mechanism provides a structured framework for implementing greenhouse gas emission reduction projects, facilitating the transfer of low-carbon technologies, and generating internationally transferred mitigation outcomes (ITMOs) that contribute to the climate commitments of both countries. It aims to promote investments in renewable energy, energy efficiency, waste management, green hydrogen, and other sustainable sectors while ensuring transparency and preventing double counting of carbon credits. The JCM also strengthens economic and technological cooperation by encouraging innovation, climate finance, and private-sector participation. This paper examines the background of the India–Japan Joint Crediting Mechanism, analyses the June 2026 Rules of Implementation, and evaluates their significance for climate governance and sustainable development. It concludes that the JCM has the potential to become an effective model of international climate cooperation and an important instrument for accelerating the transition towards a low-carbon economy.

Keywords : India–Japan Joint Crediting Mechanism (JCM), Article 6.2, Paris Agreement, Carbon Market, Climate Finance, Sustainable Development, Technology Transfer.

Introduction :

Climate change has become one of the most pressing global challenges, requiring countries

to work together to reduce greenhouse gas emissions and promote sustainable development. The Paris Agreement provides a comprehensive framework for international climate action, with Article 6.2 encouraging voluntary cooperation through the transfer of internationally transferred mitigation outcomes (ITMOs). Such cooperative approaches enable countries to achieve emission reductions more efficiently while ensuring transparency and environmental integrity.

India and Japan have strengthened their strategic partnership in recent years through cooperation in infrastructure, clean energy, technological innovation, and environmental sustainability. A major milestone in this partnership was the adoption of the Rules of Implementation for the Joint Crediting Mechanism (JCM) in June 2026, which operationalised the bilateral framework for carbon credit cooperation. The mechanism is expected to promote technology transfer, mobilise climate finance, encourage private-sector participation, and support both countries in achieving their Nationally Determined Contributions (NDCs).

This paper examines the India–Japan Joint Crediting Mechanism with particular emphasis on the June 2026 Rules of Implementation. It analyses the mechanism's evolution, institutional framework, and contribution to climate action while evaluating its significance for sustainable development and bilateral cooperation.

Background of the India–Japan Joint Crediting Mechanism :

The Joint Crediting Mechanism (JCM) is a bilateral carbon market initiative introduced by Japan to promote the adoption of advanced low-carbon technologies in partner countries while contributing to global greenhouse gas (GHG) emission reductions. Unlike the Clean Development Mechanism (CDM) established under the Kyoto Protocol, the JCM operates within the framework of Article 6.2 of the Paris Agreement, which allows countries to cooperate voluntarily through the transfer of internationally transferred mitigation outcomes (ITMOs). The mechanism seeks to ensure that emission reductions are accurately measured, verified, and accounted for, thereby maintaining environmental integrity and preventing double counting.

India and Japan have maintained a long-standing strategic partnership in infrastructure development, clean energy, and technological innovation. Recognising the growing importance of climate cooperation, both countries signed a Memorandum of Cooperation on the Joint Crediting Mechanism in 2025. This agreement laid the foundation for implementing projects in renewable energy, energy efficiency, waste management, green hydrogen, and industrial decarbonisation. The adoption of the Rules of Implementation in June 2026 formally operationalised the mechanism by establishing procedures for project registration, monitoring, verification, and carbon credit issuance.

The India–Japan JCM reflects the shared commitment of both countries to achieving their

Nationally Determined Contributions while promoting sustainable economic growth. By combining Japanese technological expertise with India's expanding clean energy market, the mechanism creates opportunities for investment, innovation, and capacity building. It also demonstrates how bilateral partnerships can complement global climate efforts and support the transition towards a low-carbon and climate-resilient economy.

June 2026 Rules of Implementation :

The adoption of the Rules of Implementation in June 2026 marked a major milestone in operationalising the India–Japan Joint Crediting Mechanism. These rules provide the legal and procedural framework for implementing bilateral carbon credit projects under Article 6.2 of the Paris Agreement. They establish detailed guidelines for project registration, monitoring, reporting, verification, and the issuance of carbon credits, ensuring that all activities are carried out in a transparent and accountable manner.

A key feature of the implementation framework is the establishment of a Joint Committee comprising representatives from the governments of India and Japan. The committee is responsible for approving project methodologies, registering eligible projects, accrediting independent verification bodies, and overseeing the issuance and allocation of carbon credits. Independent third-party entities verify greenhouse gas emission reductions to ensure that projects deliver measurable and credible environmental benefits.

The rules also emphasise environmental integrity by preventing the double counting of emission reductions. Carbon credits generated through JCM projects are recorded using transparent accounting procedures, and corresponding adjustments are made to ensure that the same emission reduction is not claimed by both countries. Furthermore, the framework encourages investment in renewable energy, energy efficiency, waste management, green hydrogen, and sustainable transport. By providing regulatory certainty and a transparent governance structure, the Rules of Implementation are expected to strengthen climate cooperation, facilitate technology transfer, and mobilise greater investment in low-carbon development.

Significance for Climate Action and Bilateral Cooperation :

The India–Japan Joint Crediting Mechanism (JCM) represents a significant advancement in international climate cooperation by providing a practical framework for implementing Article 6.2 of the Paris Agreement. The mechanism enables both countries to collaborate on greenhouse gas emission reduction projects while promoting sustainable development and economic growth. Through the generation and transfer of internationally transferred mitigation outcomes (ITMOs), the JCM supports the achievement of the Nationally Determined Contributions (NDCs) of both India and

Japan and demonstrates how bilateral partnerships can contribute to global climate objectives.

For India, the JCM offers access to advanced Japanese technologies in renewable energy, energy efficiency, green hydrogen, waste management, and industrial decarbonisation. The adoption of these technologies can improve energy efficiency, reduce carbon emissions, and strengthen the country's transition towards a low-carbon economy. In addition, the mechanism is expected to attract climate finance and foreign investment, encouraging the development of sustainable infrastructure and creating employment opportunities in emerging green sectors. Such investments can also enhance the competitiveness of Indian industries by promoting cleaner and more efficient production processes. For Japan, the mechanism provides an opportunity to fulfil part of its climate commitments through credible international cooperation. It also expands the global reach of Japanese low-carbon technologies and strengthens its role as a leader in climate diplomacy and sustainable innovation. The partnership creates new opportunities for Japanese companies to invest in India's rapidly growing clean energy market while contributing to global emission reduction efforts.

Beyond its bilateral benefits, the India–Japan JCM serves as an important example of how international carbon markets can operate with transparency, accountability, and environmental integrity. The mechanism encourages public–private partnerships, technological innovation, and knowledge sharing, thereby supporting long-term sustainable development. As more countries explore cooperative approaches under Article 6 of the Paris Agreement, the India–Japan Joint Crediting Mechanism has the potential to become a model for future climate partnerships and international carbon market initiatives.

Challenges and Future Prospects :

Despite its considerable potential, the India–Japan Joint Crediting Mechanism faces several challenges that may influence its successful implementation. One of the primary concerns is the complexity of carbon market regulations and the need for effective coordination between government agencies, private enterprises, and independent verification bodies. Establishing reliable systems for monitoring, reporting, and verifying emission reductions requires strong institutional capacity and continuous technical support. Furthermore, many low-carbon technologies involve high initial investment costs, which may discourage participation by smaller enterprises without adequate financial assistance.

Another important challenge is maintaining environmental integrity by preventing the double counting of carbon credits. Transparent accounting procedures and strict compliance with Article 6.2 requirements are essential to ensure the credibility of the mechanism. Capacity building and awareness programmes will also be necessary to encourage greater participation from industries and project

developers.

Despite these challenges, the future prospects of the JCM remain highly promising. India's expanding renewable energy sector, increasing investment in green hydrogen, and commitment to achieving net-zero emissions by 2070 provide significant opportunities for collaborative projects. Continued Japanese investment, technology transfer, and policy cooperation are expected to strengthen industrial decarbonisation and sustainable infrastructure development. As international carbon markets continue to evolve, the India–Japan Joint Crediting Mechanism is likely to play an increasingly important role in supporting global climate action.

Conclusion :

The adoption of the Rules of Implementation for the India–Japan Joint Crediting Mechanism in June 2026 marks an important milestone in bilateral climate cooperation under Article 6.2 of the Paris Agreement. By establishing a transparent framework for implementing emission reduction projects and generating carbon credits, the mechanism supports both countries in achieving their Nationally Determined Contributions while promoting sustainable development. It also strengthens cooperation in clean technology, climate finance, and capacity building, creating opportunities for innovation and long-term economic growth.

Although challenges related to regulatory coordination, financing, and institutional capacity remain, the JCM provides a practical model for addressing these issues through international collaboration. Its emphasis on transparency, environmental integrity, and private-sector participation enhances the credibility of bilateral carbon market mechanisms. As global efforts to address climate change continue to expand, the India–Japan Joint Crediting Mechanism is expected to play a significant role in accelerating the transition to a low-carbon economy and may serve as a model for future international climate partnerships.

References

- Intergovernmental Panel on Climate Change. (2023). Climate change 2023: Synthesis report. https://www.ipcc.ch/report/ar6/syr/
- Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2026, June 16). India and Japan adopt Rules of Implementation for Joint Crediting Mechanism under Article 6.2 of the Paris Agreement. Press Information Bureau, Government of India. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2273527
- Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2025, August 29). India and Japan sign Memorandum of Cooperation on Joint Crediting Mechanism (JCM) under Article 6.2 of the

Paris Agreement on Climate Change. Press Information Bureau, Government of India. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2161892

- Ministry of Foreign Affairs of Japan. (2026). Joint Crediting Mechanism (JCM). https://www.mofa.go.jp/
- Joint Crediting Mechanism Secretariat. (2026). India–Japan Joint Crediting Mechanism: Rule of Implementation. https://www.jcm.go.jp/jc/information/20260608/
- United Nations Framework Convention on Climate Change. (2015). Paris Agreement. https://unfccc.int/process-and-meetings/the-paris-agreement/the-paris-agreement
- Press Information Bureau. (2026, July 2). 16th India–Japan Annual Summit Joint Statement. https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2280587
- Government of Japan, Ministry of the Environment. (2026, June 25). Rule of Implementation of the Joint Crediting Mechanism (JCM) between Japan and India. https://www.env.go.jp/press/press_01458.html
- United Nations. (2023). The Sustainable Development Goals report 2023. https://unstats.un.org/sdgs/report/2023/

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 196-200

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A Comparative Study of Personality among Government School and Private School Level Basketball Players

Manish Kumar Sharma, Research Scholar

Dr. Surjeet Singh Kaswan (Professor) Research Supervisor

Faculty of Physical Education, Tantia University, Sri Ganganagar (Raj.)

Abstract :

The purpose of this study was to compare the personality traits of basketball players studying in government and private schools. Personality plays a significant role in sports performance, team coordination, emotional control, confidence, and competitive behavior. The present investigation was conducted on 120 basketball players, including 60 government school players and 60 private school players aged between 14–18 years. The standardized personality inventory developed by Hans Eysenck was used to measure personality dimensions such as extroversion, neuroticism, psychoticism, and emotional stability. Mean, standard deviation, and independent 't' test were applied for statistical analysis. The findings indicated that private school basketball players showed higher extroversion and self-confidence, whereas government school players demonstrated better emotional stability and social adaptability. Significant differences were observed in selected personality variables. The study concluded that educational environment, coaching facilities, parental support, and socio-economic status influence the personality development of basketball players.

Introduction :

Personality is one of the most important psychological factors influencing sports performance. In basketball, players require leadership qualities, emotional stability, confidence, aggression control, decision-making ability, and social adjustment. The educational environment of schools significantly contributes to the development of these characteristics.

Government and private schools differ in terms of infrastructure, coaching facilities, competition exposure, academic pressure, and socio-economic environment. These differences may

influence the personality traits of basketball players. Therefore, it becomes essential to compare the personality profiles of government and private school basketball players.

Basketball is a fast-paced team sport demanding quick reactions, cooperation, communication, and mental toughness. Psychological preparedness is equally important as physical fitness. Personality traits such as extroversion, emotional stability, and confidence help players perform better under pressure situations.

Need and Significance of the Study :

The study is important because :

- Personality directly affects sports performance.
- School environment influences behavioral development.
- Coaches can design psychological training programs.
- Teachers and parents can better understand athletes' mental characteristics.
- The study contributes to sports psychology literature.

Statement of the Problem :

"A Comparative Study of Personality among Government School and Private School Level Basketball Players."

Objectives of the Study :

- To compare extroversion among government and private school basketball players.
- To compare emotional stability among government and private school basketball players.
- To compare neurotic tendencies among government and private school basketball players.
- To study overall personality differences between both groups.

Hypotheses :

- There would be significant differences in personality traits between government and private school basketball players.
- Private school players would show higher extroversion.
- Government school players would show better emotional stability.

Variables :

Independent Variable :

- Type of School
  - Government School
  - Private School

Dependent Variable :

- Personality Traits

Delimitations :

- The study was limited to basketball players aged 14–18 years.
- Only school-level players were selected.
- The study was confined to selected schools.

Limitations :

- Results depended upon honesty of responses.
- Environmental and family factors were not fully controlled.
- Small sample size limits generalization.

Review of Literature :

Several researchers have studied personality in sports.

- Gordon Allport explained personality as a dynamic organization of psychophysical systems.
- Raymond Cattell identified personality traits influencing sports participation.
- Studies revealed that athletes generally show higher extroversion and emotional stability compared to non-athletes.
- Research also indicated that institutional environment affects confidence and social behavior.

Previous studies support the assumption that basketball players from different educational settings may possess varying personality characteristics.

Methodology :

Research Design :

Descriptive comparative method was used.

Sample :

A total of 120 basketball players were selected :

- 60 Government School Players
- 60 Private School Players

Sampling technique: Random sampling.

Criterion Measures :

The following test was used :

- Eysenck Personality Inventory (EPI)

Statistical Techniques :

- Mean
- Standard Deviation
- Independent t-test

Data Analysis and Interpretation :

Variable	Government School Mean	Private School Mean	t-value	Result
Extroversion	16.42	18.71	2.65	Significant
Emotional Stability	17.93	15.84	2.11	Significant
Neuroticism	13.56	15.12	1.98	Significant
Overall Personality	47.91	49.67	2.34	Significant

Interpretation

- Private school players showed greater extroversion due to better exposure and communication opportunities.
- Government school players displayed better emotional stability, possibly because of adaptability to challenging conditions.
- Personality differences were statistically significant.

Findings

- Significant differences existed between government and private school basketball players.
- Private school players had higher extroversion scores.
- Government school players demonstrated better emotional control.
- School environment influenced personality development.

Conclusions :

The study concluded that personality traits differ significantly between government and private school basketball players. Coaching facilities, educational atmosphere, social interaction, and economic background play an important role in shaping athlete personality.

Educational Implications :

- Schools should provide psychological counseling for athletes.
- Coaches should include personality development programs.
- Equal sports opportunities should be provided in government schools.
- Sports psychologists should work with school athletes.

Suggestions for Further Research :

- Similar studies may be conducted on female players.
- Comparative studies may be done in other sports.
- Psychological variables like anxiety and aggression may be included.
- Studies may be conducted at university level.

References

- Psychology of Physical Activity – Robert Weinberg
- Foundations of Sport and Exercise Psychology – Weinberg & Gould
- Personality and Individual Differences – Eysenck
- Singh, A. (2018). Sports Psychology and Personality.
- Sharma, R. (2020). Personality Traits among School Athletes.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 201-207

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी की कविता में भूमंडलीकरण से उत्पन्न पर्यावरणीय चिंताएँ

डॉ. सौम्य

प्राचार्य, माध्यमिक शिक्षा विभाग, राजस्थान।

प्रकृति मानवीय रागात्मक संबंधों का आधार तत्त्व है। प्रकृति की विस्मयकारी शक्ति से मनुष्य का लगातार संवाद उसकी सौंदर्य चेतना का मूल उत्स रहा है। आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता तक आते–आते विज्ञान ने प्राकृतिक संपदा के शोषण के नए–नए तरीके ईजाद किये हैं। मुक्त बाजार ने प्राकृतिक संपदा के शोषण के लिए राष्ट्र–राज्य की पाबंदियों से छुटकारा पाने के वैश्विक प्रबंधन को अंजाम दिया। मुक्त बाजार एक विनाशकारी प्रणाली है, विशेषकर तीसरी दुनिया के देशों के लिए। दुनिया को वणिक–वाणिज्य कार्य के लिए खोल देना, वह भी पूर्ण आजादी के साथ यानी बिना कोई रोक–टोक के, यह मानवता के विनाश का दरवाजा है। वहाँ मुनाफे से बढ़कर कोई मूल्य नहीं है। इस शोषण का सबसे विनाशकारी प्रभाव प्रकृति पर ही पड़ा है। नतीजतन आज पूरे विश्व का वातावरण विनाश के कगार पर खड़ा है। मुक्त बाजार की मादकता में डूबे व्यक्ति प्रकृति से अलग हो गए हैं। उन्हें आज के दौर की कविता वापस पटरी पर लाने की कोशिश कर रही है। 21वीं सदी की कविता में प्रकृति प्राकृतिक सुषमा के वर्णन लेकर नहीं, वजूद की गहरी संसक्ति को लेकर सामने आती है।

21वीं सदी के दौर में जैसे–जैसे पर्यावरण बदल रहा है, कवियों की चिंता बढ़ती जा रही है। आज पेड़ों की जगह बारूद और कंक्रीट के ढेर लगाए जा रहे हैं। विज्ञान की प्रगति के नाम पर पृथ्वी पर रासायनिक पदार्थों का चलन बढ़ा है। रामदरश मिश्र दुःखी होकर लिखते हैं –

"उसने सोने चाँदी के पहाड़ पर
बारूद के पेड़ लगाए हैं।
जिनकी विषाक्त साँसों से झुलस गई हैं वनस्पतियाँ
टूट गए हैं चिड़ियों के पंख।
तेजाब सा खलबला रहा है नदियों का पानी
जल गए मौसमों के रंग और वे एक दूसरे में समा गए हैं
और आदमी एक प्यासा शेर बनकर रह गया है।"[1]

कवि पर्यावरण के कहर से क्षुब्ध है, क्योंकि जब विज्ञान की लीला पर्यावरण या प्रकृति से बाहर जाने की कोशिश करती है तो वह संतुलन अपने आप ही बना लेती है। आज नगरों–महानगरों में पर्यावरण दूषित हो जाने

पर साँस लेना भी दूभर हो गया है। मौसम भी असंतुलित हो गए हैं। भूमंडलीकरण के दौर में हमारा जीवन प्राकृतिक न रहकर कृत्रिम बनता जा रहा है। कवि प्रकृति से लेकर समकालीन प्राकृतिक जीवन तक को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। अकाल, सूखा, भूकंप, अनावृष्टि, घटता जलस्तर आदि प्रकृति के प्रति अप्राकृतिक आचरण के परिणाम हैं। रेवती रमण की कविता 'पेड़ बोलता है' में पेड़ और आदमी के बीच के रिश्तों को उद्‌घाटित किया है–

"हम होंगे, झरेंगे सभ्यता–संस्कृति के बीज
हम न होंगे, बच नहीं पाएँगे
बरसात, बसंत, तुम और न यह जिंदगी।"[2]

आदिवासियों से अधिक प्रकृति के निकट और कौन हो सकता है? वे किसी भी लालच में आकर अपनी प्रकृति माँ से दूर नहीं होना चाहते और अपनी जान देकर भी प्रकृति और पर्यावरण को बचाने में जुटे रहते हैं। अपने आस पास को बचाने के लिए वह किसी से भी टक्कर ले सकते हैं पर अपनी संगिनी और सहेली प्रकृति पर कोई आँच नहीं आने देना चाहते। अगर हम सब इन आदिवासियों से कुछ सीख ग्रहण कर और अपने लालच को हराकर प्रकृति को बचाने में जुट जाएँ तो आने वाली नस्लों का भला हो सकता है। आदिवासियों की प्रकृति और अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता को सीमा आजाद ने इस प्रकार लेखनीबद्ध किया है–

"किसी भी हद तक जा सकते हैं हम
बचाने के लिए / अपने नदी पहाड़ धरती
फिर भी तुम बार–बार करते हो हमले
असफल होने पर / नई चाल चलते हो,
नया नामकरण करते हो हमारा
'आदिवासी' से 'माओवादी'
जैसे कि इससे / हम 'हम' नहीं रह जाएँगे
जैसे कि / इससे ही
तुम्हारे हमले जायज हो जाएँगे।
याद रखो / हम सबसे करीब हैं प्रकृति के
पाल–पोष कर इसने ही हमें बनाया है
जुझारू और लड़ाकू
नहीं बख्शती जैसे प्रकृति
अपने से छेड़छाड़ करने वालों को,
वैसे ही हम भी / और
धरती को बचाने के लिए
धरती में मिल जाने की हद तक
हम जूझते हैं
लड़ते हैं।"[3]

आदमी प्रकृति से जितनी दूर भाग रहा है उसे उतना ही नुकसान हो रहा है। पर्यावरण को खत्म करके मानव ने जो विशाल भवन तैयार किये हैं वे उसी का विनाश करने वाले हैं। बाजारू संस्कृति ने आदमी को पर्यावरण के प्रति संवेदनहीन बना दिया है। बाजारू संस्कृति के स्मृतिहीन समय में प्रकृति के नाना रूपरंग स्मृति बोध के गहरे संवेदनात्मक क्षणों को लेकर 21वीं सदी की कविता में उभरते हैं–

"थोड़ा सा वक़्त चुराकर बतियाया है कभी
कभी शिकायत न करने वाली
गुमसुम बूढ़ी पृथ्वी से उसका दुःख?
अगर नहीं, तो क्षमा करना!
मुझे तुम्हारे आदमी होने पर संदेह है।"[4]

बाजार के शोरगुल में लगातार अपने वजूद से कटे जा रहे हम महसूस नहीं कर पा रहे हैं कि हमारा क्या कुछ नष्ट हो गया है। 'संथाल परगना' कविता में निर्मला पुतुल अपने वजूद से कटे जाकर विस्थापित होने की त्रासद स्थिति को गहरे संवेदनात्मक धरातल पर उभारती हैं–

"संथाल परगना
अब नहीं रह गया है संथाल परगना
बहुत कम बचे रह गए हैं
अपनी भाषा और वेशभूषा में यहाँ के लोग
बाजार की तरफ भागते
सब कुछ गड्ड–मड्ड हो गया है इन दिनों यहाँ
उखड़ गए हैं बड़े–बड़े पुराने पेड़
और कंक्रीट के पसरते जंगल में
खो गयी है इसकी पहचान"।[5]

जिस विश्नोई समाज ने सैकड़ों जानें कुर्बान करके पेड़ों को बचाया था, जो बाद में चिपको आंदोलन की प्रेरणा बनी, उन्हीं के वंशज आज आँखों के आगे कट रहे जंगलों को सूनी आँखों से ताकते हैं। आज बाजार हमें अपने वजूदों से बेहद करीने से बेदखल करता जा रहा है। केवल उपभोक्ता बना देने से हम विश्व की विनाशलीला भी नहीं रोक पा रहे हैं। प्रकृति का अनमोल शुद्ध पेयजल आज बाजार की वस्तु बन गया है। पानी की बिकाऊ स्थिति के बारे में हमारे पूर्वजों ने कभी नहीं सोचा थाय लेकिन आज पानी सबसे ज्यादा बिकने वाली चीज हो गयी है। एकांत श्रीवास्तव ने पर्यावरण की इस दशा का विश्लेशण बाजारवाद के संदर्भ में करते हुए लिखा है–

"दिल्ली के एक चौराहे पर
मैं उसे देखकर डर गया
कि जो आकाश से बरसता है बेमोल
जो नदियों में बहता है खुलेआम
तो अब यह पानी भी बिकाऊ हो गया है।"[6]

डॉ. रामदयाल मुंडा की कविता 'विकास का दर्द' पर्यावरण के उजड़ने की पीड़ा को व्यक्त करती है। आज पर्यावरण नष्ट हो रहा है और विज्ञान विकास कर रहा है। कवि के अनुसार जब गीदड़ की मौत आती है, तो वह शहर की ओर भागता है। यानी कि आज का आदमी वृक्षों का विनाश करके स्वयं के विनाश को दावत दे रहा है–

"मुझको विकास का दर्द यह असह्य
देर तक सहना न होगा
समय से पहले ही मेरा
काम तमाम होगा।"[7]

गाँव में बरगद के पेड़ जो कभी बुजुर्गों के जमघट के गवाह रहे हैं, जिसकी छाँव में खाट बिछाकर लोग अपना सुख–दुःख बाँटते थे, वही बरगद आज लुप्त होते जा रहे हैं। युवा पीढ़ी प्रकृति के सान्निध्य सुख से अपरिचित होती जा रही है। शहतूत, फालसे, निम्बोलियों से अपरिचित आज की पीढ़ी भोजनालयों के आस–पास मँडराती नजर आ रही है। धरती से ज्यादा पाने के लालच में कीटनाशकों तथा रासायनिक पदार्थों का प्रयोग करके धरती की उपजाऊ क्षमता को ही खत्म किया जा रहा है। सरिता सिंह के शब्दों में–

"आज क्या हो गया है उन्हें
जो बरगद के साथी थे
उन सभी की मारी गयी मति
यह प्रकृति की संपत्ति
कैसे बनी विपत्ति।"[8]

अशोक वाजपेयी की कविता 21वीं सदी के पर्यावरण और भूमंडलीकरण को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है। आज पर्यावरण और प्रकृति संग्रहालय की वस्तु बनती जा रही हैं। आज की कविताओं में विज्ञानवाद के बढ़ते प्रभाव, उसके दोषों का विश्लेषण मानवता के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। वे कहते हैं–

"हममें कुछ वनस्पतियों के उलझे हुए सपने,
कुछ पक्षियों की सम्भव न हो पाईं उड़ानें,
कुछ पशुओं के स्थगित आखेट,
सब बंद है
हम आदि के अंतहीन संग्रहालय हैं।"[9]

मनुष्य ने प्रकृति को अपने स्वार्थ के लिए नष्ट कर दिया है। आज प्रकृति को भी यह पता नहीं है कि वह कहाँ है? आज प्रकृति की खबर कौन रखता है? सभी अपने आप में सिमटे हुए जीवन जी रहे हैं। अशोक वाजपेयी की कविता 'उसने कहा' में प्रकृति के बेखबर होने की बात कही है–

"उसने कहा :
उसे खबर नहीं वह कहाँ है।
वृक्ष ने कहा उसे खबर नहीं
उसके फूल कहाँ खिले हैं,

आकाश ने कहा उसे पता नहीं
उसे कहाँ कौन–कौन से बादल ढाँपे हैं,
पृथ्वी ने कहा उसे मालूम नहीं
कौन–सी वनस्पतियाँ
कहाँ गा रही हैं प्रणय का हरा राग।"[10]

विश्व के बड़े–बड़े नगरों–महानगरों से हरियाली गायब है। बाजार ने अपने मॉल निर्मित करने के लिए वृक्षों–जंगलों को काट दिया है। जंगल कटने के कारण जंगली–जानवरों, पशु–पक्षियों का अस्तित्व लुप्त होने के कगार पर है। बाघों के गढ़ में आज बाघों की गिनती की जा रही है। महादेव टोप्पे की कविता पर्यावरण और प्रकृति के राक्षसों पर व्यंग्य करती है–

"झारखंड में नहीं होगी
अब सुबह दादा
दरअसल जिस मुर्गे को तुमने पाला था
गाँव, देश और जवानों को
जगाने के लिए
कुछ पढ़े लिखे विलायत से लौटे लोग
प्रधानमंत्री के साथ
मिलकर खा गए
अब मुर्गा नहीं बोलेगा दादा।"[11]

बद्रीनारायण ने अपनी कविता 'सौदागर का मानर' में प्रकृति को बचाने की अपील की है। कवि ने प्रकृति को स्वयं मनुष्य से बचने का भी आह्वान किया है। वे हिरणों को लड़ने के लिए प्रेरित करते हैं। आज अगर प्रकृति को बचाना है तो हिरणों को आगे आना ही होगा वरना बाजार का सौदागर सब कुछ बेच देगा, प्रकृति को नष्ट कर देगा। कवि हिरणों से आह्वान करता है–

"हिरणों अरज करूँ मैं तोसे
अपने चाँद को बचा लो
चाँद को बचा लो, हिरणों चाँद के अर्थ को बचा लो
चाँद के अर्थ को बचा लो अर्थात एक कवि को बचा लो
एक कवि को बचा लो अर्थात्
रेत, पानी और बाजरे के खेत के लिए
अपनी लड़ाई को बचा लो
अपनी लड़ाई को बचा लो हिरणों।"[12]

हिंदी आदिवासी कवियों ने मूलतः विस्थापन, जंगलों के ह्रास, संस्कृति विनाश, भाषा, प्रकृति आदि के लिए चिंता जाहिर की है। विज्ञान और वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव ने आदिवासियों के जंगल–पत्थर और घर तक लील लिए हैं। जानवरों के दाँत, खाल, हड्डियों और माँस को नीलाम कर दिया है। इन कवियों ने भविष्य में होने वाली

प्राकृतिक आपदा को पहचान लिया है। आम आदमी पर जल्द ही प्रकृति का संकट आने वाला है–

"क्या कभी नदियाँ
लौट कर पूछेंगी
अपने खंडहर होते
पर्वतों से
कि कहाँ गया
उनका उद्‌गम?
कहाँ गया उनका वैभव?"[13]

इससे यह साफ जाहिर होता है कि 21वीं सदी के प्रथम दशक के कवियों ने नष्ट होते जल–जंगल, पर्वतों–खंडहरों को बचाने की अपील की है। प्रकृति ने मनुष्य को सब कुछ दिया है, किंतु मानव ने अपने स्वार्थ के लिए उसे दोनों हाथों से इतना लूटा है कि अब वह विनाश की ओर बढ़ चुका है। किसान ने जहाँ आदमी के जीवन को प्रकृति से दूर किया है वहीं प्रकृति भी अब मनुष्य से कन्नी काटती नजर आ रही है। आज प्रकृति अपना संतुलन बनाये रखने के लिए मानव पर हावी हो रही है। इसके परिणाम ठीक दिखाई नहीं दे रहे हैं–

"इसलिए फिर कहती हूँ
न छेड़ो प्रकृति को
अन्यथा यह प्रकृति, एक दिन
माँगेगी, हमसे
तुमसे
अपनी तरुणाई का
एक एक क्षण / और करेगी
भयंकर... बगावत / और तब
न तुम होंगे / न हम होंगे।" [14]

मदन कश्यप के अनुसार आज विज्ञान ने बाजार में बेमौसम ही सब्जियाँ और फल ला दिए हैं। ये सब विनाश के कारण हैं। आज हम प्रकृति के साथ जो खिलवाड़ कर रहे हैं, उसका भुगतान तो हमें एक न एक दिन प्रलय के रूप में करना ही होगा। प्रकृति को बेचने के चक्र में आदमी इतना अंधा हो गया है कि वह प्रकृति की दिशा और दशा ही बदलना चाहता है। यह एक विनाश की ओर ले जाने वाला रास्ता है–

"अब भी फूल के खिलने में
उतना ही वक़्त लगता है
जितना तब लगता था
जब दुनिया बहुत तेज नहीं थी
अब भी आम पकने के लिए
करते हैं बारिश का इंतजार
चाहकर भी गर्मियों में

नहीं उगाया जा सकता आलू
प्रकृति अपनी ही गति से चलती है
और जब कभी गति बढ़ा लेती है
प्रलय होती है।"[15]

इस प्रकार 21वीं सदी के इस दौर में पर्यावरण की दशा शोचनीय हुई है। वैश्वीकरण ने प्रकृति को नष्ट करने में कोई कमी नहीं छोड़ी है। कवियों ने पर्यावरण की दशा और दिशा को यथार्थ रूप में उद्‌घाटित करते हुए उसके विनाशकारी रूप को भी कविता में लिपिबद्ध किया है। बाजारवाद ने जल–जंगल, जमीनों और पशु पक्षियों को बाजार की वस्तु बनाकर बेच दिया है। अनेक वनस्पतियाँ, पशु–पक्षी, पेड़–पौधों की नस्लें लुप्त ही हो गईं हैं। प्रकृति के दोहन का मुख्य कारण कारखाने और उद्योग–धंधे हैं। कवियों ने आज के समाज को पर्यावरण के प्रति जागरुक करते हुए उसे बचाने का आह्‌वान भी किया है।

सन्दर्भ :-

1. इंद्रप्रस्थ भारती, जनवरी मार्च 2004, पृष्ठ– 55
2. अक्षर पर्व, अप्रैल 2005, पृष्ठ– 133
3. अक्षर पर्व, अप्रैल 2005, पृष्ठ– 120
4. नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली– 2005, पृष्ठ– 31–32
5. वही, पृष्ठ– 26
6. बीज से फूल तक, एकांत श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ– 44
7. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2002, पृष्ठ– 42
8. वही, पृष्ठ– 38
9. दुःख चिट्ठीरसा है, अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ– 25
10. वही, पृष्ठ– 108
11. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2002, पृष्ठ– 47
12. खुदाई में हिंसा, बद्रीनारायण, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ– 44
13. समकालीन आदिवासी कविता, हरिराम मीना (सं.), सम्भावना प्रकाशन दिल्ली, 2006, पृ 24
14. वही, पृष्ठ– 26
15. कुरूज, मदन कश्यप, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ– 31

पत्राचार का पता :
सरस्वती विद्या निकेतन के पास, गोविन्द नगर, मडरपुर रोड, भरतपुर (राजस्थान), पिन–321001,
मोबाइल : 9414877632, 7340476324 (WhatsApp)
ईमेल : spmanan1992@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 208-213

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Maladevi Temple of Gyaraspur [Vidisha] : Architectural Innovation and Sectarian Syncretism in Early Medieval Dasarna

SHIVAM RAGHUWANSHI, RESEARCH SCHOLAR,
Dr. SUNITA MALVIYA, PROFESSOR & HEAD,
DEPARTMENT OF HISTORY, PMCOE
SHRI ATAL BIHARI VAJPAYEE GOVT ARTS & COMMERCE COLLEGE INDORE [M.P.]

Abstract -

The Maladevi Temple at Maladevi Temple represents one of the most distinctive monuments of early medieval central India, reflecting the intersection of architectural innovation, political authority, and religious pluralism in the Dasarna region. This paper examines the temple's hybrid architectural design, epigraphic evidence, and evolving sectarian identity within the broader cultural landscape of Dasarna. Combining archaeological, architectural, and epigraphic analysis, it demonstrates that the temple was deliberately conceived as a partially rock-cut and partially structural monument, integrating natural geology with sophisticated temple planning.

Particular attention is given to the Valleka Inscription, which confirms the temples association with the Gurjara-Pratihara imperial network through the Kalachuri prince Valleka and provides crucial evidence for Jain patronage under a broader Brahmanical political framework. The study further explores the temple's iconographic program, local traditions, and sacred topography to argue that the monument embodies a process of religious coexistence rather than sectarian replacement. By situating the Maladevi Temple within the political, artistic, and devotional developments of ninth-century central India, the paper highlights its significance as an exceptional example of architectural hybridity and inter-sectarian patronage, offering new insights into the fluid religious and cultural dynamics of the early medieval Dasarna region.



Introduction : The Sacred Geography of Dasana :

The early medieval period in central India was characterized by intense architectural experimentation, political realignment, and fluid sectarian interactions. Within this dynamic milieu, the ancient region of Dasarna—centered around the modern-day Vidisha district of Madhya Pradesh—served as a primary crucible for monumental art and epigraphy. Positioned at the geographical transition where the fertile Malwa plateau begins to yield to the broken terrain of the Vindhyan ranges, the small town of Gyaraspur emerged as a significant sacred and commercial node. Strategically located along the ancient Vidisha-Kosambi trade route via Eran, Gyaraspur was a flourishing urban center sustained by merchant guilds, royal administrative bodies, and diverse monastic communities.

The extensive archaeological ruins scattered in and around Gyaraspur preserve a tangible record of religious coexistence, reflecting the historical intersection of Buddhism, Brahmanism, and Jainism. While the western hills of the town preserve the remains of the eighth-to-tenth-century Buddhist Dhaikinath Stupa, and the town center houses the ruins of the ninth-century Shaiva Athakamba Temple and the magnificent Vaishnava Hindola Torana, the most structurally anomalous monument of this landscape is the Maladevi Temple.

This magnificent temple, dating to the Pratihara period, was constructed on the eastern slope of the hill. A portion of the hill extends into the interior of the temple. The doorway and door-jambs are adorned with sculptures of Jain Yakshas, Yakshinis, and Tirthankaras. The door-frame also features carvings of Ganga, Yamuna, and other Hindu deities.The Maladevi Temple is a monument that challenges conventional categories of Indian art history.

Inside the sanctum (Garbhagriha) are four large seated (Padmasana) statues of Jain Tirthankaras. Above the sanctum rises a grand Urushringa (subsidiary-spired) Shikhara. On the lintel (Lalat Bimba) is an image of Garudasana Vaishnavi Devi (the goddess Vaishnavi seated on Garuda). It stands as a

unique architectural hybrid, being partly carved out of the living rock and partly erected as a structural sandstone monument. This structural duality mirrors a deeper religious complexity, as the temple houses an extensive iconographic program that straddles the boundaries between the Brahmanical and Digambara Jain traditions.

Local mythologies and historical memories weave a complex tapestry around the origins of Gyaraspur and its hydraulic landscape. According to regional legends documented in early twentieth-century surveys, the town was established by the gods and named after a strict vow of gyaras, or the eleventh day of the lunar cycle (Ekadashi), observed by King Rukmangada of Vidisha. The king was an uncompromising devotee of Vishnu who enforced a total fast across his entire realm, extending the restriction even to domestic cattle and infants. The legend relates that when his son-in-law, Sobhana, visited the palace on this sacred day, he died of exhaustion and hunger due to the strict enforcement of the fast. Upon his death, Sobhana was elevated to a celestial ruler in the next world, and a local brahmana subsequently witnessed Vishnu's angels descending at night to set up a court (darbar) for him. This miraculous site became known as Sobhanapuri, which eventually evolved into the name Gyaraspur to commemorate the day of Sobhana's spiritual elevation.

A parallel local tradition attributes the physical excavation of the town's water bodies to a Gond chief named Man, who ruled from Gada Madhala near Jabalpur. Suffering from leprosy, the chief traveled to the area after hearing of the curative properties of its local waters. Following his recovery, he excavated three reservoirs: the Chhoti Madagan tank in the southwest, and two northeastern reservoirs, the largest of which is the Man-sarovar. The Maladevi Temple is situated directly overlooking this Man-sarovar tank, anchoring the sacred complex to the local hydraulic landscape.

Political Geography and Epigraphic Foundations :

The construction of the Maladevi Temple during the late ninth century CE (specifically between 850 and 900 CE) coincides with the imperial expansion of the Gurjara-Pratihara dynasty. Under the long reign of Emperor Mihira Bhoja (r. c. 836–885 CE), the Gurjara-Pratiharas established a vast hegemony over northern and central India, securing key trade routes and sponsoring monumental temple building as an instrument of political legitimation.

The regional administration of the Dasarna territory during this era was entrusted to feudatory lineages, most notably the Kalachuris of Tripuri. While earlier historical scholarship often posited that the Kalachuris were entirely independent sovereigns during the ninth century, epigraphical evidence recovered from Gyaraspur has clarified the precise feudal hierarchies of the period. The Kalachuri ruler Kokalla I (r. c. 850–890 CE) consolidated his regional authority through strategic marriage alliances with the Rashtrakutas and Chandelas, while nominally recognizing the suzerainty of the

Pratihara center in Kannauj.

The primary epigraphical source for the foundation of the Maladevi Temple is a large, finely incised reddish sandstone slab discovered at Gyaraspur, which was subsequently acquired by Major General Charles Stuart in the early nineteenth century and is currently preserved in the British Museum . The text of this inscription, composed in Sanskrit and written in early Nagari characters, was critically edited and translated by the epigraphist Richard G. Salomon. The inscription records the foundation of a sacred edifice during the reign of Prince Valleka (also referred to as Vallavati in broader genealogies), a younger son of Kokalla I and his Chandela queen Natta-devi.

The Valleka inscription is historically vital for two primary reasons :

- It explicitly states that Valleka was in the active service of King Bhoja (Mihira Bhoja), whom it describes as the supreme ruler of the earth, and notes that Valleka defeated rival monarchs on Bhoja's behalf. This confirms that the Kalachuris operated as functional subordinates and military governors under the Pratihara imperial umbrella in the Gyaraspur sector.
- It records the consecration of a temple dedicated to the goddess Sri (Laksmi) in her specifically Jaina manifestation. This detail provides the ultimate epigraphical anchor for Salomon's hypothesis that the Maladevi Temple was fundamentally conceived and constructed as a Jaina-Brahmanical hybrid site, rather than being the product of sectarian conflict or post-facto appropriation.

Stylistically, the inscription reflects the literary conventions of the late Pratihara court, employing elaborate Sanskrit verses to eulogize the martial exploits of the ruling dynasty. For instance, verse 26 of the inscription employs vivid imagery to describe a battlefield where the headless trunks (kavandha) of Valleka's enemies danced in the wake of his sword-strikes, earning him the favor of celestial maidens and securing the frontiers of the empire. This epigraphic record underscores how the temple was positioned at the intersection of political power, militaristic display, and inter-religious patronage.

The Hybrid Architectural Schema: Tectonic Plan and Elevation :

Architecturally, the Maladevi Temple is classified as a sandhara prasada—a temple featuring an enclosed inner circumambulatory passage (pradakshinapatha) around the central sanctum. What distinguishes this monument from contemporary ninth-century structural temples of central India, such as the nearby Bajramath or the Gadarmal temple at Badoh, is its radical geological and structural hybridity. The temple is not built entirely of dressed masonry, nor is it a completely excavated monolith like the rock-cut Rashtrakuta monuments of Ellora. Instead, it represents a highly sophisticated structural synthesis, wherein the rear of the temple literally grows out of the natural sandstone hillside while the front portions are built of massive, interlocking structural stone blocks.

The builders of the temple utilized a pre-existing, sacred natural cavern situated on the northern ridge of the hill to serve as the garbhagriha (sanctum sanctorum). To expand this troglodytic cave into a fully articulated, symmetrical temple plan, they carved a wide horizontal terrace directly out of the cliffside, stabilizing the outer edge of the platform with a massive, monumental dry-stone retaining wall. The structural components—the ardha-mandapa (entrance porch), the central mandapa (assembly hall), the antarala (vestibule), and the massive shikhara—were then systematically keyed into the natural contours of the cliff.

This synthesis between living geology and formal Indian architecture creates what architectural historians have described as an "uneasy truce". In the interior, the architectural order abruptly yields to the raw sandstone of the mountain. The north-west corner of the temple is formed entirely by the natural rocky ledge of the hill. Consequently, the traditional four-pillar layout of the inner sanctum was abandoned; the north-west pillar was omitted entirely, as the low, unfinished natural rock ceiling of the cavern was structurally self-supporting and did not require the load-bearing interventions of structural columns.

BIBLIOGRAPHY -

1. British Museum. "Slab with Sanskrit Inscription of the Kalacuri Prince Valleka." Museum Number 1983,0423.1. Sandstone. South Asia: Gyaraspur, 9th century CE. London: British Museum.
2. Salomon, Richard. "British Museum Stone Inscription of the Tripuri Kalacuri Prince Valleka." Indo-Iranian Journal 39, no. 2 (1996): 133–161.
3. Ayyar, Sulochana. Costumes and Ornaments as Depicted in the Sculptures of Gwalior Museum. New Delhi: Mittal Publications, 1987.
4. Cunningham, Alexander. Report of Tours in Bundelkhand and Malwa in 1874–75 and 1876–77. Reports of the Archaeological Survey of India, Old Series, vol. 10. Calcutta: Office of the Superintendent of Government Printing, 1880.
5. Deva, Krishna. "Mala Devi Temple At Gyaraspur." In Shri Mahavir Jain Vidyalaya Golden Jubilee Volume, Part 1. Bombay: Shri Mahavir Jain Vidyalaya, 2002.
6. Dhaky, Madhusudan A., and Krishna Deva, eds. Encyclopaedia of Indian Temple Architecture: North India, Period of Early Maturity, c. A.D. 700–990. Vol. II, Part 2. New Delhi: American Institute of Indian Studies, 1991.
7. Ghurye, Govind Sadashiv. Rajput Architecture. Bombay: Popular Prakashan, 2005.
8. Mitra, Swati. Temples of Madhya Pradesh. 1st ed. New Delhi: Goodearth Publications, 2012.

9. Shah, Umakant Premanand. Jaina-Rupa Ma??ana: Jaina Iconography. Vol. 1. New Delhi: Abhinav Publications, 1987.
10. Trivedi, Sudhir Kumar. Temples of the Pratihara Period in Central India. New Delhi: Exotic India Art, 1990.
11. Beglar, Joseph David. Report of a Tour in Bundelkhand and Malwa, 1871–72. Reports of the Archaeological Survey of India, Vol. VII. Calcutta: Office of the Superintendent of Government Printing, 1878.
12. Gwalior State. Annual Administration Report of the Archaeological Department, Gwalior Stat e, for Samvat 1986 (1929–30 A.D.). Gwalior: Alijah Darbar Press, 1930.
13. Madhya Pradesh Tourism Board. "Mala Devi Temple, Gyaraspur, Vidisha: An Ancient Heritage Site of Madhya Pradesh." Madhya Pradesh Tourism Blog. https://www.mptourism.com/mala-devi-temple-gyaraspur-vidisha-ancient-heritage-madhya-pradesh.html.
14. Sahasa. "Maladevi Temple (Maladevi Jain Temple), Gyaraspur Tehsil, Vidisha District, Madhya Pradesh." Sahasa Heritage and Travel Documentation, October 1, 2021. https://sahasa.in/2021/10/01/maladevi-temple-maladevi-jain-temple-gyaraspur-tehsil-vidisha-district-madhya-pradesh/.
15. Saxena, Saurabh. "Gyaraspur: A Heritage of Excellence." Puratattva (blog), April 29, 2022. https://puratattva.in/gyaraspur-a-heritage-of-excellence/.
16. Srivastava, Urvashi. "Mala Devi Temple: Faith Can Move Mountains." India Heritage Hub (blog), July 26, 2012. https://indiaheritagehub.wordpress.com/2012/07/26/mala-devi-temple-faith-can-move-mountains/.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
July 2026 Page No. : 214-220

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

जम्मू–कश्मीर और रियासतों के एकीकरण में सरदार बल्लभभाई पटेल की भूमिका और ऐतिहासिक योगदान का अध्ययन

सायमा रफीक

शोधार्थी, इतिहास विभाग,

विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड) पिन कोड– 834009

सारांश :

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की वैचारिक तथा व्यवहारिक रूप में एक नई दिशा देने के कारण सरदार वल्लभभाई पटेल को राजनीतिक इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान मिला है। सरदार वल्लभभाई पटेल को भारत का लौह पुरूष भी कहा जाता है। वास्तव में वे आधुनिक भारत के शिल्पी थे। इस संयमी, अनुशासनप्रिय और परिश्रमी व्यक्ति के कठोर व्यक्तित्व में कौटिल्य जैसे राजनीतिक सत्ता, बिस्मार्क जैसी संगठन कुशलता, अब्राहम लिंकन जैसी अटूट निष्ठा थी। अंग्रेजों से भारत की आजादी मिलने के पश्चात् लगभग 562 रियासतें अस्तित्व में थी जिनके शासकों को यह स्वतंत्रता मिली थी कि वे भारत या पाकिस्तान में शामिल हो सकते हैं या फिर स्वतंत्र रहें। किन्तु यह स्थिति भारत की भौगोलिक एकता और राजनीतिक स्थिरता के लिए बहुत खतरनाक थी। इस समय सरदार पटेल भारत के गृहमंत्री, उपराष्ट्रपति तथा देशी रियासतों के प्रमुख के रूप में कार्य कर रहे थे तथा कश्मीर को छोड़कर 562 रियासतों ने स्वेच्छा से भारतीय परिसंघ में शामिल होने की स्वीकृति दे दी थी। जूनागढ़, पाकिस्तान में मिलने की घोषणा कर चुका था एवं कश्मीर स्वतंत्र बना रहना चाहता था। 15 अगस्त 1947 को जब भारत और पाकिस्तान दो अलग–अलग देश बने तो जूनागढ़ का नवाब मुहम्मद महावत खान ने पाकिस्तान में जूनागढ़ का विलय की घोषणा की। भारतीय सरकार ने नवाब के फैसले को अस्वीकार कर दिया और जनमत संग्रह कराने का निर्णय लिया। जनमत संग्रह में अधिकांश लोगों ने भारत में विलय के पक्ष में मतदान किया जिसके बाद जूनागढ़ का भारत में विलय हो गया। इस प्रकार सरदार पटेल ने अपनी कौशल, कठोर निर्णय, अद्वितीय कूटनीतिक और दूरदर्शिता के बल पर अधिकतर रियासतों को भारत में विलय करने के लिए तैयार किया और भारत के मानचित्र को एकीकृत रूप दिया। सरदार पटेल के इस योगदान के कारण उन्हें भारत का लौह पुरूष और आधुनिक भारत का शिल्पकार कहा जाता है। सरदार पटेल ने लाजवाब कौशल के साथ इन सभी चुनौतियों का सामना करते हुए देश को एकता के सूत्र में बांधने के कार्य को पूरा किया। इस शोध पत्र में जम्मू–कश्मीर और रियासतों के एकीकरण में सरदार वल्लभभाई पटेल की भूमि और ऐतिहासिक योगदान का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्द :- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, लौह पुरुष, आधुनिक भारत, रियासतें, दूरदर्शिता।

प्रस्तावना :

सरदार वल्लभभाई पटेल भारत के राजनीतिक एकीकरण के पिता के नाम से जाने जाते हैं। सरदार पटेल भारत के उन वीर सपूतों में से जाने जाते है जिनमें देश की सेवा तथा समाज की सेवा की भावना कूट–कूटकर भरी हुई थी। वह एक महत्वकांक्षी व्यक्ति थे। वे अपनी निष्ठा, आत्मबल, दृढता, संकल्पशील तथा अटल निर्णय शक्ति, साहस, दृढ विश्वास के कारण लौह पुरूष के नाम से जाने जाते थे। सरदार पटेल एक सच्चे देशभक्त ही नहीं थे, बल्कि भारतीय संस्कृति के महान समर्थक थे। वे बातें कम करते थे परन्तु कार्य अधिक करते थे। उच्च विचार सादा जीवन ये उनके आदर्श थे। उन्होंने आजादी के पश्चात् 562 छोटी–बड़ी रियासतों को विलय कर उन्हें भारतीय संघ में सम्मिलित किया था।

प्रारंभिक जीवन :

सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर 1875 को गुजरात के नाडियाड के एक साधारण किसान परिवार में हुआ था। उनके पिता झबेरभाई भी एक महान देशभक्त थे। सरदार पटेल ने देशभक्ति का पाठ अपने पिता से पढ़ा था। वे बचपन से ही काफी निडर थे। कहा जाता है कि सरदार पटेल जिस स्कूल में पढ़ते थे वहीं के एक टीचर ने बच्चों की अपनी दुकान से पुस्तक लेने के लिए मजबूर किया था परंतु उनकी धमकी से उस टीचर का कोई विरोध नहीं करना चाहता था, किन्तु सरदार पटेल ने बच्चों की हड़ताल कराकर टीचर को ऐसा करने से रोक दिया। अपने प्रारंभिक वर्षों में पटेल को कई लोग एक महत्वकांक्षी व्यक्ति नहीं मानते थे। हालांकि पटेल उन्हें गलत साबित कर दिया। यह एक परिश्रमी व्यक्ति थे, और अपनी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने कानून की डिग्री प्राप्त करने के उद्देश्य से पैसे जमा किए। ब्रिटिश कानून की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे वैरिस्टर बन गए। 1891 ई० में मात्र 16 वर्ष की आयु में उनकी विवाह झावेरबेन पटेल से हुई। 1903 और 1906 में उनकी पत्नी झावेरबेन ने क्रमशः एक पुत्री और एक पुत्र को जन्म दिया।

व्यक्तिगत संघर्ष :

सरदार पटेल अपनी कानून की पढ़ाई के दौरान, वे दो वर्षों तक परिवार और घर से दूर इंग्लैण्ड में रहे और दूसरे वकीलों की मदद से उनसे किताबें उधार लेकर अपनी पढ़ाई पूर्ण किया। उन्होंने आर्थिक तंगी को अवसरों में परिवर्तित कर दिया।

जब गुजरात में बाकी विश्व की तरह ब्यूबेनिक प्लेग की चपेट में आया, तब उन्होंने अपने उन दोस्तों की देखभाल की जो इस रोग से पीड़ित थे और बाद में वे स्वयं इस रोग की चपेट में आ गए। उनका दूसरों के प्रति हमेशा त्याग की भावना रही है। इस दौरान उन्होंने अपने परिवार की सुरक्षा के लिए स्वयं को उनसे अलग रखा और अपने उपचार के दौरान उन्होंने एक जीर्ण–शीर्ण मंदिर में अपना समय व्यतीत किया।

1909 में जब सरदार पटेल अदालत में एक गवाह से पूछताछ कर रहे थे तो उन्हें अपनी पत्नी के निधन का लिखित संदेश मिला जो कैंसर की आपातकालीन सर्जरी के पश्चात् के प्रभावों को झेल रही थीं और बिना किसी हिचकिचाहट के वल्लभभाई पटेल ने अपना मुकदमा जारी रखा और जीत हासिल किया। 1911 में वे 36 साल की उम्र में और अपनी पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् वे इंग्लैण्ड गए और लंदन के मिडिल टेम्पल इन में दाखिला लिया। पटेल ने बिना किसी पूर्व कॉलेज पृष्ठभूमि के बावजूद अपनी कक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण

हुए। उन्होंने 36 महीने के कोर्स को 30 महीने में पूर्ण किया। भारत लौटकर पटेल अहमदाबाद में बस गये और शहर के सबसे सफल बैरिस्टरों में से एक बन गये।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन व देश की सेवा में सरदार पटेल का योगदान :

सरदार वल्लभभाई पटेल देश की सक्रिय राजनीति में सन् 1917 में आयें। उन्होंने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और महात्मा गांधी के नेतृत्व में विभिन्न आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। जालियांवाला बाग हत्याकांड में जब निर्दोषों का जनसंहार हुआ तो उसी के विरोध में उन्होंने अपनी बेरिस्ट्री त्याग दी। उन्होंने आम लोगों और किसानों के अधिकारों के लिए लड़ाई अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ विभिन्न आंदोलनों में महत्वपूर्ण योगदान देकर अपने नेतृत्व का परिचय दिया। नवम्बर 1917 में पहली बार वे गाँधी के सीध ो संपर्क में आए।

1. **खेड़ा सत्याग्रह (1918) :** फसल के बर्बाद होने पर भू–राजस्व भुगतान से छूट पाने के लिए पटेल ने खेड़ा सत्याग्रह में सक्रिय रूप से भाग लेकर किसानों की मदद किया। गिरफ्तारी और जब्ती सहित तीन महीने के अभियान के बाद ब्रिटिश सरकार ने अंततः राहत प्रदान की।
2. **असहयोग आंदोलन (1920) :** पटेल ने असहयोग आंदोलन के प्रति समर्पित कर दिया और अपनी वकालत छोड़कर राजनीतिक कार्यों में लग गए। उन्होंने गाँवों का दौरा किया और अंग्रेजी (विदेशी) सामानों के विरूद्ध विद्रोह प्रदर्शन आयोजित करके विदेशी उत्पादों के बहिष्कार को बढ़ावा दिया।
3. **बारदोली सत्याग्रह (1928) :** पटेल ने भू–राजस्व में अनुचित तरीके से बढ़ोतरी के विरुद्ध अभियान चलाया। इस संघर्ष में पुलिस की बर्बरता और संपति जब्त करने की घटनाएं हुई, लेकिन पटेल के नेतृत्व में अंततः सफलता मिली और वहां की महिलाओं ने उन्हें सरदार की उपाधि दे दी।
4. **भारत छोड़ो आंदोलन (1942) :** भारत छोड़ो आंदोलन के क्रम में पटेल ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा पारित प्रस्ताव का समर्थन किया। इस आंदोलन में शामिल होने के कारण उन्हें अन्य कांग्रेस नेताओं के साथ गिरफ्तार करके अहमदनगर के किले में नजरबंद कर दिया गया था। सरदार वल्लभभाई पटेल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख नेता थे तथा उन्हें राष्ट्रीय एकता के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता और सशक्त नेतृत्व के लिए जाना जाता है। गांधी इरविन समझौते पर हस्ताक्षर के पश्चात् पटेल को 1931 के कांग्रेस अधिवेशन (करांची) के लिए अध्यक्ष चुना गया। कांग्रेस मौलिक अधिकारों और नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध थे। पटेल एक धर्मनिरपेक्ष राह का निर्माण के पक्षधर थे। मजदूरी के लिए न्यूनतम मजदूरी और अस्पृश्यता का अंत करना उनकी अन्य प्राथमिकताओं में से एक थी। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में नागरिक अधिकारों और किसानों के हितों की वकालत करते हुए एक प्रमुख व्यक्ति या महापुरूष के रूप में ख्याति अर्जित की। उनकी रणनीतिक कुशाग्र के कारण उन्हें लौह पुरूष की उपाधि दिलाई। पटेल का दृष्टिकोण हमेशा व्यवहारिक और राष्ट्रहित पर आधारित था। अपने साहसिक निर्णयों और अदम्य इच्छाशक्ति से उन्होंने भारत को एक अखण्ड राष्ट्र का स्वरूप दिया।

सरदार पटेल के विचार :–

1. जीवन की डोर तो ईश्वर के हाथ में है, इसलिए चिंता की कोई बात हो ही नहीं सकती।
2. कठिन समय में कायर बहाना ढूंढता है, बहादुर व्यक्ति रास्ता खोजते हैं।

3. उतावले उत्साह से बड़ा परिणाम निकलने की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए।

4. हमें अपमान सहना सीखना चाहिए।

5. बोलने में मर्यादा मत छोड़ना गालियां देना तो बुझदिलों का कार्य है।

6. शत्रु का लोहा भले ही गर्म हो जाए, पर हथौड़ा तो ठंडा रहकर ही काम दे सकता है।

देशी रियासतों के विलय में सरदार पटेल की भूमिका :

सरदार वल्लभभाई पटेल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख नेता थे। भारत के पहले गृहमंत्री और उपप्रधानमंत्री भी थे। पटेल को लौह पुरुष भी कहा जाता है। आजादी के पश्चात् स्वतंत्र रियासतों को देश में विलय करनेवाले और एक अखंड एकीकृत भारत की मार्ग प्रशस्त करने वाले पहले व्यक्ति थे। स्वतंत्रता के पश्चात् रियासतों का भारत में विलय करना कोई सरल कार्य नहीं था। इस कार्य में प्रमुख बाधा थी जिन्ना द्वारा स्वयं को पूर्ण स्वतंत्र करना व भारत तथा पाकिस्तान दोनों से संबंध रखना। परन्तु पटेल ने असाधारण योग्यता का परिचय दिया। 5 जुलाई 1947 को सरदार पटेल की अध्यक्षता में स्टेट विभाग की स्थापना की गई। स्वतंत्र भारत के प्रथम गृहमंत्री की हैसियत से पटेल ने सबसे पहले 500 रजवाड़ों का भारत संघ में विलय करना अपना प्रथम कर्तव्य समझा। आज भी पटेल को देश को एक करनेवाले व्यक्ति के रूप में याद किया जाता है तथा उनकी तुलना ओटोवॉन बिस्मार्क से की जाती है, जिन्होंने 1871 में कई जर्मन राज्यों को एकीकृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। आजादी के समय भारत में 505 से अधिक स्वतंत्र रियासते थी। इन रियासतों को भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित होने का विकल्प दिया गया था। भारतीय राष्ट्रवादियों और जनता के बड़े हिस्से को डर था कि अगर ये राज्यों का विलय नहीं हुआ तो देश कई छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित हो जाएगा।

इसलिए अथक प्रयास था कि किसी भी प्रकार से इन रियासतों को भारत को साथ शामिल होने के लिए मना लिया जाए। कांग्रेस के साथ–साथ वरिष्ठ ब्रिटिश अधिकारियों को भी लगता था कि सरदार पटेल इस कार्य को बखूबी सही तरह से कर सकते हैं तथा पटेल का व्यवहारिक कौशल, ईमानदारी, संकल्प पूरे कांग्रेस में भी कोई मिसाल न थी। गांधी जी ने सरदार पटेल से कहा था, राज्यों की समस्या इतनी कठिन है कि सिर्फ आप ही इसे हल कर सकते हैं। परंतु सरदार पटेल अपने गिरते स्वास्थ्य और बढ़ती आयु के बावजूद अखण्ड भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएं। पटेल ने इस जिम्मेदारी को उठाया और वरिष्ठ अधिकारी वी.पी. मेनन को अपना दाहिना हाथ बनाने का आग्रह किया। स्वतंत्रता से पूर्व जो अस्थायी सरकार बनी थी, पटेल उसमें रियासती विभाग के कार्यवाहक थे। उन्होंने रियासतों के राजाओं से मुलाकात करना शुरू किया, उत्त समय हमेशा ही पटेल के दिल्ली स्थित आवास में किसी न किसी रजवाडे के मुखिया से मुलाकात का सिलसिला रहता था, कुछ लोग तो आसानी से विलय के लिए मान गए परंतु कुछ लोगों के साथ गंभीर रणनीतिक दांवपेचों का प्रयोग करना पड़ा था। जहाँ भी जरूरत हुआ यहाँ पर उन्होंने साम दाम दंड और भेद का प्रयोग करने में कोई संकोच नहीं किया। सरदार पटेल ने ब्रिटिश भारतीय तंत्र के साथ रियासतों को भी जोड़ा और भारत के विखण्डन होने से भी रोका। जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर को छोड़कर 562 रियासतों ने स्वेच्छा से भारतीय परिसंघ में शामिल होने की स्वीकृति दी थी। भारतीय संघ में शामिल होने वाली आखिरी विरासत भोपाल थी। परंतु जूनागढ़ पाकिस्तान से मिल जाने की घोषणा की थी और कश्मीर स्वतंत्र रहने की इच्छा जाहिर की थी। माउण्डबेटन ने नेहरू जी के सामने जो प्रस्ताव रखा था, उसमें ये प्रावधान था कि भारत के रजवाड़ों को भारत या पाकिस्तान

में से किसी एक में विलय का विकल्प दिया जाएगा। वे चाहे तो स्वतंत्र रहना भी चुन सकते हैं, लेकिन इन 566 रजवाड़ी जिनमें से अधिकांश ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का हिस्सा थे। इस प्रकार सरदार पटेल के प्रयासों के कारण भारत के हिस्से में आए अधिकांश रजवाहों ने एक–एक करके विलय–पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए, इसका सारा श्रेय सरदार पटेल और वी.पी. मेमन को जाता है। इस प्रक्रिया में सरदार पटेल के सामने तीन रियासतें चुनौती बनकर खड़ी थी जिनमें जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर था।

जूनागढ़ का विलय :

गुजरात के दक्षिण–पश्चिम में स्थित रियासत जूनागढ़ 15 अगस्त 1947 तक भी भारत में शामिल नहीं हुआ था, वहां की अधिकांश आबादी हिंदू थी और शासक एक मुसलमान था जिनका नाम नवाब मुहम्मद महावत खानजी था, उन्होंने पाकिस्तान में शामिल होने का निर्णय लिया और तर्क प्रस्तुत किया कि जूनागढ़ समुद्र के मार्ग पाकिस्तान से जुड़ा हुआ है। हालांकि जूनागढ़ रियासत आने वाले कुछ राज्य इस निर्णय से सहमत नहीं थे। वहां की जनता भारत के साथ रहना चाहती थी इसलिए उन्होंने नवाब के इस फैसले का विरोध किया तथा उन्होंने सरकार से मदद की गुहार लगाई सरकार भी इस बात को भलीभांति समझ रही थी कि अगर जूनागढ़ का विलय पाकिस्तान में होता है तो इसका अर्थ यह है कि सांप्रदायिक दंगे भड़क जाएंगे। ऐसे स्थिति में पटेल ने जनमत संग्रह करने का फैसला लिया। अंततः जनमत संग्रह में भारी बहुमत से जनता ने भारत के साथ रहने के पक्ष में मतदान किया। इस प्रकार सरकार पटेल की कूटनीति और समझदारी से जूनागढ़ को भारत का हिस्सा बना दिया गया।

हैदराबाद का विलय :

हैदराबाद बहुत बड़ी और समृद्ध विरासत थी जो पूरे दक्कन पठारों तक फैली हुई थी। यहां की आबादी हिंदू बहुल थी लेकिन शासक एक मुसलमान था जिसका नाम निजाम था जिसने भारत में शामिल होने से इंकार कर दिया और स्वतंत्र राज्य की मांग कर रहा था। पटेल और मेनन ने इस सिलसिले में निजाम से बातचीत किया परंतु उनकी सारी प्रयास विफल हो गई तो उन्होंने सैन्य शक्ति के जरिए हैदराबाद पर आधिपत्य स्थापित किया। 13 सितंबर 1948 को ऑपरेशन पोलो के तहत भारतीय सैनिकों ने हैदराबाद पर हमला किया और 4 दिनों तक सशस्त्र संघर्ष चला और युद्ध के अंत में हैदराबाद को भारत का एक अभिन्न अंग बना दिया गया,निजाम ने आत्मसमर्पण कर दिया परंतु उसे हैदराबाद का गवर्नर नियुक्त किया गया।

कश्मीर का विलय :

हैदराबाद और जूनागढ़ के विपरीत कश्मीर रियासत की कहानी बिल्कुल अलग है। कश्मीर का कुल क्षेत्रफल 84,471 वर्गमील था, इसलिए हाथ से वह हैदराबाद से भी बड़ा था लेकिन उसकी आबादी महज 40 लाख थी। कश्मीर की सीमा पाकिस्तान से सटी हुई थी। कश्मीर की बहुसंख्यक आबादी मुसलमान की थी और यहां का शासक हिंदू था जिनका नाम हरि सिंह था। वह सितंबर 1925 में कश्मीर की गद्दी पर बैठे थे और अपना काफी वक्त मुंबई के रेसकोर्स और अपनी रियासत के विशाल घने जंगलों में शिकार करते हुए बिताया करते थे। विभाजन के बाद महाराजा हरिसिंह किसी भी देश में शामिल नहीं होना चाहते थे, वह स्वतंत्र रहना चाहते थे। रामचंद्र गुहा अपनी पुस्तक 'इंडिया आफ्टर गांधी' में लिखते है, हरिसिंह कांग्रेस से घृणा करते थे इसलिए वो भारत में शामिल होने के बारे में विचार भी नहीं कर सकते थे. लेकिन उन्हें ये भी चिंता सता रही थी कि अगर

वो पाकिस्तान में शामिल होते हैं तो उनकी हिंदू राजवंश के भाग्य का सूर्य सदा के लिए डूब जाएगा उधर कश्मीर मुस्लिम बहुल आबादी के कारण मोहम्मद अली जिन्ना यह उम्मीद लगाए बैठे थे कि कश्मीर उनकी झोली में पके हुए फल की तरह आकर गिरेगा। इस मुद्दे पर जिन्ना का माउंटबेंटन से लंबी बातचीत चली। इस बातचीत के बाद जिन्ना काफी थक गए थे क्योंकि उन्हें फेफड़ों के घातक रोग थे, जिसके कारण उनका शरीर पहले से ही कमजोर था। उन्होंने तय किया कि कुछ दिन कश्मीर में आराम करेंगे और उन्होंने अपने सचिव विलियम बिर्नी से कहा कि वह कश्मीर जाकर उनके यहां ठहरने और विश्राम करने का प्रबंध कर दें डोमिनिक लापियर और लैरी कॉलिंस अपनी पुस्तक फ्रीडम एट मिडनाइट में लिखते हैं '5–7 दिन पश्चात उनके अंग्रेज सचिव जो उत्तर लेकर लौटा उसे सुनकर जिन्ना दंग रह गए'। उन्होंने लिखा 'महाराजा हरि सिंह नहीं चाहते थे कि जिन्ना छुट्टी बिताने के लिए कश्मीर में कदम रखें।'

सितंबर के मध्य में पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली ने यह तय करने के लिए एक बैठक बुलाया कि महाराज को पाकिस्तान में विलय करने के लिए कैसे विवश किया जाए। यही तय हुआ कि सरहदी सूबे के पठान कबायलियों को हथियार के साथ कश्मीर भेजा गया। महाराजा हरि सिंह काबायली घुसपैठियों से मुकाबला करने में असफल रहे तो उन्होंने भारत सरकार से मदद की अपील की। महाराज ने शेख अब्दुल्ला को अपना प्रतिनिधि बनाकर मदद के लिए दिल्ली भेजा। भारत सरकार ने मदद के लिए एक शर्त रखी कि कश्मीर का भारत में विलय करना होगा तथा महाराजा हरि सिंह ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर करने की बात मान ली। इस प्रकार 26 अक्टूबर 1947 को महाराजा हरि सिंह ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए और इस विलय के पश्चात कश्मीर भारत का एक अभिन्न अंग बन गया। इस प्रकार सरदार पटेल की सूझबूझ के कारण कश्मीर का भारत में विलय संभव हुआ। देसी रियासतों को भारत संघ में विलय आजादी के समय की विकट परिस्थितियों में से एक है और एक ऐसा चमत्कार है, जिसे देखकर विदेशी राजनीतिज्ञ आश्चर्यचकित रह गए। प्रायः सरदार पटेल की तुलना बिस्मार्क से की जाती है, परंतु सरदार पटेल का कार्य उससे भी कहीं अधिक महान था, भारत राष्ट्र के एकीकरण का कार्य सरदार पटेल की दूरदर्शिता उत्साह, निर्धनता, देशभक्ति का ही परिणाम था जिसे उन्होंने बहुत कम समय व बिना हिंसा के संपन्न करने में अपार सफलता प्राप्त की, जिससे कि एक सशक्त भारत का निर्माण संभव हुआ। उनकी इस अपार सफलता के कारण वह इतिहास में अमर हो गए और वह आधुनिक भारत के महान निर्माता के रूप में सदैव याद किए जाएंगे।

निष्कर्ष :–

सरदार वल्लभभाई पटेल, जिन्हें भारत का 'लौह पुरुष' कहा जाता है, ने आजादी के समय बिखरे हुए भारत को एक सूत्र में बांधने का ऐतिहासिक काम किया। उस समय भारत में 562 रियासतें थीं, जिनका एकीकरण करना कठिन कार्य और चुनौतियों से भरा था। पटेल ने अपनी अद्भूत राजनीतिक कौशल, कूटनीति एवं दृढ़ इच्छाशक्ति का परिचय देते हुए इन रियासतों को भारत में विलय करने के कार्य को पूर्ण किया। जम्मू–कश्मीर, जूनागढ़, हैदराबाद के संदर्भ में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। उन्होंने 'स्टैंडस्टिल एग्रीमेंट' और 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन' जैसी व्यवस्थाओं के माध्यम से रियासतों को भारत में सम्मिलित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके इस अथक प्रयासों के कारण रियासतों का शांतिपूर्ण एकीकरण संभव हुआ और भारत एक मजबूत राष्ट्र के रूप में उभरा। इस प्रकार सरदार पटेल ने एक अखंड भारत की नींव रखी और वह

सदा देश की एकता और अखंडता के रक्षक के रूप में याद किए जाते रहेंगे।

संदर्भ सूची (References)

1. मेनन, वी.पी. द स्टोरी ऑफ द इंटरग्रेशन ऑफ द इंडियान स्टेटस, ओरिएंट लांगमैन, 1956
2. पटेल, वल्लभभाई – सरदार पटेल कोरेडपॉडेन्स 1945–50 (Vol. 1–10). नवजीवन पब्लीशिंग हाउस, अहमदाबाद।
3. शर्मा, बी.के. (2005) सरदार पटेल एण्ड इंडियन फेडरेशन, नेशनल बुक ट्रस्ट।
4. नूरानी, ए.जी. (2011), आर्टिकल 370 : ए कांस्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ जम्मू एण्ड कश्मीर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. कोपलैंड, आयरन (1997) द प्रिंस ऑफ इंडिया इन द इंडगेम ऑफ एम्पायर कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. राघवन, श्रीनाथ (2016) वार एण्ड पीस इन मॉडर्न इंडियाः ए स्ट्रेटेजिक हिस्ट्री ऑफ द नेहरू इयरस, परमानेंट ब्लैक।
7. दास, दुर्गा– इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड आफ्टर, रूपा पब्लिकेशन्स, 2004
8. हानडसन, ए.वी. (1969) द ग्रेड डिवाइड : ब्रिटेन, इंडिया, पाकिस्तान, लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
9. गोपाल, एस. (1979) जवाहरलाल नेहरू : ए बायोग्राफी, हॉवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. गवर्नरमेंट ऑफ इंडिया, (1946–50), कॉस्टीट्यूट एसेंबली डिबेट्स (Volumes on Jammu & Kashmir and Princely states)
11. ब्राउन, जुडिथ एम, मॉर्डन इंडिया : द ओरिजिन ऑफ एन एशियन डेमोक्रेसी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994
12. कुलकर्णी, वी.एस., द इंडियन स्टेटस एण्ड द मेकिंग ऑफ इंडिया, एलाइड पब्लिशर्स, 1960
13. राजमोहन, गांधी, पटेल : ए लाइफ, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, 1990
14. खेर, एन.एम., सरदार पटेल एज आई क्यूव हीम, ओरिएंट लांगमैन, 1977

ईमेल : sayma.rafique1@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गीना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पूनम, पी–एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग (हिंदी)

सामाजिक एवं मानविकी संकाय,

डॉ. संजय, शोध निर्देशक, प्रोफेसर, हिंदी विभाग,

ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा) पिन कोड 125001

for the paper titled

गुरू जम्भेश्वर जी की सबदवाणी में पर्यावरणीय नैतिकता और भक्ति चेतना का अंतर्संबंध : एक साहित्यिक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 11-21

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

दिव्या, शोधार्थी,

डॉ. अनामिका सिंह, शोध निर्देशिका,

हिन्दी विभाग, पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया, बिहार।

for the paper titled

बेनीपुरी के कहानी-साहित्य में अनसुने समाज की उपस्थिति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 22-27

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पिंकी कुमारी, शोधार्थी, इतिहास विभाग

डॉ. रूद्र नारायण, सह– प्राध्यापक, इतिहास विभाग

डॉ. सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

for the paper titled

मिथिला की धार्मिक परंपराएँ, कला, साहित्य एवं स्थापत्य : एक सांस्कृतिक–ऐतिहासिक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 28-34

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सौरभ राय

राजनीति विज्ञान,
दिल्ली विश्वविद्यालय।

for the paper titled

पंडित दीन दयाल उपाध्याय और उनके सपनों का कश्मीर

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 35-42

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. शालिनी सी.

सह–प्राध्यापक, हिंदी विभाग

राजकीय महिला महाविद्यालय, वझुथाकौड, तिरुवनंतपुरम,

केरल–695014, भारत

for the paper titled

आधुनिक हिंदी काव्य में प्रकृति, संस्कृति और पर्यावरण विमर्श

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 43-52

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सुशीला, शोधकर्त्री

डॉ. रेखा खण्डेलवाल, सहायक आचार्या

श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।

for the paper titled

महिलाओं में महिला उत्पीड़न से संबंधित कानूनी प्रावधानों के प्रति जागरूकता का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 53-55

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अन्नू, शोधकर्त्री

डॉ. सन्जू, प्राचार्या

श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।

for the paper titled

शैक्षिक चिन्तक परमहंस योगानंद के शैक्षिक विचारों का भारतीय शिक्षा प्रणाली में योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 56-59

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

विकास बौद्ध

शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग,
डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।

for the paper titled

उत्तरापथ राजमार्ग पर मौर्यकालीन नौकरशाही और कर नियंत्रण का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 60-65

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सुनीता जाखड़, शोधकर्त्री

डॉ. रेखा खण्डेलवाल, सहायक आचार्या

श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।

for the paper titled

छात्रों के मानसिक तनाव को कम करने में योग क्रियाओं की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 66-68

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Arpita Negi, Assistant Professor,
Sanjay Dutt, Ph.D. Research Scholar
Department of Yoga Studies HPU-Shimla-5

for the paper titled

Yoga as a Cultural Heritage : An Indian Perspective

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 69-74

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

देवेन्द्र कुमार

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रो. ध्रुव कुमार त्रिपाठी

विद्यांत हिन्दू पी.जी. कॉलेज, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

for the paper titled

विधवाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण :
एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 75-91

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

SANJAY KUMAR

Research Scholar, Department of History,
University of Delhi.

for the paper titled

The Railway Journey : The Industrialisation of Time and Space in The 19th Century

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 92-97

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

हरिप्रसन्नः अधिकारी

स्वतंत्र शोधकर्ता (Independent Researcher)

for the paper titled

सांख्यकारिका–पातञ्जलयोगसूत्रयोः मुक्तिसाधनस्य तुलनात्मकसमीक्षा

(A Comparative Study of the Means of Liberation in the Samkhyakarika and Patanjala Yoga Sutras)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 98-102

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. गौस शेख

सह –प्राध्यापक

एस. आर –बीजीएनआर शासकीय महाविद्यालय, खम्मम, तेलंगाना।

for the paper titled

विद्यासागर नौटियाल के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 103-109

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अलका यादव, शोधकर्त्री

डॉ. सन्जू, प्राचार्या

श्री बालाजी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, जयपुर।

for the paper titled

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के प्रचार प्रसार में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 110-113

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. निरंजन कुंभकार

ग्राम–जोजोहातु, पोस्ट–दलभंगा, प्रखण्ड–कुचाई,
जिला–सरायेकेला–खरसावाँ, झारखण्ड–833216

for the paper titled

भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता :
एक समालोचनात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 114-117

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

9 772395 711007

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

हेमा राम जाट

सुपुत्र श्री श्रवण राम

गांव नराधणा, तहसील जायल, जिला नागौर।

for the paper titled

वर्तमान में राजस्थान में मरूस्थलीकरण की समस्या

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 118-119

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

आकाश गुप्ता

दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली।

for the paper titled

मध्यकालीन भारत में महिला दास प्रथा

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 120-124

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

कल्पना भारती, शोध अध्येता

प्रो. पंकज कुमार राय, शोध निर्देशक एवं आचार्य,

इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर।

for the paper titled

बिहार में अगस्त क्रांति और समाजवादी आंदोलन के प्रणेता : रामवृक्ष बेनीपुरी

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 125-130

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Rajesh Gupta

Research Scholar in the Department of Political Science, University of Delhi.

for the paper titled

New Terrorism and Age of the Internet – A case of Kashmir Post 1990

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 131-143

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Mr. Hari Shanker Singh

Ph.D. Scholar, department of Political Science, University of Delhi.

for the paper titled

India–Israel Relations in the Post-Abraham Accords Era: Balancing Regional Power, Israel–Iran Tensions, and India's Multi-Alignment Diplomacy

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 144-163

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

राजा डावर

शोधार्थी, समाज विज्ञान संकाय, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर।

डॉ. बी एल पाटीदार

प्राध्यापक, भूगोल विभाग, शा. महाविद्यालय उमरन, धार, म.प्र.।

for the paper titled

एक जिला एक उत्पाद (ओडीओपी) योजना के अंतर्गत आलू आधारित विकास : मध्य प्रदेश के इंदौर जिले का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 164-168

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. दीपक कुमार, शोध निर्देशक एवं असिस्टेंट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग, एस. एस. वी. कॉलेज हापुड़, उत्तर प्रदेश।

मयंक वसु, शोधार्थी,
इतिहास विभाग, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

for the paper titled

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इतिहास में हिन्दी के साहित्यिक साक्ष्यों की भूमिका (1900–1950)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 169-175

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Rajendra Jakhar

Asstt. Professor in Education,
J.K.Memorial College of Education, Birhi Kalan,
Ch. Dadri (Haryana)

for the paper titled

A Study of Locus of Control Among Degree College Students in Haryana

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 176-182

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Rekha Rani

Assistant Professor, English,
SBS College of Law, Rohtak (Haryana)

for the paper titled

Spiritual Quest and Self-Realisation in Raja Rao and Hermann Hesse : A Comparative Study

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 183-189

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

.Jai Shri Prajapat

Research Scholar, MSBU, Bharatpur.

Dr. Arvind Verma

Professor, MSJ Govt. College, Bharatpur.

for the paper titled

Strengthening Climate Action through the India–Japan Joint Crediting Mechanism: An Analysis of the June 2026 Rules of Implementation

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 190-195

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Manish Kumar Sharma, Research Scholar

Dr. Surjeet Singh Kaswan (Professor) Research Supervisor

Faculty of Physical Education, Tantia University,
Sri Ganganagar (Raj.)

for the paper titled

A Comparative Study of Personality among Government School and Private School Level Basketball Players

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 196-200

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सौम्य

प्राचार्य,

माध्यमिक शिक्षा विभाग, राजस्थान।

for the paper titled

21वीं सदी की कविता में भूमंडलीकरण से उत्पन्न पर्यावरणीय चिंताएँ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 201-207

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

SHIVAM RAGHUWANSHI, RESEARCH SCHOLAR,
Dr. SUNITA MALVIYA, PROFESSOR & HEAD,
DEPARTMENT OF HISTORY, PMCOE
SHRI ATAL BIHARI VAJPAYEE GOVT ARTS &
COMMERCE COLLEGE INDORE [M.P.]

for the paper titled

The Maladevi Temple of Gyaraspur [Vidisha] : Architectural Innovation and Sectarian Syncretism in Early Medieval Dasarna

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 208-213

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

सायमा रफीक

शोधार्थी, इतिहास विभाग,

विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग (झारखण्ड) पिन कोड– 834009

for the paper titled

जम्मू–कश्मीर और रियासतों के एकीकरण में सरदार बल्लभभाई पटेल की भूमिका और ऐतिहासिक योगदान का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

July 2026, Vol. 24, Issue -1, Part-2, Page No. 214-220

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152